Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Gadhavi, Dilip S., 2011, "कथाकार चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/917

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

कथाकार चित्रा मुद्‌गल के कथा साहित्य का अनुशीलन

(सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. (हिंदी) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

प्रस्तुतकर्ता

प्रा. दिलीप शिवदानभाई गढ़वी

श्रीमती सद्‌गुणा सी. यू. आर्ट्‌र्स कॉलेज फॉर गर्ल्स

अहमदाबाद

शोध-निर्देशक

डॉ. मेरगसिंह ए. यादव

एसोसिएट प्रोफेसर

हिंदी विभाग

माणावदर आर्ट्‌स एंड कॉमर्स कॉलेज

माणावदर, जूनागढ़

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय

राजकोट

रजि. नंबर : ४०३९ २०११ रजि. ता. : ३१/०७/०८

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोधछात्र **प्रा. डी. एस. गढ़वी** ने मेरे निर्देशन में पी-एच. डी. (हिंदी) की उपाधि के लिए **'कथाकार चित्रा मुद्‌गल के कथा साहित्य का अनुशीलन'** शीर्षक पर शोधकार्य किया है। यह विषय अपने आप में नया और मौलिक है। शोध-प्रबंध में शोधार्थी ने कई मौलिक स्थापनाएँ की हैं और जहाँ आवश्यकता पड़ी है, वहाँ अपने मत की पुष्टि के लिए अन्य सहायक ग्रंथों का उपयोग भी किया है। मेरी जानकारी में प्रस्तुत शोध-प्रबंध का कोई अंश या खंड इससे पूर्व कहीं पर प्रकट नहीं किया गया है।

स्थान :

दिनांक :

शोध-निर्देशक

डॉ. मेरगसिंह ए. यादव

(एसोसिएट प्रोफेसर) हिंदी विभाग

विनियन एवं वाणिज्य महाविद्यालय

माणावदर, जूनागढ़

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना :

अध्याय-१

हिंदी कथा साहित्य का परिचयात्मक अध्ययन **१-४७**

१.१. प्रस्तावना : २

(क) उपन्यास : ३

१.२. प्रेमचंदयुगीन कुछ प्रमुख उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास ७

१.३. प्रेमचंदोत्तरयुगीन प्रमुख उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास १९

(ख) कहानी : २५

१.४. हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी : २६

१.५. स्वतंत्रतापूर्व की हिंदी कहानी : २७

१.६. स्वतंत्रतापूर्व प्रमुख हिंदी कहानीकार : २८

१.७. अन्य कहानीकार : ३४

१.८. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी : ३५

१.९. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के विविध आंदोलन : ३७

१. नयी कहानी : ३७

२. सचेतन कहानी : ३९

३. अ-कहानी : ४१

४. समकालीन कहानी : ४३

५. समांतर कहानी : ४३

७. जनवादी कहानी : ४४

८. सक्रिय कहानी : ४४

अध्याय-२

कथाकार चित्रा मुद्‌गल का जीवन-परिचय एवं साहित्य-परिचय ४८-८३

२.१. जीवन परिचय : ४९

२.२. चित्रा मुद्‌गल का रचना-संसार : ५०

(क) उपन्यास : ५५

(ख) कहानी-संग्रह : ६३

२.३. उपलब्धियाँ : ७९

अध्याय-३

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी महिला कथाकारों का संक्षिप्त परिचय ८४-१११

अध्याय-४

कथाकार चित्रा मुद्‌गल के कथा साहित्य के वस्तुपक्ष का अनुशीलन

११२-१६६

(क) उपन्यास : ११३

१. एक जमीन अपनी : ११३

२. आवाँ : १२१

३. गिलिगडु १२८

(ख) कहानियाँ १३४

(१) नारी जीवन संदर्भों से संबंधित कहानियाँ : १३६

२. पारिवारिक रिश्तों से संबंधित कहानियाँ : १४७

३. अभाव और गरीबी से संबंधित कहानियाँ : १५१

४. राजनीतिक संदर्भों की कहानियाँ : १५५

५. सांप्रदायिकता और प्रादेशिकता के संदर्भ की कहानियाँ १५८

६. मूल्यों के बदलते रूप से संबंधित कहानियाँ : १६०

७. भीक्षावृत्ति और वेश्वावृत्ति से संबंधित कहानियाँ : १६२

अध्याय-५

कथाकार चित्रा मुद्‌गल के कथा साहित्य के शिल्पपक्ष का अनुशीलन **१६७-२१८**

१. कथा-विन्यास : १६८

(क) उपन्यास : १६८

(ख) कहानियाँ : १७२

२. पात्र-योजना : १७५

(क) उपन्यासों के पात्र : १७५

(ख) कहानियों के पात्र : १९३

३. संवाद : २०१

४. परिवेशांकन : २०६

५. भाषा : २०९

६. शैली : २१३

१. वर्णनात्मक शैली : २१३

२. आत्मकथात्मक शैली : २१४

उपसंहार **२१९-२२९**

परिशिष्ट **२३०-२३३**

प्रस्तावना

हिंदी कथा साहित्य का आरंभ अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार और औद्योगीकरण की प्रक्रिया के साथ भारतीय समाज में नये मध्यवर्ग के उदय के साथ हुआ।

आधुनिक युग में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के परिणामस्वरूप साहित्य के क्षेत्र में भी भारी बदलाव आया। साहित्य में रचना-शैली ही नहीं बदली, बल्कि विषय-वस्तु के चयन में भी बड़ा परिवर्तन लक्षित होने लगा। समाज के दलित-शोषित, किसान-मजदूर के साथ-साथ नारी जीवन को भी साहित्य का विषय बनाया जाने लगा।

आजादी के पूर्व भी साहित्य सर्जन में महिला रचनाकार सक्रिय रहीं, परंतु उस दौर में उनकी संख्या अत्यल्प थी। परंतु आजादी के बाद उनकी सक्रियता में गुणात्मक वृद्धि हुई - विशेषकर कथा-लेखन के क्षेत्र में। हिंदी उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में महिला रचनाकारों ने अपनी अलग एवं विशिष्ट पहचान बनाई। स्वातंत्र्योत्तर काल की सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में आए बदलाव ने निश्चित रूप से महिलाओं की चेतना को नारी जीवन के संदर्भ में झकझोरा। परिणामस्वरूप नारी मन की प्रतिक्रिया उन स्थितियों के प्रति सर्वथा मौलिक एवं नवीन अवधारणाओं के साथ व्यक्त हुई।

नारी के अनुभव और नारी जीवन के बोध अनेक अर्थों में पुरुष से भिन्न होते हैं। नारी अपनी निजता को अपने ढंग से व्यक्त करती है। यह एक सचाई है कि स्त्री ही स्त्री के निजी अनुभवों को अधिक स्वाभाविकता और यथार्थता के साथ

लिख सकती है ।

आज की नारी पुरुष वर्ग द्वारा निर्मित नारी विरोधी व्यवस्था का विरोध करके नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहती है । इसी लिए नारी अस्मिता की रक्षा के लिए समकालीन महिला कथाकारों को विद्रोही स्वर अपनाना पड़ा । सन् १९६० के बाद हिंदी कथा जगत में अनेक महिला कथाकारों ने अपने साहसपूर्ण मौलिक चिंतन के साथ नारी जीवन की विषमताओं को अपनी दृष्टि से विश्लेषित किया है; और विशेषकर भारतीय नारी जीवन के लगभग सभी संभावित पहलुओं को बड़ी बेबाकी से चित्रित किया है ।

प्रस्तुत शोधप्रबंध कथाकार चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य पर आधारित है । चित्राजी एक प्रशस्त जीवन दृष्टि की कथाकार हैं । उनके कथा साहित्य में ट्रेड यूनियनों के क्रिया कलापों, मजदूर जीवन, नारी जीवन, ग्राम्य जीवन आदि सभी को महत्त्व मिला है ।

चित्राजी के उपन्यास एक खास रचना शैली के उपन्यास हैं, जो उपन्यास के परंपरागत ढाँचे को तोड़ते हैं । वैसे तो चित्राजी के तीन ही उपन्यास अभी तक प्रकाशित हुए हैं : एक जमीन अपनी, आवाँ और गिलिगडु । 'आवाँ' उपन्यास विषय की विविधता तथा विशदता के कारण विशेष चर्चित हुआ है । उसकी भाषा में उत्तर प्रदेश के ग्रामीण परिवेश की भाषा-बोली के साथ-साथ बंबइया हिंदी का गहरा प्रभाव लक्षित होता है ।

अपने उपन्यासों एवं कहानियों में चित्राजी ने आधुनिक जीवन की - खास करके नागरिक जीवन की विडंबनाओं एवं विसंगतियों की - गहरी पड़ताल की है । साथ ही उसके छद्म का निर्भीकतापूर्वक पर्दाफाश किया है । नारी अस्मिता के प्रति

सजगता तथा स्त्री जीवन की विडंबनाएँ भी उनके कथा साहित्य में व्यक्त हुई हैं। आज के स्त्री-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में कहें, तो स्त्री समस्याओं के बारे में चित्राजी की रचनाओं में एक खास और संजीदा दृष्टिकोण दिखाई देता है। उनका स्त्री-विमर्श दूसरों से बहुत भिन्न है। उस धरातल पर चित्राजी दूसरी कथा लेखिकाओं से बहुत अलग दिखाई देती हैं।

ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में शोधकार्य आरंभ करने के लिए पहला चरण होता है शोध-विषय का चयन। आखिर विषय का चयन हो जाने के बाद ही तो शोधार्थी उस पर कार्य कर सकता है।

विषय-चयन के संदर्भ में सामान्य स्थिति तो यह होती है कि शोधार्थी अपने विवेक से अपनी क्षमता और अपनी रुचि के अनुकूल अपने शोध-विषय का खुद ही चयन करता है। उसका सामान्य प्रारूप बनाता है; फिर अपने शोध-निर्देशक के साथ विस्तृत चर्चा करके चरणबद्ध रूप में अपना काम आगे बढ़ाता है।

परंतु ज्यादातर ऐसा भी होता है कि शोधार्थी कई कारणों से अपने शोध-विषय का चयन करने में असुविधा महसूस करता है। कई विषय उसे ललचाने लगते हैं। इस दुविधाग्रस्त स्थिति में वह अंतिम निर्णय नहीं कर पाता कि उसे किस विषय पर शोध करना है।

विद्यार्थी अवस्था से ही मेरा झुकाव साहित्य की ओर रहा। उसमें भी हिंदी साहित्य की ओर विशेष रूप से। यही कारण है कि मैंने स्नातक कक्षा में मुख्य विषय के रूप में हिंदी को पसंद किया। परिणामस्वरूप हिंदी विषय में स्नातकोत्तर कक्षा तक अध्ययन किया। हिंदी के अध्ययन कार्य के साथ साहित्य के प्रति मेरी जिज्ञासा वृत्ति विशेष रूप से प्रबल हुई पढ़ने-पढ़ाने के इस कार्य में। मैं निरंतर साहित्य की

ओर आकर्षित होता रहा। अध्ययन और अध्यापन के दौरान मेरी रुचि गद्य साहित्य में विशेष रही।

वैसे तो एक लंबे अरसे से शोधकार्य के बारे में मैं सोच रहा था। संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति मनुष्य में अजीब जिज्ञासा निहित है। साहित्य में शोधकार्य के पीछे यही जिज्ञासा जिम्मेदार है।

कथाकार चित्रा मुद्गल के प्रति मेरी रुचि उनके उपन्यास 'आवाँ' से अधिक बढ़ी। मेरी पढ़ाई के दौरान इस उपन्यास ने मुझे प्रभावित किया।

संयोगवश चित्राजी की कुछ कहानियाँ और उनके दूसरे उपन्यास भी हस्तगत हो गए और उन्हें पढ़ने के पश्चात् मैंने चित्राजी के कथा साहित्य पर शोधकार्य करने का मन बना लिया। इस बढ़ती हुई शिक्षा-दीक्षा के युग में मार्गदर्शक अध्यापकों का अभाव खटकता रहा है - खासकर गुजरात राज्य में। अध्यापन कार्य के दौरान कई बार राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर के सेमिनारों में जाने का अवसर मिला। इस दौरान मुझे हिंदी साहित्य के विद्वान् आलोचकों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ, जिनमें आदरणीय डॉ. शिवकुमार मिश्र और सरदार पटेल विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. नवनीत चौहान, गुजरात विद्यापीठ की हिंदी विभाध्यक्ष डॉ. जशवंत पंड्या, डॉ. महावीरसिंह चौहान जैसे मर्मज्ञों से मेरी मुलाकात हुई। इन लोगों के साथ भी शोधकार्य को लेकर एवं विषय-चयन को लेकर लंबे अरसे तक चर्चा होती रही। इसी दौरान मेरी मुलाकात डॉ. मेरगसिंह यादव से हुई, जो सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की हिंदी पाठ्यक्रम समिति के उपाध्यक्ष एवं माणावदर आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज के हिंदी विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक हैं, जो पढ़ाई के दौरान मेरे करीबी मित्र भी रहे, मैंने उनके सामने अपना शोध-निर्देशक बनने का विचार प्रकट किया, तो उन्होंने

मेरे इस प्रस्ताव को तुरंत स्वीकार कर लिया। बाद में, विषय-चयन को लेकर मेरी उनके साथ कई दिनों तक चर्चा होती रही। मैंने डॉ. मेरगसिंह यादव के समक्ष चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य पर शोधकार्य करने का विचार प्रकट किया। उन्होंने मेरे विचार का समर्थन करते हुए कहा कि शोधार्थी को जिस विषय में ज्यादा रुचि हो, उसे उसी विषय में शोधकार्य करना चाहिए।

इस तरह मेरा शोध-विषय तय हुआ और मैंने इस विषय पर कार्य आरंभ किया।

प्रस्तुत शोधप्रबंध को कुल पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है :

प्रस्तुत शोधप्रबंध का विषय हिंदी के कथा साहित्य के दायरे में आता है; इसलिए पृष्ठभूमि के तौर पर **प्रथम अध्याय** में हिंदी कथा साहित्य के विकास की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

हिंदी के उपन्यास साहित्य का उद्भव काल उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध का समय है, जबकि हिंदी कहानी बीसवीं सदी के साथ आरंभ होती है। हिंदी उपन्यास का आरंभिक काल जासूसी, ऐयारी और तिलस्मी उपन्यासों का काल है। उस काल के उपन्यासकारों का प्रधान उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना था।

आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक माने जाने वाले भारतेंदु के पूर्व हिंदी कथा साहित्य मुख्यतः पौराणिक आख्यानों पर आधारित था। उस समय के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में तीन ग्रंथों के नाम लिए जाते हैं : १. लल्लूलालकृत 'प्रेमसागर' (सन् १८०३ से १८०९ के बीच), २. सदल मिश्रकृत 'नासिकेतोपाख्यान' (सन् १८०३) तथा ३. इंशाअल्लाखाँकृत 'रानी केतकी की कहानी' (सन् १८०० से १८१० के बीच)। इनमें से प्रथम दो पुराणकथाओं

को आधार बनाकर लिखे गए हैं तथा तीसरी मौलिक रचना मानी जाती है ।

भारतेंदु बाबू ने स्वयं तो कोई पूरा उपन्यास नहीं लिखा; किंतु उनकी प्रेरणा से दूसरों ने अन्य भाषाओं से अनेक उपन्यासों का अनुवाद किया। इस संबंध में बाबू ब्रजरत्नदास का कहना है कि यद्यपि भारतेंदुजी ने एक भी पूरा उपन्यास नहीं लिखा है; पर एक पत्र से ज्ञात होता है कि इन्हीं के उत्साह दिलाने से उस समय स्व. गोस्वामी राधाचरण जी ने 'दीप-निर्वाण' तथा 'सरोजनी' का उल्था किया और बाबू गदाधरसिंह ने 'कादंबिनी' का संक्षिप्त तथा 'दुर्गेशनंदिनी' का पूरा अनुवाद किया था।

परंतु प्रेमचंद के आगमन के साथ हिंदी उपन्यास का स्वरूप ही बदल गया। सबसे पहले उन्होंने हिंदी उपन्यास को सामाजिक एवं युगीन यथार्थ से जोड़ा। इसी लिए हिंदी उपन्यास के विकास में प्रेमचंद की केंद्रीय भूमिका मानी जाती है और हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा को - प्रेमचंदपूर्व, प्रेमचंदयुगीन और प्रेमचंदोत्तर काल के रूप में विभाजित किया जाता है ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रेमचंद अपने समय के जीवन यथार्थ को अधिकाधिक ईमानदारी से अपने कथा-साहित्य में प्रस्तुत करने में सफल रहे। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।'

इस बात में दो मत नहीं है कि प्रेमचंद के उपन्यासों की यथार्थ चेतना ही उनकी मूल शक्ति है। यथार्थ के दो आयाम होते हैं- व्यक्ति का यथार्थ और समाज का यथार्थ। प्रेमचंद ने यथार्थ के इन दोनों आयामों को अपने उपन्यासों में पूरी ईमानदारी से उभारा है और उत्कर्ष तक पहुँचाया है। यही प्रेमचंद का महत्त्व है; यही उनका सबसे बड़ा

योगदान है ।

इसी तरह हिंदी कहानी के विकास को भी, प्रेमचंद को केंद्र में रखकर, तीन कालों में विभाजित किया गया है : प्रेमचंदपूर्व की हिंदी कहानी, प्रेमचंदयुगीन हिंदी कहानी और प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी। प्रेमचंद के पूर्व की अधिकतर कहानियाँ आदर्शवादी और उपदेशात्मक थीं। प्रेमचंद ने सामाजिक समस्याओं को अपनी कहानियों का विषय बनाया।

प्रेमचंद के बाद के हिंदी कथा साहित्य में सामाजिक यथार्थ और गाढ़ा हुआ। समाज सत्य के साथ-साथ व्यक्ति सत्य को भी उसमें स्थान मिला।

प्रेमचंद के बाद के हिंदी उपन्यास-लेखन में होने वाले बदलाव का निदर्शन करते हुए डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते हैं : 'प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासकारों ने बाह्य क्रिया-कलापों एवं घटना-व्यापारों को ही प्रधानता दी थी। जबकि प्रेमचंद ने मनुष्य के बाह्य आचरणों के साथ-साथ उसके विचारों और अनुभूतियों का अंकन भी प्रारंभ किया; किंतु आगे चलकर मानव मन की संचरण भूमियों का अन्वेषण-विश्लेषण ही प्रधान होता गया और इस तरह आधुनिक उपन्यास व्यक्तिनिष्ठ अनुभूति के आधार पर ही निर्मित होने लगे। ... अब बाह्य आचरण से हटकर उपन्यास लेखकों का ध्यान व्यक्ति की रहस्यमय अंतर्वृत्तियों पर ही केंद्रित हो गया।'

इस दृष्टि को विकसित करने में मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण के आधुनिक विचारकों ने विशेष प्रेरणा दी। फ्रॉयड, एडलर, युंग आदि मनोविज्ञान के चिंतकों ने मन की अनेक अंतर्भूमियों का निर्देश किया और उन्हीं के प्रकाश में मानव आचरणों की व्याख्या का मार्ग प्रशस्त हुआ।

हिंदी में सर्वप्रथम जैनेंद्र ने व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व को अपनी औपन्यासिक कथाओं

का मूलाधार बनाया। उन्होंने व्यक्ति के अंतर्मन को उद्वेलित करने वाली भावनाओं की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं का अंकन किया। किंतु जैनेंद्र बड़े ही सजग एवं सतर्क रचनाकार हैं। उन्होंने अपने पात्रों का मनोविश्लेषण इतने सहज, संवेद्य एवं हार्दिक ढंग से किया है कि वह आरोपित-सा नहीं लगता। उनमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही नहीं, आध्यात्मिक अन्वेषण भी है।

स्वतंत्रता के बाद देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में भारी बदलाव आया, जिसका व्यापक प्रभाव साहित्य की हर विधा पर पड़ा। इस बदलाव की ही एक परिणति है महिला लेखन। इसी दौर में महिला रचनाकारों की एक लंबी कतार सामने आती है।

हिंदी की महिला कथाकारों में चित्रा मुद्‌गल का विशिष्ट स्थान है। उनका सारा लेखन बड़ा ही साफ-सुथरा और कम से कम विवादास्पद है।

प्रस्तुत शोधप्रबंध का दूसरा अध्याय चित्रा मुद्‌गल के जीवन संदर्भों तथा उनके लेखन से संबंधित है। रचनाकार का जीवन उसकी रचनाशीलता में व्यक्त होता है। चित्राजी का प्रारंभिक पारिवारिक जीवन आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते बीता। परंतु बाद में स्थिति अच्छी हो गई। उनको जीवन के विभिन्न मोड़ों पर संघर्ष करना पड़ा है।

चित्राजी का विवाह हिंदी के कवि-कथाकार श्री अवधनारायण मुद्‌गल के साथ १७ फरवरी, १९६५, को हुआ। अवधनारायणजी और चित्राजी की मुलाकात एक आकस्मिक घटना थी। अवधनारायण जी उस समय 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की पत्रिका 'सारिका' के उपसंपादक थे। अंतःविश्वविद्यालय की कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत अपनी एक कहानी को छपवाने के लिए चित्राजी 'सारिका' कार्यालय

में गई थीं। वहाँ से उन्हें अवधनारायण जी के पास भेजा गया। अवधनारायण जी उस समय 'सागर विहार' नामक गेस्ट हाउस में रहते थे। वहीं उनसे चित्राजी की पहली मुलाकात हुई। इस पहली ही मुलाकात ने उन दोनों को प्रणय-सूत्र में बाँध दिया।

चित्रा मुद्गल ने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से जो कुछ लिखा है, वह उनके प्रत्यक्ष अनुभवों का हिस्सा है। चित्राजी के जीवनानुभवों का संक्षिप्त ब्योरा इस अध्याय में दिया गया है। उन्होंने तीन उपन्यास - एक जमीन अपनी, आवाँ तथा गिलिगडु और ६०-७० की संख्या में कहानियाँ लिखी हैं। उनके तीनों उपन्यास अपनी विषय वस्तु की दृष्टि से परस्पर बहुत भिन्न हैं। 'एक जमीन अपनी' का केंद्रीय विषय विज्ञापन के क्षेत्र में महिलाओं का शोषण। 'आवाँ' उनका सबसे अधिक प्रसिद्ध उपन्यास है। उसका फलक बहुत व्यापक है। फिर भी ट्रेड यूनियनों की आपसी राजनीति उसका केंद्रीय विषय है। इसी तरह 'गिलिगडु' का विषय लीक से बहुत हटकर है। समाज में वृद्धों की अवदशा का बहुत मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

अगर उनकी विचारधारा और प्रभाव की बात करें, तो उन पर गोर्की, टॉलस्टाय, प्रेमचंद, रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी आदि का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। यद्यपि वे कम्यूनिस्ट पार्टी का कार्ड होल्डर नहीं हैं, फिर भी वे मार्क्सवादी विचारधारा को स्वीकार करती हैं। उनके अनुसार किसी पार्टी का कार्ड होल्डर बनना, उस पार्टी के राजनीतिक और सामाजिक विचारों को बिना किसी आशंका के स्वीकार करना है। वे मानती हैं कि मार्क्सवादी विचारधारा के प्रकाश में सर्वहारा को भली भाँति समझा जा सकता है। उनकी यह धारणा है कि किसी राजनीतिक पार्टी से संबद्ध हुए

बिना भी सामाजिक कार्यों में हिस्सा लिया जा सकता है ।

चित्राजी की कहानियाँ भी जीवन के विविध रंगों में रँगी हुई हैं । फिर भी उनके केंद्र में स्त्री-उत्पीड़न ही प्रमुख है ।

तीसरे अध्याय में हिंदी की महिला कथाकारों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । वास्तव में चित्राजी जिस युग की कथाकार हैं, उस युग की चेतना विविध रूपों में अगल-अलग महिला कथाकारों की रचनाओं में व्यक्त हुई है । अन्य महिला कथाकारों की रचनाशीलता की विशिष्टता के परिप्रेक्ष्य में चित्राजी की रचनाशीलता किन अर्थों में विशिष्ट है, यह दिखाने के लिए उनकी समकालीन महिला कथाकारों का परिचय जानना जरूरी है ।

हिंदी कथा साहित्य में प्रारंभिक पीढ़ी की कथा लेखिकाओं ने जहाँ घरेलू नारी के जीवन की त्रासदी तथा यातना के चित्रण के साथ उसकी स्थिति में सुधारोन्मुख विषय पर कहानियाँ तथा उपन्यास लिखे, वहीं समकालीन महिला कथाकारों ने अपने अनुभव क्षेत्र को विस्तृत करते हुए ऐसी कथाएँ लिखीं, जिनमें समाज की दोहरी नैतिकता का परदाफाश हो । साथ ही घर के बाहर जाकर काम करने वाली स्त्रियों की दोहरी भूमिका का यथार्थ अंकन किया । इसके अलावा स्त्री-पुरुष के संबंधों की सूक्ष्मताओं को नए-नए रूपों में प्रस्तुत किया ।

इस काल की लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में मात्र नारी जीवन से संबंधित विषयों पर ही नहीं लिखा, बल्कि समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया । उन्होंने समाज में व्याप्त लिंगभेदी मानसिकता और व्यवहार में दोहरेपन के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है । पुरुष प्रधान समाज में नारी सदियों से दोयम दर्जे की नागरिक बन रही है । सारे मूल्य, मान्यताएँ, परंपराएँ, नाते-रिश्ते

स्त्री चुपचाप सहती रही है। समकालीन लेखिकाओं ने पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था में पनपी विसंगतियों, विरूपताओं-विडंबनाओं को बड़ी गहराई से उकेरा है।

यों तो प्रेमचंद युग में ही हिंदी कथा साहित्य के क्षेत्र में महिला रचनाकारों का प्रवेश हो चुका था। किंतु स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद नारी जागरण और स्त्री-शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप इस क्षेत्र में महिला रचनाकारों का जोरदार प्रवेश हुआ। हिंदी उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में महिला लेखन अपनी भिन्न पहचान बनाने में अधिक सफल रहा। स्वातंत्र्योत्तर काल की भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों ने निश्चित रूप से महिलाओं की चेतना को नारी जीवन के संदर्भ में झकझोरा।

हिंदी कथा साहित्य में साठ के दशक से महिला कथा लेखन में बहुत तेजी आई। यह घटना इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि साहित्य सृजन के लिए संवेद्य मनोगुण नारी की बौद्धिक क्षमता को तो रेखांकित करते ही हैं, साथ ही यह सत्य भी उभरकर सामने आने लगा कि नारी स्वयं को पुरुष के समकक्ष साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी स्थापित कर सकने में सक्षम हो सकती हैं।

नारी के अनुभव और नारी जीवन का बोध पुरुष से अनेक अर्थों में भिन्न होता है। वह अपनी निजता को अपने ढंग से व्यक्त करती है। स्त्री के अपने निजी अनुभव स्त्री ही स्वाभाविकता के साथ लिख सकती है - यह बात साबित हो चुकी है। वैसे भी कल्पना और यथार्थ परस्पर विरोधी तत्त्व हैं। इसीलिए स्त्री के अनुभवों को पुरुष की कल्पना द्वारा लिखना एक भिन्न धरातल का लेखन होता है।

समकालीन महिला लेखन पर पश्चिम की नारीवादी विचारधारा का काफी प्रभाव दिखाई देता है। इस विचारधारा के प्रभाव में आकर कुछ लेखिकाओं ने पुरुष

सत्तात्मक समाज के प्रति विद्रोह के नाम पर नारी जीवन में 'अर्थ और सेक्स' को केंद्र में रखकर साहित्य रचने का प्रयास किया। इनकी अधिकतर रचनाओं में 'बोल्डनेस' के नाम पर सेक्स के उद्धत प्रसंगों का चित्रण ही विशेष मिला है। इन लेखिकाओं ने नारी मन की कसमसाहट, छटपटाहट, यौन-वर्जनाओं को नकारने के साथ स्वच्छंद काम संबंधों को खुली स्वीकृति दी है। विवाह पूर्व और विवाहेतर काम संबंधों का समर्थन किया है।

हिंदी के महिला लेखन के बारे में डॉ. रामचंद्र तिवारी का अभिमत है कि परंपरागत संस्कारों और नई मानसिकता के द्वंद्व के बीच पिसती हुई मध्यवर्गीय नारी के जीवन यथार्थ का अत्यंत प्रामाणिक चित्र इन कथा लेखिकाओं ने प्रस्तुत किए हैं। इस दृष्टि से हिंदी उपन्यास का यह पक्ष बहुत समृद्ध हुआ है और अब यह विश्वास किया जा सकता है कि निकट भविष्य में महिला रचनाकार अपने उपन्यासों में विस्तृत कथा भूमि को आधार बनाकर आज के समग्र जीवन यथार्थ को अभिव्यक्ति देंगी और हिंदी उपन्यास को नई दृष्टि, नया सौंदर्य और नए शिल्प से समृद्ध करेंगी।

चौथे अध्याय में चित्राजी के कथा साहित्य के वस्तुपक्ष का अनुशीलन किया गया है। चित्राजी ने परिमाण में बहुत अधिक नहीं लिखा है; परंतु जो लिखा है महत्त्वपूर्ण लिखा है। उन्होंने कुल तीन उपन्यासों की रचना की है : १. एक जमीन अपनी, २. आवाँ तथा ३. गिडिगलु।

'एक जमीन अपनी' उपन्यास विज्ञापन की दुनिया के असली चेहरे को बेनकाब करता है। विज्ञापन की दुनिया में अपना स्थान बनाने के लिए एक महिला की जद्दोजहद, पश्चिम के नारी-मुक्ति आंदोलन को केवल देह-मुक्ति तक सीमित न रखते हुए उसे सही अर्थों में ग्रहण करना, कामकाजी स्त्रियों का पारिवारिक संघर्ष,

अपने ही परिवार के सदस्यों द्वारा लड़कियों का यौन-शोषण, श्रमिक आंदोलनों की विसंगतियों एवं अंतर्विरोधों की समीक्षा, वृद्धावस्था की समस्या चित्राजी के उपन्यासों के प्रमुख विषय हैं ।

'एक जमीन अपनी' विज्ञापन जगत से जुड़ी दो कामकाजी महिलाओं की कथा है । इस उपन्यास में ऐसी कई कंपनियों का जिक्र हुआ है, जो अपनी कामयाबी के लिए स्त्री का उपयोग वस्तु के समान करती हैं । इसलिए इस उपन्यास में चित्राजी ने इस बाजारीकरण के युग में विज्ञापन कंपनियों की ज्यादतियों और उनके छल-कपट की खूब खबर ली है ।

'एक जमीन अपनी' उपन्यास में नव औपनिवेशिक काल के जीवन को प्रस्तुत करने के साथ कीचड़ भरे विज्ञापन जगत का पूर्णतः खुलासा हुआ है । इन सभी क्षेत्रों में नारी जीवन संघर्षपूर्ण नजर आता है । इसी तरह नारी-स्वातंत्र्य संबंधी मिथ्या धारणा को दूर करने में यह उपन्यास पूर्णतः सफल प्रतीत होता है ।

नाटकीयता के बिना खुरदुरे यथार्थ की अभिव्यक्ति इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है । इस उपन्यास ने विज्ञापन के क्षेत्र की विसंगतियों को परत दर परत खोलने के साथ-साथ स्त्री-स्वातंत्र्य की नई व्यख्या भी दी है । इस उपन्यास के बारे में हम यह भी कह सकते हैं कि समकालीन हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में यह उपन्यास बहुआयामी जीवन संदर्भों के अन्वेषण का सही दस्तावेज है ।

'आवाँ' उपन्यास स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की ट्रेड यूनियनों की संघर्ष-चेतना और उस चेतना को तहस-नहस करने वाले माफियाओं, गुंडों एवं भ्रष्ट राजनीतिक क्रिया-कलापों की भर्त्सना है ।

इस उपन्यास की कथा का केंद्र बंबई महानगरी है, जहाँ एक जमाने में ट्रेड

यूनियनों का आरंभ हुआ। शुरू में ट्रेड यूनियनों का लक्ष्य महत्त्वपूर्ण था। आदर्श का मार्ग जन नेताओं ने अपनाया था। उनका विश्वास था कि संघर्ष से ही असमानता दूर होगी और संघर्ष से ही विकास संभव होगा। लेकिन उन जन नेताओं का सपना पूरा नहीं हो सका। आगे चलकर ट्रेड यूनियनें पूँजीपतियों के साथ दलाली और राजनीतिक गतिविधियों का अड्डा बन गईं और यहीं से मजदूरों की दुर्दशा शुरू हुई। चित्राजी ने इस उपन्यास में यूनियन नोताओं की कारगुजारियों का पर्दाफाश किया है।

इसी तरह 'गिलिगडु' उपन्यास में दो वृद्धों की कथा है। दोनों की पत्नियाँ गुजर चुकी हैं। रिटायर्ड सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह और रिटायर्ड कर्नल विष्णु नारायण स्वामी। ये दोनों वृद्ध अकेलेपन की पीड़ा से ग्रस्त हैं। यह पीड़ा बाबू जसवंत सिंह की मार्मिक कथा के रूप में प्रकट हुई है।

चित्राजी की कहानियों की संख्या भी बहुत ज्यादा नहीं है - लगभग ६०-७० कहानियाँ। परंतु उन कहानियों का फलक बहुत व्यापक है। उनमें समाज के विविध धरातलों पर जी रहे लोगों की समस्याओं को वाणी दी गई है। चित्राजी की ज्यादातर कहानियों में घर और दफ्तर दो-दो मोर्चों पर लड़तीं आत्मनिर्भर कामकाजी स्त्रियों की छटपटाहट अंकित की गई है। अपनी बहुत-सी कहानियों में उन्होंने घर की चौखट की कैद में घुटतीं मध्यवर्गीय शिक्षित किंतु घरेलू स्त्रियों की यातना को उजागर किया है।

स्वाधीनता के पचास-साठ साल बाद भी गाँव की अशिक्षित स्त्रियाँ सामंती परिवेश से मुक्त नहीं हो पाई हैं। कभी राजनीति के चलते, तो कभी उसे अकेली, कमजोर और बेसहारा समझ उसका शोषण किया जाता है। ये स्त्रियाँ यथाशक्ति अपने

शोषण का विरोध अवश्य करती हैं; परंतु उचित मार्गदर्शन के अभाव में उनका संघर्ष किसी रचनात्मक लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता। चित्राजी के लेखन की खास बात यह है कि उन्होंने स्त्री द्वारा स्त्री के उत्पीड़न का भी चित्रण किया है।

पाँचवें अध्याय में चित्राजी के कथा-शिल्प की चर्चा की गई है। वस्तु और शिल्प किसी रचना के अभिन्न अंग होते हैं। किसी रचनाकार की अनुभूति की सचाई और गहराई वस्तुपक्ष में व्यक्त होती है, तो शिल्प के रूप में उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा प्रकट होती है। चित्राजी के उपन्यासों एवं कहानियों में वस्तु के समान ही शिल्प भी उत्कृष्ट और विविधतापूर्ण है। किसी रचना के शिल्पपक्ष का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग भाषा और संवाद होते हैं। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग चित्राजी की सर्जनात्मकता की प्रमुख विशेषता है।

शिल्प की दृष्टि से भी चित्राजी का साहित्य उत्कृष्ट कहा जा सकता है। यद्यपि अपने उपन्यासों तथा कहानियों के संदर्भ में शिल्प-सौष्ठव उनका लक्ष्य नहीं है। फिर भी वे इन विधाओं के शिल्प के प्रति पर्याप्त सजग दिखती हैं। कुछ आलोचकों को उनकी अनेक कहानियों में शिल्पगत कमजोरी दिखाई पड़ती है। इसका कारण यह हो सकता है कि लेखिका की किसी बात के प्रति संवेदनात्मकता इतनी तीव्र है कि वे उन आवेगों को कई रूपों में प्रकट करना चाहती हैं। अतः कथ्य के मूल्य पर वे शिल्प का कलात्मक संस्कार नहीं करतीं। समाज में स्त्रियों की स्थिति में सुधार उनका अभीष्ट है; दीन-दुखी, शोषित-वंचित की स्थिति में सुधार उनका अभीष्ट है। अतः उनके साहित्य में संदेश महत्त्वपूर्ण शिल्प नहीं है। फिर भी कलात्मकता की दृष्टि से उनके साहित्य में वे सारी विशेषताएँ मौजूद हैं, जो किसी साहित्य को उत्कृष्टता प्रदान करती हैं।

चित्राजी के संपूर्ण साहित्य में आवश्यकतानुसार विविध प्रकार की शैलियों का उपयोग हुआ है; जिनमें प्रमुख शैलियाँ हैं वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, आत्मकथनात्मक शैली, संवादात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, मनोविश्लेषणात्मक शैली आदि।

उनकी भाषा में अनेक स्तर पाए जाते हैं। पात्रों तथा विषय के अनुसार उनकी भाषा में अंतर देखा जा सकता है। गंभीर, परिष्कृत और प्रौढ़ भाषा जहाँ उनकी चिंतनशीलता को प्रतिबिंबित करती है, वहीं बंबइया हिंदी का सफल प्रयोग समाज से उनके निरंतर जुड़ाव का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

उपसंहार किसी शोध-प्रबंध का अंतिम हिस्सा होता है। 'उपसंहार' में समग्र कार्य को समेटकर संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है। 'उपसंहार' के महत्त्व को यह कहकर भी रेखांकित किया जा सकता है कि किसी शोध-प्रबंध के उपसंहार को पढ़ लेने से समग्र शोध-प्रबंध का जायजा मिल सकता है, अगर उपसंहार सुव्यस्थित रूप में तथा पूरी कुशलता से लिखा गया हो।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के अंत में 'उपसंहार' के अंतर्गत चित्राजी की समग्रतः उपलब्धियों का आकलन किया है। वैसे तो चित्राजी ने अपने उपन्यासों और कहानियों में विषय वस्तु के रूप में समग्र समाज की प्रमुख समस्याओं और विसंगतियों को लिया है; फिर भी उनके पूरे साहित्य के केंद्र में स्त्री-जीवन और स्त्री समस्याएँ ही प्रमुखता के साथ अभिव्यक्त हुई हैं। उनमें भी विशेष फोकस में कामकाजी महिलाओं की जद्दो-जहद है।

यह सही है कि पुरुष निर्मित समाज में स्त्री का स्थान दूसरे दर्जे का है। यह भेद मिटाकर ही समाज में स्त्री को सही स्थान दिलाया जा सकता है। हिंदी लेखिकाओं

का एक वर्ग पश्चिम के नारीवाद से प्रेरणा लेकर इस आंदोलन को सीमित अर्थ में लिया है। उन्होंने नारी-स्वातंत्र्य का अर्थ सिर्फ आर्थिक निर्भरता और यौन स्वच्छंदता लिया है और उसी का चित्रण अपने साहित्य में किया है। ऐसा लगता है मानो उनकी दृष्टि में नारी के पास अपने देह के अलावा और कुछ है ही नहीं।

परंतु, हिंदी में कुछ ऐसी भी लेखिकाएँ हैं, जो इस धारणा से सहमत नहीं हैं। वे नारी-स्वातंत्र्य आंदोलन को पुरुष बनाम नारी के अर्थ में नहीं ग्रहण कहतीं। वे पुरुषों के साथ सहभागिता और सामंजस्य की पक्षधर हैं। ऐसी लेखिकाओं में चित्रा मुद्‌गल का स्थान सर्वप्रमुख है। वे भारतीय संस्कृति एवं परंपरा की पक्षधर हैं। वे विवाह संस्था और परिवार संस्था में गहरी आस्था रखती हैं। अतः उनके साहित्य में चित्रित नायक-नायिकाओं को सामाजिक-नैतिक बंधनों के प्रति विद्रोह की छूट नहीं है। जो भी पात्र नैतिकता के बंधनों से विद्रोह कर यौन उच्छृंखलता को अपनाता है, उसकी परिणति पतन में होती हुई दृष्टिगत होती है। चित्रा मुद्‌गल की बहुत कम नायिकाएँ पति को छोड़कर दूसरे के साथ घर बसाती हैं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि चित्रा मुद्‌गल समाज तथा परिवार में पुरुष के वर्चस्व को स्वीकार करती हैं। उनका मानना है कि संबंध विच्छेद केवल पति-पत्नी को ही अलग नहीं करता; बल्कि उनकी संतानों के व्यक्तित्व एवं भविष्य को छिन्न-भिन्न कर देता है।

इस तरह यह बात स्पष्ट होती है कि चित्राजी सामाजिक हित की पक्षधर हैं। वे पारस्परिक संघर्ष की नहीं, बल्कि आपसी सामंजस्य की बात करती हैं। नारी-मुक्ति के लिए वे पुरुष को प्रतिपक्ष बनाना नहीं चाहतीं। वे इस सत्य को नजरअंदाज नहीं करतीं कि भारत में नारी की दशा में सुधार लाने का प्रयास सबसे पहले पुरुषों ने ही किया है।

कृतज्ञता ज्ञापन

सर्वप्रथम मैं परम पिता परमेश्वर के श्रीचरणों में अपने शब्द रूपी श्रद्धा सुमन अर्पण करता हूँ, जिनकी असीम कृपा एवं शुभाशीष से आज मेरा यह कार्य पूर्ण होने जा रहा है । इस अवसर पर मैं अपने पिता तथा माता के चरणों में वंदन करता हूँ । मेरे इस शोधकार्य में मेरी जीवन संगिनी श्रीमती दुर्गा ने सदैव मेरे मनोबल को आगे बढ़ाया और प्रत्येक क्षण मेरा साथ दिया । मैं उनके प्रति मेरा स्नेह भाव प्रकट करता हूँ । अनुसंधान जैसा जटिल और दुरूह कार्य किसी एक व्यक्ति का कार्य नहीं है । परंतु यह अनेक व्यक्तियों के सामूहिक परिश्रम तथा प्रयत्नों से सही रूपाकार ग्रहण करता है । मुझे भी अपने इस शोधकार्य में अनेक विद्वानों का सहयोग मिला, जिनके सहयोग, स्नेह और कुशल मार्गदर्शन के बिना शायद यह कार्य इतनी सुगमता से संपन्न नहीं हो पाता । प्रस्तुत अनुष्ठान में जो भी गुरुजनों एवं विद्वानों ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मेरा धर्म है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध विनियन एवं वाणिज्य महाविद्यालय माणावदर के हिंदी विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक एवं सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की हिंदी पाठ्यक्रम समिति के उपाध्यक्ष परम आदरणीय, सम्माननीय गुरुवर डॉ. मेरगसिंह ए. यादव साहब के कुशल एवं आत्मीय निर्देशन में तैयार किया गया है । डॉ. यादव साहब हिंदी के वरिष्ठ प्रध्यापक हैं । अति व्यस्त जीवन में से भी समय निकालकर उन्होंने विषय-चयन से लेकर शोध-प्रबंध की पूर्णता तक जिस सरलता, सहृदयता और आत्मीयता का परिचय दिया है, उसके लिए मैं सदैव उनका ऋणी रहूँगा । उनके प्रति आदर

भाव के साथ मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। साथ-साथ आदरणीय डॉ. शिवकुमार मिश्र जी के प्रति भावपूर्ण कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य में सहयोग दिया।

इस संशोधन यात्रा में मेरे परिवार के लोगों को मैं कैसे भूल सकता हूँ। अतः मैं मेरे जीजाजी श्री गंभीरदान गढ़वी तथा बहन विलास गढ़वी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका पूरा सहयोग इस पूरी प्रक्रिया में आदि से अंत तक रहा है।

अपने नारनभाई अभेसिंह गढ़वी के परोक्ष सहयोग को कैसे भूल सकता हूँ, जिनकी स्नेहसिक्त प्रेरणा मुझे शोध के दौरान सतत मिलती रही है।

अंत में, नामोल्लेख किए बिना सभी मित्रों-स्वजनों को स्मरण करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिनकी अमूल्य सद्भावना मेरे साथ रही है।

प्रा. दिलीप शिवदानभाई गढ़वी

अध्याय-१

हिंदी कथा साहित्य का परिचयात्मक अध्ययन

अध्याय-१

हिंदी कथा साहित्य का परिचयात्मक अध्ययन

१.१. प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ सन् १८५० से माना जाता है। यह युग हिंदी साहित्य में गद्य साहित्य के उद्भव का काल है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने पूरे आधुनिक काल को 'गद्य काल' कहा है। जाहिर है कि आधुनिक काल के पूर्व का सारा साहित्य पद्यमय था। आधुनिक काल में गद्य की अनेकानेक विधाओं का प्रादुर्भाव हुआ - जैसे : उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा आदि। इनमें से सर्वाधिक व्यापक और लोकप्रिय विधाएँ हैं : उपन्यास और कहानी।

हिंदी में उपन्यास लेखन का आरंभ तो भारतेंदु युग में ही हो चुका था - परंतु कहानी का आरंभ कुछ बाद में हुआ - सन् १९०० के आसपास। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इन दोनों विधाओं का विकास बड़ी तेजी से हुआ। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में काफी विविधता देखी जा सकती है। कहानी का विकास तो तरह-तरह के कहानी-आंदोलनों के रूप में हुआ।

हिंदी उपन्यास और कहानी की विकास-यात्रा को आगे हम अलग-अलग रेखांकित करेंगे :

(क) उपन्यास :

विश्व साहित्य में उपन्यास का प्रारंभ यूरोपीय नवजागरण के पश्चात् माना जाता है। यूरोपीय नवजागरण के परिणामस्वरूप यूरोप में आई औद्योगिक क्रांति तथा उससे उत्पन्न सामाजिक जटिलताओं ने उपन्यास जैसी नई साहित्य विधा को जन्म दिया।

दुनिया भर में अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में उपन्यास का जन्म बाद में हुआ। यूरोपीय औद्योगिक क्रांति का प्रभाव विश्व के अन्य देशों पर जैसे-जैसे पड़ता गया, वैसे-वैसे उपन्यास लेखन का चलन बढ़ने लगा।

हिंदी में उपन्यास लेखन का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में ही हो गया था। परंतु उत्कर्ष तक पहुँचने में पूरी एक शताब्दी लग गई। आरंभिक समय में उपन्यास तथा कहानी में कोई स्पष्ट विभाजन न था।

आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक माने जाने वाले भारतेंदु के पूर्व हिंदी कथा साहित्य मुख्यतः पौराणिक आख्यानों पर आधारित था। उस समय के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में तीन ग्रंथों के नाम लिए जाते हैं : १. लल्लूलालकृत 'प्रेमसागर' (सन् १८०३ से १८०९ के बीच), २. सदल मिश्रकृत 'नासिकेतोपाख्यान' (सन् १८०३) तथा ३. इंशाअल्लाखाँकृत 'रानी केतकी की कहानी' (सन् १८०० से १८१० के बीच)। इनमें से प्रथम दो पुराणकथाओं को आधार बनाकर लिखे गए हैं तथा तीसरी मौलिक रचना मानी जाती है।

भारतेंदु बाबू ने स्वयं तो कोई पूरा उपन्यास नहीं लिखा; किंतु उनकी प्रेरणा से दूसरों ने अन्य भाषाओं से अनेक उपन्यासों का अनुवाद किया। इस संबंध में बाबू ब्रजरत्नदास का कहना है कि यद्यपि भारतेंदुजी ने एक भी पूरा उपन्यास नहीं लिखा है; पर एक पत्र से ज्ञात होता है कि इन्हीं के उत्साह दिलाने से उस समय स्व. गोस्वामी

राधाचरण जी ने 'दीप-निर्वाण' तथा 'सरोजनी' का उल्था किया और बाबू गदाधरसिंह ने 'कादंबिनी' का संक्षिप्त तथा 'दुर्गेशनंदिनी' का पूरा अनुवाद किया था।

शिवनारायण श्रीवास्तव ने प्रेमचंद के पूर्व लिखे गए हिंदी के मौलिक उपन्यासों को पाँच वर्गों में विभाजित किया है : १. सामाजिक, २. ऐयारी-तिलस्मी, ३. जासूसी, ४. ऐतिहासिक तथा ५. भाव-प्रधान।

उस युग में लिखे गए सामाजिक उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य उपदेश देकर समाज-सुधार करना था। वास्तव में, अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव एवं अंग्रेजों के संपर्क से एक ओर रूढ़ि-जर्जर धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक मान्यताएँ शिथिल पड़ रही थीं और दूसरी ओर फैशन, मिथ्या-प्रदर्शन एवं हीनता की भावना बढ़ रही थी। ऐसी परिस्थिति में आरंभिक युग के लेखकों ने नीति-उपदेश-प्रधान उपन्यास लिखकर सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन का प्रयास किया। लाला श्रीनिवासदासकृत 'परीक्षा गुरु', बालकृष्ण भट्टकृत 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान', लज्जाराम शर्माकृत 'आदर्श दंपति' तथा 'बिगड़े का सुधार', गोपालराम गहमरीकृत 'नए बाबू' आदि इसी कोटि के उपन्यास हैं।

तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य पाठकों को मनोरंजन कराना ही था। ऐयारों के विस्मयकारी कार्यों एवं तिलस्मों की आश्चर्यजनक योजना से लेखक पाठक की कुतूहल-वृत्ति को शांत करता है।

जिस प्रकार देवकीनंदन खत्री ने ऐयारी-तिलस्मी उपन्यासों का प्रवर्तन किया, उसी प्रकार गोपालराम गहमरी (सन् १८६६-१९४६) ने जासूसी उपन्यासों का प्रवर्तन किया।

हिंदी में जासूसी उपन्यासों के प्रवर्तक गोपालराम गहमरी द्वारा लिखे उपन्यासों

की संख्या दो सौ तक पहुँचती है, जिनमें से कुछ मुख्य उपन्यासों के नाम हैं : 'अद्‌भुत लाश', 'गुप्तचर', 'बेकसूर की फाँसी', 'सरकती लाश', 'खूनी कौन है', 'बेगुनाह का खून', 'जमुना का खून', 'डबल जासूस', 'मायाविनी', 'जादूगरनी', 'भयंकर चोरी' आदि।

इस काल में ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना काफी मात्रा में हुई।

परंतु इस काल के ऐतिहासिक उपन्यास कहने भर के लिए ऐतिहासिक उपन्यास हैं; क्योंकि उनमें न तो ऐतिहासिक तथ्यों का निर्वाह दृष्टिगत होता है और न ही ऐतिहासिक यथार्थ का।

किशोरीलाल गोस्वामी ने सबसे अधिक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, जिनमें 'लवगंलता', 'कुसुमकुमारी', 'राजकुमारी', 'तारा', 'चपला', 'शाही महलसरा' आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त बलदेवप्रसाद मिश्र, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, बलभद्रसिंह, दुर्गादास खत्री आदि उस युग के प्रमुख उपन्यासकार हैं।

हिन्दी उपन्यास की विकास-यात्रा की चर्चा करते हुए सहज ही एक प्रश्न उठता है कि हिन्दी का प्रथम उपन्यास किसे माना जाए? इस संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। कोई इंशा अल्ला खाँ के 'रानी केतकी की कहानी'को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानता है तो कोई श्रद्धाराम फिल्लौरी के 'भाग्यवती' को; परंतु ज्यादातर विद्वान् लाला श्रीनिवास के 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का अंग्रेजी ढंग का प्रथम उपन्यास मानते हैं। 'परीक्षा गुरु' की मौलिक विशेषता यह है कि उसमें सर्वप्रथम यथार्थ जीवन-व्यापार को कथा का विषय बनाया गया है। लेखक ने समकालीन यथार्थ को तत्कालीन परिवेश में चित्रित किया है। समूचे उपन्यास में लेखक की दृष्टि आलोचनात्मक है। वह यथार्थ सद्-असद् रूप में पहचान उभारता है। साथ ही, इसमें हमारे समाज को बरबाद करने

वाले अनेक दोष जैसे- जुआ, शराब, वैश्या-नृत्य, झूठा-प्रदर्शन, चाटुकारिता, प्रेम आदि का पर्दाफाश करते हुए सच्ची राह पर चलने की शिक्षा दी गई है। परिवेश चित्रण के क्रम में लेखक ने देशी-विदेशी पात्रों की जागरूकता का अंतर भी स्पष्ट किया है। एक और बात भी- 'परीक्षा गुरु' उस समय का उपन्यास है, जब खड़ीबोली का गद्य साहित्यिक रूप लेने का प्रयत्न कर रहा था। इसलिए इसकी भाषा का स्वरूप बहुत कुछ अनगढ़ है। इसमें आए हुए अनेक शब्द आज की दृष्टि से अशुद्ध कहे जा सकते हैं; किंतु ये उस समय की भाषा और शब्दों का परिचय देते हैं।[२]

आगे चलकर प्रेमचंद के आगमन के बाद हिन्दी उपन्यास में एक नये युग का आरंभ होता है। प्रेमचंद के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने हिन्दी उपन्यास को सही जमीन दी। इसी कारण हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा को तीन चरणों में विभाजित करते समय प्रेमचंद को केंद्र में रखकर- प्रेमचंद पूर्वयुग, प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तर युग नाम दिया गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रेमचंद अपने समय के जीवन यथार्थ को अधिकाधिक ईमानदारी से अपने कथा-साहित्य में प्रस्तुत करने में सफल रहे। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।'

इस बात में दो मत नहीं है कि प्रेमचंद के उपन्यासों की यथार्थ चेतना ही उनकी मूल शक्ति है। यथार्थ के दो आयाम देते हैं- व्यक्ति का यथार्थ और समाज का यथार्थ। प्रेमचंद ने यथार्थ के इन दोनों आयामों को अपने उपन्यासों में पूरी ईमानदारी से उभारा है और उत्कर्ष तक पहुँचाया है। यही प्रेमचंद का महत्त्व है; यही उनका सबसे बड़ा

योगदान है।

वैसे तो प्रेमचंद का उपन्यास लेखन काल सन् १९०५ से आरंभ होता है; किंतु उनका आरंभिक लेखन उर्दू में हुआ। हिन्दी में उनका लेखन सन् १९१८ से 'सेवासदन' के प्रकाशन काल से आरंभ होता है। 'सेवासदन' से प्रारंभ उनकी रचना-यात्रा उनके जीवन के अंत समय 'गोदान' तक जारी रही। इन अठारह वर्षों के दौरान उन्होंने प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि आदि उपन्यासों की रचना की।

परंतु प्रेमचंदोत्तर युग में वैज्ञानिक विचारधारा ने वस्तुओं को देखने-समझने की नवीन दृष्टि दी। व्यक्ति तथा समाज की सीमाओं के संघर्ष में निरंतर व्यक्ति की महत्ता का आग्रह बढ़ता गया। भावुकता का स्थान बौद्धिकता ने लेना शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप सामाजिक बंधनों पर प्रहार होने लगे - सामाजिक बंधन शिथिल पड़ने लगे।

१.२. प्रेमचंदयुगीन कुछ प्रमुख उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास :

१. प्रेमचंद :

प्रेमचंद के उपन्यासों का मूल स्वर आदर्शवादी है। वे समाज का आदर्शवादी रूप-विधान चाहते थे और उसी आदर्शवाद को उन्होंने उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। प्रेमचंद का यह आदर्शवाद समस्याओं के समाधान में ही नही, पात्रों के स्वरूप एवं कथानक की गति से भी संबंधित है। समाज की भीषण समस्याओं को उन्होंने आदर्शवादी ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है। परंतु इसका आशय यह नहीं कि उनके उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण नहीं हुआ है। वास्तव में वे यथार्थवादी ही लेखक हैं। परंतु उनका यथार्थवाद समाज का हूबहू चित्रण करने वाला नहीं है। यह सही है कि उनके लेखन का आरंभ आदर्शवाद से होता है, परंतु आगे चलकर धीरे-

धीरे उनका आदर्शवाद कम होने लगता है और यथार्थवाद मजबूत होने लगता है। 'गोदान' उनकी सर्वाधिक यथार्थवादी रचना है। निर्मला, कर्मभूमि, रंगभूमि, कायाकल्प, सेवासदन, गबन आदि प्रेमचंद के अन्य महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं।

'सेवा सदन' उपन्यास सन् १९१४ में 'बाजारेहुस्न' के नाम से उर्दू में प्रकाशित हुआ था। खुद प्रेमचंद ने ही इसका हिंदी में 'सेवासदन' नाम से अनुवाद किया। इस उपन्यास में विधवाओं के प्रति प्रेमचंद की संवेदना व्यक्त हुई है।

दहेज की वजह से समाज में कितना अनर्थ होता है, इसका चित्रण प्रेमचंद ने 'सेवासदन' के माध्यम से किया है। 'सेवासदन' का महत्त्व इस बात से और बढ़ जाता है कि वेश्या और वेश्यालय का चित्रण करने में भी कहीं निम्नकोटि की वासना का चित्रण नहीं हुआ है।

'वरदान' प्रेमचंद का एक छोटा उपन्यास है। इसमें एक निष्फल प्रेम को कथा का आधार बनाया गया है। विद्वानों का मानना है कि इस उपन्यास में प्रेमचंद कथाकार के रूप में बहुत सफल नहीं हो पाए हैं।

'प्रेमाश्रम' उपन्यास की जो कथा प्रेमचंद ने चुनी है, उससे वे भली-भाँति परिचित थे। किसानों की आर्थिक, सामाजिक अवस्था, उनके शोषक - जमींदार तथा प्यादे-कारिंदे, गाँव का पटवारी, अफसर, पुलिस के सिपाही, दारोगा, सूदखोर महाजन आदि। यह उपन्यास युगों से पीड़ित तथा पद-दलित ग्रामीण जनता का अग्रदूत माना गया है।

'रंगभूमि' का प्रकाशन सन् १९२४ में हुआ और इसका फलक भी, तब तक के उनके अन्य उपन्यासों से विस्तृत है। इसमें पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं से आगे बढ़कर प्रेमचंद ने राजनीतिक समस्याओं के चित्रण का भी प्रयास किया है। पूँजीवाद

को जन्म देने वाले यंत्र-संचालित उद्योगों के गुण-दोष, पूँजीवादी व्यवस्था की शोषण-पद्धति, अंग्रेज शासकों के स्वेच्छाचार के साथ-साथ स्वदेशाभिमान के भी बड़े ही सुंदर चित्र प्रेमचंद ने उपस्थित किए हैं। सन् १९२० में महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए सत्याग्रह आंदोलन, उसके परिणामस्वरूप पुलिस और सेना द्वारा निहत्थे लोगों पर की गई गोलीबारी की प्रतिध्वनि इस उपन्यास में भी सुनाई पड़ती है।

'निर्मला' आकार में छोटा उपन्यास है। इसकी कथा अनेक समस्याओं को केंद्र में रख कर की गई है। इसकी मुख्य समस्या दहेज तथा अनमेल विवाह है। दहेज के अभाव में एक अबोध बालिका का विवाह उसके पिता के जितनी उम्र के व्यक्ति के साथ कर दी जाती है और वह जीवन भर अपने इस अभिशप्त जीवन को ढोती है। फिर भी उसका पति उसे शंका की दृष्टि से देखता है; जिससे आहत होकर वह आपना जीवन तिल-तिल करके समाप्त कर डालती है।

'गबन' उपन्यास की कथावस्तु अन्य उपन्यासों की तुलना में अधिक सुगठित और तर्कसंगत है। घटना, चरित्र और परिस्थिति की सापेक्षता इसमें पूरी तरह चरितार्थ हुई है। प्रारंभ से ही घटना और चरित्र एक-दूसरे पर घत-प्रतिघात करते हुए चलते हैं। बिसाती वाली एक छोटी-सी घटना 'जालपा' के बालमन को प्रभावित करती है और यह छोटा-सा प्रभाव ही घर और गाँव में पल्लवित होकर उसके उत्कट आभूषण-प्रेम के रूप में प्रकट हुआ है। इस आभूषण-प्रेम ने ही जालप और रमानाथ के सारे कष्टों का सर्जन किया है।

'कर्मभूमि' का प्रकाशन १९३२ में हुआ। यह सामाजिक उपन्यास के बजाय राजनीतिक अथवा राष्ट्रीय उपन्यास अधिक माना जाता है; क्योंकि इसमें समाज की समस्याओं के स्थान पर राष्ट्र की समस्याओं को प्रधानता दी गई है। 'कर्मभूमि' इस

नाते भी राष्ट्रीय उपन्यास कहा जाता है; क्योंकि इस उपन्यास में सन् १९३०-३१ में गांधीजी द्वारा चलाए गए सविनय अवज्ञा आंदोलन की झाँकी मिलती है।

'कर्मभूमि' में जहाँ एक ओर स्वाधीनता आंदोलन की गूँज है, वहीं दूसरी ओर देशहित में संकीर्ण स्वार्थों का त्याग करके जीवन को सार्थक बनाने का देशवासियों को संदेश दिया गया है।

'गोदान' प्रेमचंद का आखिरी तथा सबसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसका प्रकाशन १९३६ में हुआ। यह प्रेमंचद का पूर्ण यथार्थवादी उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंने अपने अन्य उपन्यासों की तरह समस्या का समाधान नहीं प्रस्तुत किया है; बल्कि समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

'गोदान' में भारतीय किसान अपनी आर्थिक और सामाजिक सीमाओं के साथ-साथ अपनी शक्तियों और संभावनाओं को भी उजागर करता है। प्रेमचंद ने 'गोदान' में भारतीय किसान को बहुत विशद एवं विश्वस्त रूप में उभारा है। अपने काल और देश के फलक पर चित्रित भारतीय किसान 'गोदान' में अपनी समूची समस्याओं, राग-विराग, शक्ति-सीमा तथा संक्रांतियों के साथ उभरा है। इसी लिए इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास की श्रेणी में रखा जाता है।

प्रेमचंद युग के अन्य उपन्यासकारों की सूची बहुत लंबी है। उनमें उल्लेखनीय नाम हैं- विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', आचार्य चतुर्सेन शास्त्री, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पांडेय बच्चन शर्मा 'उग्र', शिवपूजन सहाय, जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्र, वृदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, राहुल सांकृत्यायन, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आदि।

२. जयशंकर प्रसाद :

प्रेमचंद के समकालीन जयशंकर प्रसाद प्रधानतः कवि और नाटककार के रूप में ख्यात हैं। परंतु सामाजिक यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से 'कंकाल' और 'तितली' नामक उनके दो उपन्यास काफी महत्त्वपूर्ण हैं।

'कंकाल' प्रसाद का प्रथम उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् १९२९ में हुआ। 'कंकाल' में सामाजिक बंधनों एवं व्यक्ति की सहज प्रवृत्तियों के संघर्ष से उद्भूत विषमताओं का मार्मिक चित्रण किया गया है।

'कंकाल' के बारे में शिवनारायण श्रीवास्तव का मत है कि 'कंकाल' एक व्यंग्य-प्रधान उपन्यास है। प्रसाद जैसे तटस्थ एवं सहृदय कलाकार के हाथ में पड़कर यह परिपाटी बड़ी भावपूर्ण सिद्ध हुई है। प्रसाद ने 'कंकाल' में समाज के दलित, दुखी और कलंकित अंग को चित्रित कर मानो अभिमानी समाज को चेतावनी दी है : 'देखो, समाज के इस पतित, दलित अंग की ओर भी देखो। तुम्हारी अवहेलना से कितनी महत्ता नष्ट हुई जा रही है।'

'कंकाल' में मनुष्य को अनावृत्त करने का प्रयास किया गया है। हिंदू, मुस्लिम, ईसाई ये सब भेद मनुष्य कृत हैं। धार्मिकता के आडंबर एवं उच्चकुलोद्भवता के अहंकार आदि के नीचे मनुष्य की प्रवृत्ति सजग रहती है।

'तितली' प्रसाद का दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा-भूमि 'कंकाल' से भिन्न है। इसमें आदर्श प्रेम तथा आत्म-संयम का वर्णन किया गया है। इस उपन्यास में वर्णित समाज के अनेक स्तर हैं और इनकी शक्ति एवं दुर्बलता दोनों ही की ओर लेखक की दृष्टि है। 'तितली' भारतीय नारीत्व का प्रतीक है। दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करके अभावों के भी भी वह प्रसन्न रहती है और निर्भीकता और साहस के साथ उसने

अपने कर्तव्य का पालन किया। वस्तु-विन्यास की दृष्टि से भी यह उपन्यास काफी सुगठित माना जाता है। दो भिन्न कथाओं को लेकर भी प्रसाद ने उन्हें बड़ी कुशलता से सुसंबद्ध रखा।

३. वृंदावनलाल वर्मा :

प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वर्माजी मूलतः ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। किंतु उन्होंने सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं। किंतु उन्हें ऐतिहासिक उपन्यासों से अधिक ख्याति मिली है; क्योंकि हिंदी में उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास सर्वप्रथम वर्माजी ने ही दिए। वर्माजी ने बुंदेलखंड की भूमि पर बहुत भ्रमण किया है, वहाँ के इतिहास का गहन अध्ययन भी किया। ग्रामीण तथा नगर की जनता के निकट संपर्क में भी रहे। वहाँ की लोककथा किंवदंतियों से भी बहुत परिचित रहे। और उनमें अपनी अनुभूति और रूप-विधायिनी कल्पना का मिश्रण करके अपने उपन्यासों में अतीत को सजीव कर दिया है।

गढ़कुंडार, विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी, मृगनयनी, कचनार, कुंडलीचक्र, अचल मेरा कोई आदि वर्माजी के प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

'गढ़कुंडार' में चौदहवीं शताब्दी के बुंदेलखंड की राजनीतिक उथल-पुथल का बड़ा ही सुंदर चित्र उपस्थित किया गया है। वीरता के वैभव के वे अंतिम दिन थे। किंतु संयम के अभाव तथा उद्देश्य की क्षुद्रता के कारण उस अदम्य वीरता का दुरुपयोग किया गया और जुझौती के राजपुत्र आपस में ही जूझ कर मर गए।

इस उपन्यास में ऐतिहासिक सामग्री में कल्पना का भी पर्याप्त मेल है। कल्पना के सहारे ही नीरस ऐतिहासिक तथ्यों को साहित्यिक सरसता एवं सजीवता प्रदान की

गई है। वास्तव में मानव चरित्र कुछ सर्वकालिक विशेषताओं से युक्त होता है। विगत युग के पात्रों में इन मानवोचित गुणों की स्थापना में ही ऐतिहासिक उपन्यासकार की कला होती है।

'विराटा की पद्मिनी' शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है; बल्कि इतिहास की पृष्ठभूमि पर लिखा गया एक रोमांस है। अनेक कालों की घटनाएँ उठाकर एक ही कालखंड में रख दी गई हैं। इस बात को खुद लेखक ने भी स्वीकार किया है। लेखक का कहना है कि घटनाएँ सत्यमूलक हैं, यद्यपि उनमें से कोई इतिहास प्रसिद्ध नहीं है। पद्मिनी की कथा अनेक स्थानों पर प्रचलित है। पात्रों के नाम काल्पनिक हैं। यह सब होते हुए भी लेखक ने अपनी कहानी का जो समय लिया है, उसी के अनुकूल सभी घटनाएँ एवं पात्र हैं।

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' वर्माजी का तीसरा उपन्यास है। इसे शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास माना जाता है। वर्माजी ने बहुत प्रामाणिक साक्ष्यों के आधार पर यह उपन्यास तैयार किया है। इस उपन्यास में यह चित्रित किया गया है कि महारानी लक्ष्मीबाई के मन में बचपन से ही पराधीनता के प्रति विद्रोह की प्रबल भावना थी। इसी लिए अवसर पाकर उन्होंने सन् १८५७ में स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रथम संघर्ष में भरपूर योगदान दिया।

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' का चित्रपट बहुत व्यापक है। उसमें किसी एक विशेष प्रांत के नहीं, वरन् संपूर्ण राष्ट्र की मुक्ति के लिए किए गए महान अनुष्ठान का वर्णन है।

इस उपन्यास के अधिकांश पात्र तथा घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। स्थानों तक का वास्तविक विवरण देने का प्रयत्न किया गया है। एक तरह से यह उपन्यास लक्ष्मीबाई

का जीवन-चरित्र है। उनके जीवन और चरित्र के बारे में ज्ञात सामग्री को लेकर अपनी कल्पना के सहारे वर्माजी ने उनके एक शक्तिशाली व्यक्तित्व का निर्माण किया है।

'अचल मेरा कोई' उपन्यास आधुनिक ढंग के प्रेम तथा उसकी समस्याओं का वर्णन करता है। अचल कुंती का संगीत शिक्षक है; अचल कुंती से प्रेम भी करता था; परंतु कुंती सुधाकर से विवाह कर लेती है। कुछ समय के बाद अचल के यहाँ उसका आना-जाना फिर शुरू होता है। कुंती के कहने से अचल निशा नामक एक विधवा से विवाह कर लेता है। सुधाकर के मन में अचल तथा कुंती के संबंधों को लेकर संदेह पैदा होता है। अंततः परिणाम कुंती की आत्महत्या तक पहुँच जाता है। वह एक कागज पर लिखकर मरती है : 'अचल मेरा कोई ...'।

'अमरबेल' उपन्यास ग्राम्य जीवन की समस्याओं को आधार बनाकर लिखा गया है। ग्रामीण जीवन तथा उसकी अनेकमुखी समस्याओं की सर्वाधिक जानकारी प्रेमचंद को थी। परंतु प्रेमचंद के गाँव आजादी के पूर्व के गाँव थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारी उन्मूलन, सहकारिता आंदोलन, ग्राम-पंचायतों का गठन, गाँवों में बिजली की व्यवस्था आदि के कारण गाँवों का परिवेश परिवर्तित हो चुका है। साथ ही गाँवों की समस्याओं का रूप बदल चुका है 'अनीति से रुपया कमाने की धुन गाँवों तक में व्यापक रूप में फैली हुई है; जैसे हरे-भरे पेड़ पर अमरबेल।'

४. जैनेंद्र :

जैनेंद्र प्रेमचंद युग की सीमा में ही उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। उनका 'परख' उपन्यास १९३० में प्रकाशित हो चुका था। किंतु जैनेंद्र के बारे में एक खास बात यह कही जाती है कि प्रेमचंदयुगीन तथा व्यक्तिगत रूप से प्रेमचंद के बहुत करीबी होते हुए भी जैनेंद्र ने अपना सर्वथा भिन्न रास्ता बनाया है। खुद प्रेमचंद

भी जैनेंद्र की रचनाशीलता की प्रशंसा करते थे।

जैनेंद्र की कला का क्षेत्र बहुत व्यापक नहीं है। उन्होंने अपने जीवनानुभवों के विस्तृत वर्णन की अपेक्षा कुछ वैयक्तिक समस्याओं एवं जीवन स्थितियों के चित्रण को ही अपनी कला का ध्येय बनाया है। संभवतः यही कारण है कि उनके उपन्यास आकार में बहुत बड़े नहीं हैं। उन्होंने शिक्षित एवं सुसंस्कृत मध्यवर्ग की विशिष्ट प्रेम-समस्या को बहुत अनुराग के साथ चित्रित किया है। शायद इसी लिए सुनीता, सुखदा, विवर्त और व्यतीत की कथावस्तु प्रायः एक-सी है।

'परख' में मानवीय प्रवृत्ति तथा सामाजिक नियमों की विषमता से उद्‌भूत विधवा की समस्या का चित्रण है। बुद्धि-विधान से विधवा ठहराई गई एक नटखट, हँसोड़ देहाती लड़की 'कट्टो' ने प्राकृतिक नियमों के आग्रह से अनायास अपने हृदय की सारी श्रद्धा, सारा विश्वास, समस्त अनुराग अपने एक मास्टर के चरणों में निछावर कर दिया।

जैनेंद्र के उपन्यासों में 'सुनीता' का एक विशेष स्थान है; क्योंकि इस उपन्यास की घटनाएँ तथा पात्र सभी एक एक दृष्टि से असाधारण हैं। इसकी स्थिति व्यावहारिक जीवन में न होकर कलाकार के कल्पना लोक में ही है। किंतु वे जैसे भी हैं, अपने आप में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। कथानक का निर्माण अत्यंत सूक्ष्म उपादानों से किया गया है और कहानी की अपेक्षा एक विशेष उद्देश्य के प्रकाश में चरित्र का अध्ययन ही इस उपन्यास का ध्येय है। इस उद्देश्य को स्वयं जैनेंद्र ने अपने शब्दों में प्रकट करने की कोशिश की है।

'कल्याणी' की नायिका श्रीमती असरानी डॉक्टरनी हैं। उनके पति मिस्टर असरानी भी डॉक्टर हैं। श्रीमती असरानी बुद्धिमती हैं, सहृदय हैं, उदार हैं और अत्यधिक

भावप्रणव हैं। डॉ. असरानी में पुराने संस्कार बड़ी मजबूती से जड़ जमाए हुए हैं। पत्नी के प्रति वे बड़े सतर्क और संदेहशील हैं। एक बार पत्नी पर दुश्चरित्रता का आरोप लगाकर उन्हें बेतरह पीटा भी था।

'त्यागपत्र' उपन्यास नारी की सामाजिक स्थिति और उससे उद्‌भूत समस्याओं को ध्यान में रखकर चलता है। बेचारी मृणाल जब तक मायके में रही, भाभी द्वारा प्रताड़ित रही। उसके सहज एवं स्वाभाविक प्रेम का तिरस्कार करके उसकी इच्छा के विपरीत उसका विवाह एक अधेड़ वय के व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है। परंतु पति भी उसे निकाल देता है। इस तरह मृणाल की संपूर्ण दुगति सामाजिक विषमता का परिणाम है।

जैनेंद्र के अन्य उपन्यासों की भाँति 'सुखदा' उपन्यास भी चरित्र-प्रधान है। इसलिए इसमें भी कथानक या घटनाओं में कोई विशेष आकर्षण नहीं है; बल्कि चरित्रांकन में अंतर्भाव-व्यंजना पर अधिक बल दिया गया है। आत्मकथात्मक होने के कारण उपन्यास स्थान-स्थान पर प्रगाढ़ स्वानुभूति से सरस हो उठा है।

५. भगवतीचरण वर्मा :

भगवतीचरण वर्मा व्यक्तिवादी उपन्यासकारों की कोटि में आते हैं। उनके उपन्यासों के पात्र प्रायः मध्यवर्ग के होते हैं। इनके प्रायः सभी उपन्यासों में विशिष्ट विचारों के विश्लेषण की प्रधानता है और बड़ी कलात्मकता से उन्होंने पक्ष और विपक्ष दोनों के प्रस्तुतीकरण का सफल प्रयास किया है।

भगवतीचरण वर्मा आधुनिक विचारों के घोर पक्षपाती हैं। साथ ही साथ यथार्थवादी भी हैं। उनके पात्रों पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'तीन वर्ष' नामक उपन्यास में प्रभा के चरित्र का निर्माण पूर्णरूपेण पाश्चात्य सभ्यता

पर आधारित है।

सन् १९३४ में प्रकाशित 'चित्रलेखा' उपन्यास भगवतीचरण वर्मा का प्रथम महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। तमाम विवादों के बावजूद वर्माजी का यह उपन्यास अपने समय का बहुत चर्चित उपन्यास रहा है। विद्वान् इसे रोमा रोलाँ के 'थाया' उपन्यास की प्रेरणा से लिखा हुआ मानते हैं। चित्रलेखा में परिवेश और व्यक्ति का अंतर्विरोध दिखाया गया है। पूरा उपन्यास पाप-पुण्य की चर्चा में उलझा हुआ है।

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' भगवतीचरण वर्मा का बहुचर्चित राजनीतिक उपन्यास है। एक ही परिवार के सदस्य इस उपन्यास के पात्र हैं, जो परिस्थितिवश अपने अलग-अलग मार्ग चुन लेते हैं। अवध के तालुकेदार पं. रामनाथ अंग्रेजों के समर्थक हैं और ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी हैं। उनेक तीन पुत्र हैं : दयानाथ, उमानाथ और प्रभानाथ। दयानाथ कांग्रेसी हैं, उमानाथ कम्यूनिस्ट हैं तथा प्रभानाथ क्रांतिकारी। परिवार के चारों व्यक्तियों के रास्ते अलग-अलग हैं। तीनों पुत्र पिता के विरुद्ध हैं। वर्माजी ने इस उपन्यास के माध्यम से तत्कालीन भारतीय राजनीति की स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। विभिन्न पात्रों के माध्यम से गांधीवाद, साम्यवाद तथा आतंकवाद पर विचार किया गया है।

'आखिरी दाँव' उपन्यास में लेखक ने पूँजीवाद और व्यक्ति के संघर्ष का चित्र प्रस्तुत किया है। यह यथार्थवादी उपन्यास है। सेठ शिवकुमार एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो जीवन में धन का ही महत्त्व स्वीकार करता है। उनके सम्मुख चरित्र नाम की कोई चीज नहीं है।

वर्माजी के उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' की गणना हिंदी के महाकाव्यात्मक उपन्यासों में की जाती है। इस उपन्यास में एक ही परिवार की चार पीढ़ियों की कहानी

कही गई है। लेखक की मान्यता है कि इस संसार में परिवर्तन अपने आप होता है। दुनिया स्वतः विकासोन्मुख है : 'आज पचास साल में क्या से क्या हो गया। न जाने कितने नये लोग आए, न जाने कितने नये लोग चले गए। ई सब भगवान की लीला आय। ई पर हमार बस नाहीं। ... ये हैं तरह-तरह के चित्र, आप ही आप बनते हैं और मिट जाते हैं।'[३]

'भूले-बिसरे चित्र' में घूसखोरी, फरेब, साहुकारों का दृष्टिकोण, परपुरुष-प्रेम, पारिवारिक झगड़े, सामाजिक कुरीतियाँ, राट्रीय आंदोलन तथा बेकारी की समस्या आदि के चित्र बड़े सुंदर ढंग से उकेरे गए हैं।

६. विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' :

माँ, भिखारिणी, संघर्ष कौशिक के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'माँ' (१९२९) में पारिवारिक-सामाजिक जीवन का चित्रण किया गया है। 'भिखारिणी' (१९२९) में एक प्रेमकथा का वर्णन है। 'कौशिक' स्वयं गोद लिए गए थे। इसलिए वे खुद इस प्रथा की अच्छाइयों-बुराइयों से भली-भाँति परिचित थे। उन्होंने 'माँ' नामक उपन्यास में यही दिखाने का प्रयास किया है कि अपनी जननी का जो अकृत्रिम, स्वयं प्रवाहित स्नेह एवं मंगल भावना पुत्र के प्रति होती है, वह गोद लेने वाली 'माँ' में नहीं हो सकती।

७. चतुरसेन शास्त्री :

वय तथा लेखन-काल की दृष्टि से शास्त्रीजी का स्थान प्रसाद तथा वृंदावनलाल वर्मा के पहले आता है; किंतु रचना के महत्त्व की दृष्टि उस युग में इन्हें अधिक ख्याति नहीं मिल पाई थी। इन्होंने अधिकांशतः ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। हृदय की परख (१९१८), व्यभिचार (१८२४), हृदय की प्यास (१९३२), अमर अभिलाषा (१९३३)

तथा आत्महत्या (१९३६) इनके प्रारंभिक उपन्यास हैं।

शास्त्रीजी का पहला महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'वैशाली की नगर-वधू' है, जो सन् १९४८ में प्रकाशित हुआ। यह दो खंडों में विभाजित लगभग एक हजार पृष्ठों का वृहत्काय उपन्यास है। यह ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें गांधार से लेकर अंग तक के राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक ऊहापोह का कलात्मक अंकन किया गया है।

१.३. प्रेमचंदोत्तरयुगीन प्रमुख उपन्यासकार और उनके उपन्यास :

प्रेमचंद के बाद के हिंदी उपन्यास-लेखन में होने वाले बदलाव का निदर्शन करते हुए डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते हैं : 'प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासकारों ने बाह्य क्रिया-कलापों एवं घटना-व्यापारों को ही प्रधानता दी थी। जबकि प्रेमचंद ने मनुष्य के बाह्य आचरणों के साथ-साथ उसके विचारों और अनुभूतियों का अंकन भी प्रारंभ किया; किंतु आगे चलकर मानव मन की संचरण भूमियों का अन्वेषण-विश्लेषण ही प्रधान होता गया और इस तरह आधुनिक उपन्यास व्यक्तिनिष्ठ अनुभूति के आधार पर ही निर्मित होने लगे। ... अब बाह्य आचरण से हटकर उपन्यास लेखकों का ध्यान व्यक्ति की रहस्यमय अंतर्वृत्तियों पर ही केंद्रित हो गया।'[४]

इस दृष्टि को विकसित करने में मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण के आधुनिक विचारकों ने विशेष प्रेरणा दी। फ्रॉयड, एडलर, युंग आदि मनोविज्ञान के चिंतकों ने मन की अनेक अंतर्भूमियों का निर्देश किया और उन्हीं के प्रकाश में मानव आचरणों की व्याख्या का मार्ग प्रशस्त हुआ।

हिंदी में सर्वप्रथम जैनेंद्र ने व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व को अपनी औपन्यासिक कथाओं का मूलाधार बनाया। उन्होंने व्यक्ति के अंतर्मन को उद्वेलित करने वाली भावनाओं

की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं का अंकन किया। किंतु जैनेंद्र बड़े ही सजग एवं सतर्क रचनाकार हैं। उन्होंने अपने पात्रों का मनोविश्लेषण इतने सहज, संवेद्य एवं हार्दिक ढंग से किया है कि वह आरोपित-सा नहीं लगता। उनमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही नहीं, आध्यात्मिक अन्वेषण भी है।

१. यशपाल :

यशपाल मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित प्रेमचंदोत्तरयुगीन उपन्यासकार हैं। उन्होंने अपने प्रायः सभी उपन्यासों में प्रगतिशील दृष्टिकोण से समाजवाद को विश्लेषित किया है। इस बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए वे खुद लिखते हैं : 'प्रगतिशील साहित्य का काम समाज के विकास के मार्ग में आने वाली अंधविश्वास तथा रूढ़िवाद की अड़चनों को दूर करना है। समाज को शोषण की चट्टानों से मुक्त करना है।'

दादा कामरेड, देश-द्रोही, मनुष्य के रूप, पार्टी कामरेड, दिव्या, झूठा सच, बारह घंटे आदि यशापाल के प्रमुख उपन्यास हैं।

'दादा कामरेड' यशपाल का प्रथम उपन्यास है। इसका प्रकाशन १९४१ में हुआ था। इस उपन्यास की भूमिका में यशपाल ने लिखा है : 'संसार में पूँजीवाद, गांधीवाद और समाजवाद के संघर्ष के बीच परिस्थितियों, व्यवस्था और धारणाओं में सामंजस्य ढूँढ़ने का इस पुस्तक में प्रयास किया गया है।'[५]

'देशद्रोही' का प्रकाशन १९४३ में हुआ। १९४२ की स्वाधीनता क्रांति का इस उपन्यास पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। कम्यूनिस्टों ने इस क्रांति में देशवासियों का साथ नहीं दिया था। इसलिए लोगों ने उन्हें देशद्रोही कहना आरंभ कर दिया था। यशपाल ने इस उपन्यास के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि तत्कालीन परिस्थिति में कम्यूनिस्ट देशद्रोही नहीं थे।

'पार्टी कामरेड' उपन्यास का प्रकाशन १९४६ में हुआ। इसका कथानक बंबई नगर के इर्द-गिर्द घूमता है। इसमें घर के चौके-चूल्हे से लेकर नाविक विद्रोह तक की चर्चा की गई है।

'झूठा सच' यशपाल का बहुचर्चित उपन्यास है। इसका प्रकाशन दो भागों में हुआ है - १. वतन और देश तथा २. देश का भविष्य। इस उपन्यास के संबंध में यशपाल ने खुद लिखा है : 'झूठा सच' के दोनों भागों - वतन और देश और देश का भविष्य - में देश के सामयिक और राजनीतिक वातावरण को यथासंभव ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में चित्रित करने का यत्न किया गया है।[६]

कालावधि की दृष्टि से इस उपन्यास में सन् १९४२ के स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर सन् १९५७ तक की भारत की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का आलेखन किया गया है।

इस उपन्यास में लेखक ने देश के बँटवारे के समय और उसके पूर्व-पश्चात् की सांप्रदायिक विभीषिका में जलते हुए भारत और पाकिस्तान की जन-यातना का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

'मनुष्य के रूप' उपन्यास में प्रेम को केंद्र बिंदु बनाकर मनुष्य के अनेक रूपों को उद्घाटित किया गया है। यशपाल को प्रेम को चिरंतन स्थिर भाव नहीं मानते, वरन् वह एक आचरण है, जो व्यक्तियों को वर्गों के सामाजिक-आर्थिक ढाँचों के अनुरूप बदलता चलता है। अपने सभी उपन्यासों की तरह इसमें भी यशपाल का समाजवादी दृष्टिकोण दो तरह से व्यक्त हुआ है : १. व्यक्तियों और वर्गों के विश्लेषण के रूप में और २. समाजवादी संस्थाओं तथा व्यक्तियों के आचरण और खुलेपन, जीवंतता तथा मानवता की अभिव्यक्ति के रूप में।

२. अमृतलाल नागर :

प्रेमचंद के बाद उनकी परंपरा की कुछ और अधिक मनोवैज्ञानिक सचेष्टचता को लेकर सामाजिक अध्ययन की जागरूकता अमृतलाल नागर में दिखाई पड़ती है। महाकाल, सेठ बाँकेमल, शतरंज के मोहरे, सुहाग के नपूर, बूँद और समुद्र, अमृत और विष आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं।

'महाकाल' उपन्यास बंगाल के अकाल से ग्रस्त जनता का करुण चित्र प्रस्तुत करता है। अकाल के समय बंगाल की सामाजिक, नैतिक तथा आर्थिक मान्यताएँ क्या थीं, इसी का आलेखन इस उपन्यास में किया गया है।

'महाकाल' अकाल से पीड़ित उस समाज की कहानी है, जिसमें एक ओर लोग खाने के बिना मरते हैं, तो दूसरी ओर कुछ लोग सिर्फ अपने व्यापार की बात सोचते हैं और तीसरी ओर जमींदार वर्ग अपने वैभव के नशे में विलासिता का जीवन जीता है।

'बूँद और समुद्र' उपन्यास सन् १९५६ में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का कथा-फलक अत्यंत विस्तृत है। इसमें समाज की सभी छोटी-बड़ी समस्याओं का विचार किया गया है। नागरजी के ही शब्दों में : 'इस उपन्यास में मैंने अपना और आपका - अपने देश में मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुण-दोष भरा चित्र ज्यों का त्यों आँकने का यथावत्, यथासाध्य प्रयास किया है। अपने और इन चरित्रों से ही इन पात्रों को गढ़ा है।'[७]

यह उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन की विसंगतियों, समस्याओं और संबंधों को व्यक्त करने के लिए लखनऊ के एक मुहल्ले को कथा-भूमि बनाकर चला है।

३. उपेंद्रनाथ 'अश्क' :

विषय-चयन, दृष्टिकोण, भाषा-शैली आदि की दृष्टि से उपेंद्रनाथ 'अश्क' को विद्वान प्रेमचंद की परंपरा का लेखक मानते हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के विषय समाज से छाँटे हैं; इसलिए वे प्रगतिशील रचनाकार भी माने जा सकते हैं। फिर वे स्वतंत्र प्रकृति के लेखक हैं। वे किसी वाद से प्रभावित नहीं है। उनके उपन्यासों में निम्न मध्यवर्गीय समाज में रहनेवाले व्यक्तियों की कुंठाओं, उनके नैतिक नियंत्रणों और उनकी आर्थिक स्थितियों की चर्चा की गई है।

'अश्क' के उपन्यासों में मुख्य दो समस्याएँ हैं : एक का संबंध है रोटी से और दूसरे का संबंध है नारी से; क्योंकि 'अश्क' यह मानते हैं कि मनुष्य का विकास तब तक नहीं हो सकता, जब तक वह आर्थिक पहलुओं से स्वतंत्र न हो और सेक्स की कुंठाओं से मुक्त न हो।

'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास का कथ्य अश्क के अन्य उपन्यासों से कुछ हटकर है। गांधीजी के प्रभाव से बहुत-से स्वप्नजीवी लोग आधुनिक आश्रम-जीवन की कल्पना को साकार करने में संलग्न हुए। इसी भाव-भूमि को लेकर अश्क ने इस उपन्यास की रचना की है।

इस उपन्यास में आधुनिक आश्रमों या सर्वोदयी संस्थाओं की विसंगतियों को उद्‌घाटित करता है। ऐसी संस्थाएँ मानव-प्रेम, शांति और सेवा के बड़े-बड़े स्वप्न पालती हैं। किंतु सच तो यह है कि वे उन सपनों का भीतर से साक्षात्कार कम करती हैं और पोस्टरों की तरह बाहर सिर्फ टाँगती भर हैं।

इसके अलावा उपेंद्रनाथ अश्क के 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना', 'गरम राख', 'बाँधो न नाँव इस ठाँव' आदि बहुत प्रसिद्ध उपन्यास हैं। वे सभी उपन्यास

मध्यवर्गीय जीवन को बड़े व्यापक फलक पर प्रस्तुत करते हैं।

४. इलाचंद्र जोशी :

हिंदी उपन्यास में मनोवैज्ञानिक प्रणाली के प्रथम प्रयोक्ता इलाचंद्र जोशी माने जाते हैं। पात्रों के अवचेतन मन की गुत्थियों को खोलकर उसे सुलझाने में उन्हें अधिक कुशलता हासिल है। उन्होंने अपने उपन्यासों के कथानक के लिए प्रायः मध्यवर्ग का ही चयन किया है।

जोशी जी यह मानते हैं कि व्यक्ति का अहंभाव ही उसे समाज से अलग हटाता है और नाना प्रकार के असामाजिक कार्यों को जन्म देता है।

घृणामयी, संन्यासी, प्रेत और छाया, पर्दे की रानी, निर्वासिता, मुक्तिपथ, जिप्सी और जहाज का पंछी उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

५. अज्ञेय :

अज्ञेय मूलतः कवि और चिंतक हैं। किंतु सिंर्फ तीन उपन्यास लिखकर उन्होंने हिंदी उपन्यास साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण ही नहीं अतिमहत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है; क्योंकि हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा में उनके उपन्यास अत्यंत चर्चास्पद और विवादास्पद भी रहे हैं।

शेखर : एक जीवनी (दो भाग), नदी के द्वीप तथा अपने-अपने अजनबी अज्ञेय के ये तीन उपन्यास हैं।

डॉ. रामदरण मिश्र ने अज्ञेय के बारे में बहुत महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है। वे लिखते हैं कि अज्ञेय का व्यक्तित्व किसी भी पुराने या नये वाद या जीवन-सिद्धांत के आगे पूरा-पूरा समर्पित नहीं हो सका है। वह अनेक वादों के सत्यों को स्वीकार

कर उन्हें अपने व्यक्तित्व के माध्यम से एक नया रूप देना चाहते हैं। फ्रायड, एडलर, युंग, मार्क्स, सार्त्र, इलियट आदि अनेक चिंतकों का उन पर प्रभाव है। किंतु वे सब मिलाकर अज्ञेय हैं।[८]

(ख) कहानी :

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का प्रथम चरण अर्थात् भारतेंदु युग हिंदी गद्य के उन्मेष का काल माना जाता है। वह युग हिंदी की लगभग सभी गद्य विधाओं के उद्भव का युग भी है। उपन्यास, नाटक और निबंध तो उस युग में खूब लिखे गए - चाहे वे अनूदित हों या मौलिक। निबंध तो उस युग की प्रमुख विधा था। निबंधों के माध्यम से अपने विचार प्रकट करना युग की माँग थी।

उस युग में कहानी के नाम पर जो भी रचनाएँ प्रकाशित हुईं, वे कहानी कम, निबंध अधिक थीं। मुंशी नवलकिशोर द्वारा संपादित 'मनोहर कहानी' सन् १८८० में प्रकाशित हुई, जिसमें एक सौ कहानियाँ संकलित हैं। इसी तरह अंबिकादत्त व्यास कृत 'कथा कुसुम कलिका' (१८८८), राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद कृत 'वामा मनोरंजन' (१८८६) और चंडिकाप्रसाद कृत 'हास्यरतन' (१८८६) जैसी रचनाएँ कहानी के रूप में उपलब्ध होती हैं। इन कहानियों का आरंभ कथात्मक होता है; किंतु आगे चलकर, अवसर मिलते ही, लेखक तत्कालीन समाज की विकृतियों का वर्णन करने लगते हैं और वह कथा निबंध का रूप ले लेती है। इस दृष्टि से भारतेंदु और बालकृष्ण भट्ट की 'स्वप्न कथाएँ' कहानी और निबंध के बीच की रचनाएँ हैं।[८]

इसलिए 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ ही हिंदी कहानी का उद्भव सामान्यतः स्वीकृत हो चुका है। इस समय तक मौलिक हिंदी कहानी-लेखन के लिए वातावरण तैयार हो चुका था।

१.४. हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी :

पूर्ण सहमति या पूर्ण असहमति के बिना, जैसे 'परीक्षागुरु' हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है, वैसी स्थिति हिंदी की 'प्रथम मौलिक कहानी' के बारे में नहीं है। हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी के रूप में छ-सात कहानियों के नाम लिए जाते हैं। अलग-अलग विद्वान् भिन्न-भिन्न आधारों पर इन कहानियों को हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं। आ. रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक ढंग की कहानियों का आरंभ 'सरस्वती' के प्रकाशन काल से माना है। उन्होंने आरंभिक कहानियों का विवरण इस प्रकार दिया है :

१. इंदुमती (किशोरीलाल गोस्वामी) - सन् १९००

२. गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी) - सन् १९०२

३. प्लेग की चुड़ैल (मास्टर भगवानदास) - सन् १९०२

४. ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल) - सन् १९०३

५. पंडित और पंडितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी) - सन् १९०३

६. दुलाईवाली (बंगमहिला) -सन् १९०७

प्रारंभिक हिंदी कहानियों के बारे में डॉ. रामचंद्र तिवारी लिखते हैं कि 'सरस्वती' के प्रकाशन के प्रारंभिक दो वर्षों में हिंदी कहानी की स्वरूप-रचना हो रही थी। इस रचना में कई प्रकार के प्रयोग किए जा रहे थे। इन प्रयोगों में शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर वर्णनात्मक शैली में लिखी गईं कहानियाँ, स्वप्न-कल्पनाओं के रूप में रचित कहानियाँ, सुदूर देश के काल्पनिक चरित्रों को लेकर लिखी गईं संवेदनात्मक कहानियाँ, आत्मकथा रूप में प्रस्तुत कहानियाँ, संस्कृत नाटकों की आख्यायिकाएँ,

घटना-प्रधान संवेदनात्मक कहानियाँ प्रमुख हैं।[९]

हिंदी कहानी की विकास-यात्रा का विहंगावलोकन करने के लिए, उसके उद्‌भव और विकास के सौ वर्ष से भी अधिक समय को मुख्य दो विभागों में विभाजित किया जाता है : (क) स्वतंत्रतापूर्व की हिंदी कहानी, (ख) स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी। इस आधार पर हिंदी कहानी को विभाजित करने का मूल कारण यह है कि स्वतंत्रतापूर्व देश और समाज की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। उस काल की सारी रचनाशीलता आजादी की लड़ाई की ओर अभिमुख थी; परंतु आजादी के बाद चिंतन का आयाम बदल गया; परिस्थितियाँ बदल गईं - इस कारण रचनाशीलता का स्वरूप बदल गया।

१.५. स्वतंत्रतापूर्व की हिंदी कहानी :

स्वतंत्रतापूर्व की हिंदी कहानी के वस्तुपक्ष और शिल्पपक्ष के विकास की प्रक्रिया को ध्यान में रखकर, उसे तीन चरणों में बाँटा गया है : १. प्रेमचंदपूर्व युग (१९००-१९१४), २. प्रेमचंद युग (१९१४-१९३६), ३. प्रेमचंदोत्तर युग (१९३६ से १९४७)।

उपन्यास लेखन की तरह कहानी लेखन भी प्रेमचंद ने उर्दू में शुरू किया। उर्दू में उनका कहानी लेखन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही आरंभ हो गया था; परंतु हिंदी में लिखना उन्होंने १९१४-१५ के आसपास आरंभ किया। इसी लिए १९१४-१५ के पहले के समय को प्रेमचंदपूर्व युग नाम दिया गया है।

प्रेमचंदपूर्व युग की अधिकांश कहानियों में एक विचित्र प्रकार की भावुकता, रहस्यात्मकता, कौतूहल तथा उपदेशात्मकता के दर्शन होते हैं। अधिकांश कहानियाँ बँगला और अंग्रेजी की छाया लिए हुए हैं। साहित्य में अपना पथ निश्चित करने को लेकर लेखकों में एक दुविधा भी दिखाई पड़ती है; शैली-शिल्प को लेकर भी परिमार्जन नहीं आ सका है। फिर भी इस कालखंड का महत्त्व इस बात को लेकर है कि अब

कितने ही लेखक कहानी के क्षेत्र में तत्परता से अभ्यास करने लगे थे।[१०]

स्वतंत्रतापूर्व की हिंदी कहानी के दूसरे चरण यानी प्रेमचंद युग के आरंभ को लेकर विद्वानों में तीन-चार वर्षों का अंतर दिखाई पड़ता है। प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'पंच परमेश्वर' सन् १९१६ में 'सरस्वती' के जून अंक में प्रकाशित हुई। इस आधार पर कुछ विद्वान् १९१६ से १९३६ तक की कालावधि को प्रेमचंद युग कहना समीचीन मानते हैं।

१.६. स्वतंत्रतापूर्व प्रमुख हिंदी कहानीकार :

१.जयशंकर प्रसाद :

काल-क्रम की दृष्टि से प्रसाद प्रेमचंद से पहले के कहानीकार ठहरते हैं। उनकी प्रथम कहानी 'ग्राम' सन् १९११ में प्रकाशित हुई थी; जबकि प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'पंचपरमेश्वर' सन् १९१६ में प्रकाशित हुई। प्रसाद की मूल चेतना कवि की है। परंतु, उन्होंने लगभग सभी विधाओं में अपनी सर्जन-क्षमता का परिचय दिया है। उन्होंने अपनी कहानियों में मानव मनोविज्ञान का बहुत सुंदर चित्रण किया है। इसके साथ ही उन्होंने अपनी कहानियों में ऐतिहासिक वातावरण का भी निर्माण किया है।

प्रसाद की कहानियाँ अपने उद्‌भव, विकास और उत्कर्ष की दृष्टि से अत्यंत स्पष्ट रेखाओं में विभाजित हैं। उन्होंने कुल ६९ कहानियाँ लिखी हैं, जो विकास क्रम की दृष्टि से 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी' और 'इंद्रजाल' में संग्रहीत हैं। 'छाया' और 'प्रतध्विनि' में संकलित २६ कहानियाँ प्रसाद की प्रारंभिक कहानियों की कोटि में आती हैं। इन कहानियों में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से उनके छायावादी कवि का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

प्रसाद की कहानियों का विशेष महत्त्व उनके चरित्रांकन को लेकर है। पात्र-निरूपण में उनकी वैयक्तिक प्रवृत्तियों - जैसे भावुकता, संवेदनशीलता, सौंदर्य-प्रियता आदि - का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इन विशेषताओं के कारण उनके चरित्र अधिक भाव-प्रधान और काल्पनिक बन गए हैं। साथ ही, चरित्रों के मनोभावों के सूक्ष्म अंकन में भी प्रसाद कुशल दिखाई पड़ते हैं। डॉ. देवेश ठाकुर का निष्कर्ष है कि प्रसाद की कहानियों में नारी पुरुष से अधिक प्रभावशाली, गतिमान और प्रेरक तत्त्व से आपूर्ण बनकर प्रतिष्ठित हुई है। 'चित्तौर उद्धार', 'अशोक' तथा 'जहाँआरा' के नारी पात्र अपने तेजस्वी व्यक्तित्व से पुरुष पात्रों को गौण बनाते चलते हैं।[११]

२. प्रेमचंद :

हिंदी में कहानी-लेखन के कालक्रम की दृष्टि से प्रेमचंद प्रसाद के बाद आते हैं। हालाँकि, प्रेमचंद हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार की हैसियत रखते हैं। प्रेमचंद की कहानियाँ सामाजिक विषमता को अभिव्यक्ति देते हुए सुधारवादी और आदर्शवादी भूमिका का निर्वाह करती हैं। प्रेमचंद ने अपने लेखन के लिए, अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से सीधे-सीधे प्रेरणा ली और एक अत्यंत जागरूक, प्रतिबद्ध तथा मानवतावादी लेखक के रूप में समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करने और साथ ही उसको सही दिशा देने का दायित्व भी निभाया।

प्रेमचंद का आधार वस्तुतः उनके समय की सामाजिक परिस्थितियाँ ही हैं। अपने लेखन के माध्यम से उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में आरंभ हुए समाज-सुधार के कार्यों को ही आगे बढ़ाया और उसके प्रचार-प्रसार में अपना अप्रतिम योगदान दिया। उनकी कहानियों की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वे अपने आसपास की जिंदगी से जुड़ी हुई हैं। प्रेमचंद ग्रामीण जीवन से अधिक संबद्ध थे। इसलिए उनकी कहानियों

का विषय गाँव की जिंदगी से उद्भूत है। इसके बावजूद, उनकी बहुत-सी कहानियाँ कस्बाई जिंदगी, सत्याग्रह आंदोलन, स्कूल और कॉलेज के वातावरण तथा जमींदारों, साहूकारों, क्लर्कों तथा उच्च पदाधिकारियों की समस्याओं को भी अभिव्यक्त करती हैं।

भारतीय ग्राम्य जीवन का अंकन प्रेमचंद के लिए महज आंदोलन या नारा नहीं था। प्रेमचंद इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि अपनी सारी सादगी, सहजता और स्वेच्छा के बावजूद ध्वंसप्राय सामंती व्यवस्था और नवागत पूँजीवाद के दोहरे बदलाव के फलस्वरूप भारतीय किसान की नियति को बदल पाने के लिए एक महत् और निर्णायक संघर्ष अपेक्षित है। तीसरे दशक का अंत होते-होते देश की राजनीति और अपनी समाज-रचना की पहचान का वे एक बेहतर और वयस्क परिचय देने लगते हैं। 'गृहदाह' और 'अलग्योझा' जैसी कहानियों में संयुक्त परिवार प्रथा के प्रति उनका मोह, अभी भी, दिखाई पड़ता है।[१२]

३. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' :

गुलेरीजी हिंदी के एक ऐसे कहानीकार हैं, जिन्होंने सिर्फ तीन - और उनमें भी सिर्फ एक कहानी (उसने कहा था) - के बल पर हिंदी के प्रथम पंक्ति के कहानीकारों में अपना नाम दर्ज किया है। उनकी दूसरी दो कहानियाँ हैं 'बुद्धू का काँटा' और 'सुखमय जीवन'। गुलेरीजी की कहानी 'उसने कहा था' पर मुग्ध होकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है : 'संस्कृत के प्रकांड प्रतिभाशाली विद्वान् हिंदी के अनन्य उपासक श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी की अद्वितीय कहानी 'उसने कहा था' सं. १९७२ अर्थात् सन् १९१५ की 'सरस्वती' में छपी थी। इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ संपुटित है। घटना

इसकी ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है; पर इसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है - केवल झाँक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की बीभत्स विवृति नहीं है।'[१३]

४. जैनेंद्र :

प्रेमचंद युग के अंतिम चरण के सर्वाधिक समर्थ रचनाकार के रूप में जैनेंद्र का नाम लिया जाता है। जैनेंद्र की कहानियों के माध्यम से पहली बार हिंदी साहित्य में व्यक्ति को महत्त्व मिला। जैनेंद्र बाह्य जीवन यथार्थ को महत्त्व नहीं देते; बल्कि मनःस्थितियों में परिस्थिति को संश्लिष्ट मानते हैं। कहते हैं कि प्रेमचंद ने अपने अंतिम दिनों में कहानी की व्याख्या करते हुए 'मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार को' महत्त्व दिया था। जैनेंद्र ने इसी बिंदु से अपनी कथा-यात्रा आरभ की। इसी लिए जहाँ प्रेमचंद की दृष्टि समाजपरक है, वहाँ जैनेंद्र का लेखन व्यक्तिपरक है। डॉ. देवेश ठाकुर लिखते हैं कि जैनेंद्र के अधिकांश पात्र अपने अंतर्द्वंद्व में पीड़ित, ऐकांतिक, दिखावे में साहसी, शक्तिशाली और क्रांतिकारी - किंतु वास्तव में कुंठित, निष्क्रिय और अधोगामी हैं। जैनेंद्र में चरित्र के विकास को लक्ष्य तक खींच ले जाने की क्षमता का अभाव है। इसी कारण उनके चरित्र किसी भी प्रकार की स्वस्थ प्रेरणा दे सकने में असमर्थ लगते हैं।[१४]

जैनेंद्र की पहली कहानी 'खेल' सन् १९२८ में 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई थी। 'फाँसी' (१९२९), वातायन (१९३०), नीलमदेश की राजकन्या (१९३३), एक रात (१९३४), दो चिड़ियाँ (१९३५), पाजेब (१९४२), जयसंधि (१९४९) उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। जैनेंद्र की समस्त कहानियों का संग्रह भी 'जैनेंद्र की कहानियाँ' शीर्षक से दस भागों में प्रकाशित हो चुका है।

५. यशपाल :

यशपाल मुख्यतः सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने वाले कलाकार माने जाते हैं।

पिंजरे की उड़ान (१९३९), ज्ञानदान (१९४३), अभिशप्त (१९४३), तर्क का तूफान (१९४४), भस्मावृत चिनगारी (१९४६), वो दुनिया (१९४८), फूलो का कुर्ता (१९४९), धर्मयुद्ध (१९५०), उत्तराधिकारी (१९५१), चित्र का शीर्षक (१९५१), तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूँ (१९५४), उत्तमी की माँ (१९५५), सच बोलने की भूल (१९६२), खच्चर और आदमी (१९६५), भूख के तीन दिन (१९६८) - यशपाल के प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं।

यशपाल के कहानी-लेखन के मर्म को मधुरेश जी इन शब्दों में समझाते हैं : यशपाल का मानना है कि सौंदर्य-रचना का एकमात्र उद्देश्य असुंदर का परिष्कार या बहिष्कार ही हो सकता है। सुंदर और असुंदर का भेद या असुंदर को सुंदर बना सकने का प्रयत्न विवेक और तर्क के बिना असंभव है। इसी लिए वे तर्क और विवेक को ही सौंदर्य के मूल उत्स के रूप में स्वीकार करते हैं। यशपाल कला के शुद्धतावादी सिद्धांत का खंडन करते हैं और कला की सामाजिकता का पक्ष लेते हैं। इसी कारण अनेक लोगों को वे लेखक से अधिक प्रचारक लगते हैं; जबकि यशपाल शाश्वत समझे जाने वाले परंपरागत मूल्यों को जीवन के निकष पर कसकर उनकी प्रसंगानुकूलता पर विचार करना चाहते हैं।[१५]

६. अज्ञेय :

अज्ञेय की कहानियाँ जैनेंद्र की परंपरा को विकसित करने वाली मानी गई हैं; क्योंकि अज्ञेय की दृष्टि भी व्यक्ति को ही महत्त्व देती है। परंतु दोनों के बीच अंतर

स्पष्ट करते हुए डॉ. रामचंद्र तिवारी लिखते हैं कि जैनेंद्र जहाँ गांधी-दर्शन के आध्यात्मिक पक्ष को अधिक महत्त्व देने के कारण व्यक्ति के वैशिष्टच्य को परखने में एक सीमा बाँध लेते हैं, वहाँ अज्ञेय वैज्ञानिक यथार्थ में विश्वास करने के कारण विविध स्तरों पर व्यक्ति को देखते-परखते हैं।[१६]

विपथगा (१९३७), परंपरा (१९४०), कोठरी की बात (१९४५), शरणार्थी (१९४८), जयदोल (१९५१), अमरवल्लरी (१९५४), ये तेरे प्रतिरूप (१९६१) अज्ञेय के प्रमुख कहानी-संग्रह हैं।

मनोविश्लेषण की प्रधानता के कारण अज्ञेय की ख्याति व्यक्तिवादी लेखक के रूप में है। व्यक्ति का चरित्र-निरूपण और उसका विश्लेषण इनकी कहानियों का प्रधान उद्देश्य है। अभिव्यक्ति की इसी सीमा के कारण अज्ञेय की अनुभूति का क्षेत्र भी संकुचित हो गया है। वैसे प्रत्येक मनोविश्लेषणवादी लेखक की यही नियति होती है। वह एक ही बिंदु के आसपास कई कोणों से घूमता रहता है। परिणामस्वरूप विविधता और विस्तार का अभाव उसकी रचना के अनिवार्य अंग बन जाते हैं। साथ ही, इससे रचना में एकरसता का दोष भी आ जाता है। परंतु एकरसता को अज्ञेय ने अपने शिल्प-चमत्कार से बचा लिया है।

७. इलाचंद्र जोशी :

इलाचंद्र जोशी की शैली विश्लेषणात्मक होने के कारण अधिक सूक्ष्म, गंभीर और कहीं-कहीं अस्पष्ट भी है। उन्होंने अपनी कहानियों में मनोविश्लेषण के आधार पर सूक्ष्म मानसिक तथ्यों का उद्घाटन मर्मस्पर्शी रूप में किया है।

जोशीजी की कहानियाँ मुख्यतः मध्यवर्गीय शिक्षित पात्रों के सामाजिक एवं वैयक्तिक परिवेश को लेकर लिखी गई हैं। राजेंद्र यादव के शब्दों में कहें, तो 'वह

भीतर से भीतर की ओर उतरते हैं; चेतन, अवचेतन, उपचेतन के अनेक अप्रीतकर स्तरों का उद्‌घाटन उन्होंने किया है। और इस प्रक्रिया में उनके पात्र साधारण-सामान्य के बजाय विलक्षण, विकलांग और हीन होते हुए दीखने लगे हैं।'[१७]

धूपरेखा (१९३८), दीवाली और होली (१९४२), रोमांटिक छाया (१९४३), आहुति (१९४५), खंडहर की आत्माएँ (१९४८), डायरी के नीरस पृष्ठ (१९५१), कटीले फूल लजीले काँटे (१९५७) - उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं।

८. उपेंद्रनाथ 'अश्क' :

उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने प्रारंभ में उर्दू में कहानियाँ लिखी थीं। बाद में हिंदी में लिखना आरंभ किया। प्रारंभ से ही 'अश्क' यथार्थवादी कथाकार रहे हैं। उन्होंने निम्नमध्य वर्ग के जीवन को अपनी कथा का विषय बनाया है। उसके हर पहलू को पूरी सहानुभूति के साथ देखा है। वे पंजाबी और उर्दू की पृष्ठभूमि के साथ हिंदी में आए। अपने प्रारंभिक काल में ही उन्होंने 'कांकड़ा का तेली' जैसी यथार्थवादी कहानी लिखकर अपनी पहचान बनाई। 'अंकुर', 'नासूर', 'डाची', 'पिंजरा', 'गोखरू' आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं, जो सन् १९३३ और ३६ के बीच लिखी गई थीं। छींटे (१९४९), सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ (१९५८), पलंग (१९६१), आकाशचारी (१९६६) - उनके कहानी-संग्रह हैं।

१.७. अन्य कहानीकार :

उपर्युक्त प्रमुख कहानिकारों के अलावा एक लंबी परंपरा ऐसे कहानीकारों की है, जो किसी न किसी कारण से अधिक प्रसिद्ध न हो सके। संदर्भवश उनका भी थोड़ा परिचय प्राप्त कर लेना अनुचित न होगा।

१. विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' :

कौशिक जी प्रेमचंदपूर्व कहानीकारों में आते हैं। उनकी पहली कहानी 'रक्षाबंधन'

सन् १९१३ में प्रकाशित हुई थी। विचारधारा की दृष्टि से वे प्रेमचंद की परंपरा में आते हैं। उन्होंने भी समाज-सुधार को अपनी कहानी-कला को लक्ष्य बनाया। उनकी कहानियों की संख्या तो बहुत अधिक है; परंतु कुछ ही कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। 'कल्पमाला' और 'चित्रशाला' उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं।

२. सुदर्शन :

उनका पूरा नाम पं. बद्रीनाथ भट्ट था। उनकी प्रथम कहानी 'हार की जीत' सन् १९२० में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। आज भी उनकी यह कहानी उतनी ही प्रसिद्ध है। सुदर्शन-सुधा, सुदर्शन-सुमन, तीर्थयात्रा, पुष्पलता, गल्प-मंजरी, सुप्रभात, नगीना, पनघट आदि उनके कहानी-संग्रहों के नाम हैं।

३. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' :

उग्रजी की उग्रता उनकी कहानियों में बहुत साफ परिलक्षित होती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में राजनीतिक परिस्थितियों, सामाजिक रूढ़ियों और राष्ट्र को हानि पहुँचाने वाली प्रवृत्तियों के विरुद्ध गहरा विद्रोह व्यक्त किया है।

उग्रजी जिस तेजी और क्रांतिकारिता को लेकर कहानी लेखन के क्षेत्र में आए, उसके लिए तत्कालीन सुधारवादी युग में कोई अवकास न था। सामाजिक व्यभिचार की पोल उन्होंने जिस शैली में खोली और जीवन के यथार्थ को जिस ढंग से अभिव्यक्ति दी - आदर्शवादी और नैतिक समाज उसके लिए भी तैयार न था।

४. आचार्य चतुरसेन शास्त्री :

आचार्य चतुरसेन शास्त्री भी प्रेमचंद युग के कहानीकार हैं। उन्होंने भी सामाजिक चित्रण को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी',

'दे खुदा की राह पर', 'भिक्षुराज' और 'ककड़ी की कीमत' उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

ऐसे ही ज्वालादत्त शर्मा ने बहुत थोड़ी संख्या में कहानियाँ लिखी हैं; परंतु हिंदी जगत में उनका अच्छा नाम है। 'भाग्यचक्र', 'अनाथ बालिका' उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

विनोदशंकर व्यास के भी अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने भी सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक विषयों को लेकर सुंदर और कलात्मक कहानियाँ लिखी हैं।

राधिकारमण सिंह ने विभिन्न सामाजिक समस्याओं एवं राजनीतिक आंदोलनों का चित्रण अपनी कहानियों में किया है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने जैनेंद्र की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए अनेक कहानियाँ लिखीं, जो 'हिलोर', 'पुष्करिणी', 'खाली बोतल' आदि संग्रहों में प्रकाशित हैं।

भगवतीचरण वर्मा ने भी कम कहानियाँ लिखकर अच्छी सफलता प्राप्त की है। 'खिलते फूल', 'इन्स्टालमेंट' 'दो बाँके' उनके कहानी-संग्रहों के नाम हैं।

१.८. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी :

१५ अगस्त, १९४७ को देश आजाद हुआ। उसके पहले वह एक परतंत्र देश था। इसी लिए उसकी मानसिकता भी परतंत्र मानसिकता थी। आजादी के बाद उसकी मानसिकता में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। 'नयी कहानी की भूमिका' में कमलेश्वर लिखते हैं : 'देश का वैचारिक पुनर्जन्म हुआ। आजादी केवल राजनीतिक मूल्य के रूप में स्वीकृत नहीं हुई थी; बल्कि विचारों की एक नव-क्रांति का सपना भी उससे जुड़ा हुआ था।'[१८]

स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे समाज में सभी क्षेत्रों के समान चिंतन के क्षेत्र में भी बदलाव आया। साहित्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ हिंदी कहानी ने भी अपनी राह बदली। स्वतंत्रता के बाद, विभिन्न कहानी आंदोलनों के कहानी-लेखन होने लगा। इस तरह कहानी के विषय बदल गए - कहानी का स्वरूप बदल गया।

१.९. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के विविध आंदोलन :

१. नयी कहानी :

सन् १९५० के उपरांत हिंदी कहानी के क्षेत्र में एक नये आंदोलन का प्रवर्तन हुआ, जिसे 'नयी कहानी' आंदोलन की संज्ञा दी गई। इस आंदोलन के प्रमुख रचनाकारों में राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, मोहन राकेश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नयी कहानी के प्रवर्तकों ने यह घोषित किया कि नयी कहानी का लक्ष्य नये भावबोध या आधुनिकता-बोध पर आधारित जीवन के यथार्थ अनुभव का चित्रण करना है। उन्होंने कहानी पर किसी भी प्रकार के बाह्य तत्त्व, विचार, सिद्धांत या उपदेश के आरोपण को अस्वीकार किया; क्योंकि उनके विचार से, कलाकार या कहानीकार जीवन या समाज के किसी भी आदर्श या परंपरागत व्यवस्था से बँधा हुआ नहीं है। वह केवल अपने आपके प्रति आबद्ध या प्रतिबद्ध है। राजेंद्र यादव के शब्दों में 'मानवता, राष्ट्रीयता, सत्य, धर्म, नैतिकता, प्राचीन गौरव आदि सब छलावे हैं, जिनके प्रति कलाकार का आस्थावान होना अनुचित है।'

नये भावबोध की स्थापना के लिए नये कहानीकारों को अनेक पुरानी मान्यताओं से संघर्ष करना पड़ा। जो बात सन् १९५० से चली आ रही थी, उसे १९५६ की 'कहानी' पत्रिका के नववर्षांक में सैद्धांतिक रूप दिया गया। यह रूप नयी कहानी की घोषणा था। यह साहित्यिक संयोग ही माना जा सकता है कि जब 'निकष', 'संकेत' और

‘हंस’ के विशेष संस्करणों में मोहन राकेश, मार्कंडेय, हरिशंकर परसाई आदि की नयी कहानियाँ छपीं और मुक्तिबोध, केदारनाथ और श्रीकांत वर्मा की नयी कविताएँ।

स्वतंत्रता के बाद नवयुवक वर्ग की मानसिकता में भी एक व्यापक परिवर्तन दिखाई देता है। आजादी के बाद नवयुवक स्वतंत्रता पूर्व के युवक की भाँति अमहत्त्वाकांक्षी अथवा सामाजिक स्थितियों के प्रति तटस्थ नहीं रहा। उसमें स्वतंत्र देश के एक नागरिक की संपूर्ण महत्त्वाकांक्षाएँ तथा हर नयी स्थिति से जुड़ने की आकांक्षा विद्यमान थी। नयी कहानी में स्वातंत्र्योत्तर भारत के इस नये स्वरूप पर भी अनेक कहानियाँ लिखी गईं : राजेंद्र यादव की ‘तलवार पंचहजारी’, ‘नये नये आने वाले भविष्यवक्ता’; अमरकांत की ‘छिपकली’, ‘डिप्टी कलक्टरी’, ‘खलनायक’, ‘हत्यारे’; शेखर जोशी की ‘बदबू’; निर्मल वर्मा की ‘सितंबर की एक शाम’, ‘कुत्ते की मौत’ इत्यादि कहानियाँ स्वातंत्र्योत्तर नवयुवक की अवस्था और अकेलेपन को बड़ी सहजता से रेखांकित करती हैं।

‘नयी कहानी’ हिंदी कहानी का पहला रचनात्मक आंदोलन था। ‘नयी कहानी’ के कहानीकारों में एक ओर निकट अतीत में भोगी गई परतंत्रता की पीड़ा थी, तो दूसरी ओर आजादी के मिलते ही सांप्रदायिक दंगों की पीड़ा। अतः कहानीकारों ने यथार्थ को वैयक्तिक स्तर पर अनुभव किया। इस कारण कहानी का यथार्थ विस्तृत होने पर भी उसका चित्रण व्यक्तिगत तथा पारिवारिक संबंधों के धरातल पर ही अधिक किया गया।

‘नयी कहानी’ की कहानियाँ अधिकांशतः मध्यवर्ग पर केंद्रित हैं। आंदोलन के आरंभ में ग्रामांचल की कहानियाँ अधिक लिखी गईं, जिनमें शिवप्रसाद सिंह, रेणु, मार्कंडेय प्रमुख रचनाकार थे। उनकी तुलना में कमलेश्वर को ‘कस्बे का कहानीकार’ माना गया। बाद में नयी कहानी कस्बे और शहर पर केंद्रित हो गई। ग्रामांचल के

लेखकों ने भी, बाद में शहर में आकर, बाद में शहर को भी, रोमानी दृष्टि से व्यक्त किया। कुल मिलाकर 'नयी कहानी' मध्यवर्गीय यथार्थ पर केंद्रित कहानी है।

'नयी कहानी' ने जहाँ एक ओर कहानी के नये स्वरूप को प्राप्त किया तथा उसे विधागत मान्यताओं साथ चित्रित भी किया, वहीं नयी जीवन-दृष्टि की आड़ में कई लेखकों ने ऐसे प्रयोग भी प्रस्तुत किए, जो मात्र प्रयोग ही होकर रह गए। उनमें प्रत्यक्ष अनुभव का व्यापक विश्लेषण, जो कि एक कहानी के लिए आवश्यक है, नहीं दिखाई दिया। यही कारण है कि नये लेखकों के द्वारा प्रस्तुत 'सिद्धांत' एक ओर उनकी उपलब्धियों की सूचना देने लगे, तो दूसरी ओर वे ही उनकी सीमा के रूप में भी प्रस्तुत हुए। प्रत्यक्ष ही वे 'सिद्धांत' प्रत्यक्ष अनुभव के विपरीत पड़ते थे। इसी लिए विचारधारा मात्र के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और प्रत्यक्ष अनुभव पर अतिरिक्त बल दिया गया। नये लेखकों द्वारा बार-बार दुहराए जाने वाले 'अनुभूति', 'ईमानदारी', 'सचाई' आदि शब्द इसी संदर्भ में कुछ अर्थ रखते हैं और इसी पृष्ठभूमि में नवलेखन की विशिष्टता का उद्घाटन होता है।[१९]

२. सचेतन कहानी :

'नयी कहानी' आंदोलन की ही प्रतिक्रिया एवं प्रतिद्वंद्विता में 'सचेतन कहानी' आंदोलन का प्रवर्तन हुआ। इसके प्रवर्तक डॉ. महीपसिंह हैं। उन्होंने अपनी पत्रिका 'संचेतना' के माध्यम से इस आंदोलन को आगे बढ़ाया। 'सचेतन कहानी' में सचेतना या विचारों की जागरूकता को विशेष महत्त्व दिया गया। 'नयी कहानी' में वैचारिकता को आदर्शवाद, तत्त्ववाद एवं नीतिवाद से संबद्ध मानते हुए ठुकराया गया था, जिसके फलस्वरूप 'नयी कहानी' कामुकता, भावुकता और संवेदनाओं का पुंज बनकर रह गई।[२०]

महीप सिंह 'सचेतन' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं : 'सचेतन दृष्टि आधुनिकता की दृष्टि है। आधुनिकता एक गतिशील स्थिति है और हमारे सक्रिय जीवन बोध पर निर्भर है। जीवन को जड़ और निरर्थक अथवा गतिहीन मान बैठने वाला व्यक्ति अधिक से अधिक वर्तमान के कुछ क्षणों में ही जी सकता है। उसके पास भविष्य की दृष्टि नहीं निखर सकती। जो लोग जीवन को एक प्रदत्त वस्तु के स्तर पर ही ग्रहण करते हैं, जिसमें सक्रिय रूप से जीने की अपेक्षा कुछ घटित होने का बोध ही अधिक रहता है, वे मानो जीवन को केवल अनुभूति के स्तर पर ही जीते हैं। परंतु जो जीवन को समग्र रूप में जीना चाहता है, वह उसे जानना भी चाहता है। ज्ञान निष्क्रिय नहीं सष्क्रिय व्यापार होता है और ज्ञेय को संस्कारित करता है। जानने का यह सक्रिय भावबोध आधुनिकता का भावबोध है। आधुनिकता गतिशीलता में होती है; यह उसकी अनिवार्य शर्त है; और विकासशील और जुड़ा व्यक्ति ही आधुनिकता को ग्रहण कर सकता है।'[२१]

सचेतन कहानीकारों की मान्यता है कि सचेतन कहानी कोई शिल्पगत आंदोलन नहीं है - बल्कि वैचारिक आंदोलन है। सिर्फ वैचारिक आंदोलन होने के ही कारण इसे नयी कहानियों या कि आज की कहानियों से अलग करके देखना - पहचानना बड़ा ही मुश्किल काम है। इसका कारण स्पष्ट है। बहुत सारी नयी कहानियों और साठोत्तरी कहानियों में सचेतन दृष्टि है - भले ही उनके सर्जकों द्वारा सचेतन कहानी का कोई दावा प्रस्तुत नहीं किया गया। जाहिर है कि नयी कहानी की प्रवृत्ति विशेष को छोड़कर सचेतन कहानी वैचारिक स्तर पर अलगाव या पहचान बनाने में असमर्थ रही है। शिल्प के प्रति कोई विशेष आग्रह न होने के कारण सचेतन कहानियाँ जीवन की सचाइयों को सहज ढंग के साथ अभिव्यक्त करने में सफल जरूर रही हैं।[२२]

सचेतन कहानीकारों ने जीवन की व्यर्थता-बोध का निराकरण किया है। जीवन की नयी भाव-भूमियों और जीवंत मानव लोक की रचना की है। व्यक्तिवादी आत्म-दर्शन को विशद आयाम दिया है। विघटन, विसंगति, संत्रास को जो एक नयी अर्थवत्ता दी है, वह सराहनीय है। उनकी कहानियों में व्यक्त आधुनिकता आयातित नहीं है। उन्होंने अकेलेपन, आत्मनिर्वासन, अजनबीपन आदि को 'मूल्य' के रूप में नहीं प्रस्तुत किया है। 'मूल्य' की अभिव्यक्ति की दृष्टि से बहुत 'बोल्ड' न होते हुए भी उनका महत्त्व इसलिए माना जाएगा कि वे समाजनिरपेक्ष मूल्यों को प्रोत्साहन देने वाली कहानियों के विरोध में लिखी गाईं।[२३]

३. अ-कहानी :

नयी कहानी के आधार, जब नूतन परिवेश में लेखकों को अपर्याप्त प्रतीत होने लगे, तब उनमें से कुछ लेखकों ने, 'अनुभव की प्रामाणिकता' के सूत्र को 'अनुभव की निजता' के अर्थ में बदल दिया। अ-कहानी आंदोलन वस्तुतः तत्कालीन मूल्यों तथा कथा-शिल्प दोनों के अस्वीकार का आंदोलन है। सन् १९६२ में चीनी आक्रमण के परिणामस्वरूप हुए मोह-भंग का विशेष प्रभाव इनके अस्वीकार-बोध पर पड़ा है।

अ-कहानी के बारे में अपना मत प्रकट करते हुए मधुरेश जी लिखते हैं : 'सचेतन कहानी यदि नयी कहानी की उपेक्षा की प्रतिक्रिया थी, अ-कहानी नयी में वैचारिकता के क्षरण और राजनीति के निषेध वाली दृष्टि का ही विकास थी - एकांगी, अतिरेकी और अंतिरंजनापूर्ण विकास। हिंदी की साठोत्तरी कविता की तरह, जिसे अ-कविता आंदोलन के रूप में जाना जाता रहा है, अ-कहानी का भी मूल स्वर विरोध और निषेध का है।'[२४]

अकहानी आंदोलन परंपरित शिल्प का विरोध तो करता ही है, साथ ही नये शिल्प के प्रति भी उदासीन है। यह एक शिल्पहीन आंदोलन है। अनुभूत सत्य को यथातथ्य रूप में अभिव्यक्त करने के लिए ही अपनी प्रतिबद्धता जाहिर करता है। अकहानी के पात्र प्रतीक रूप में स्थिति का संकेत देते हैं। कई जगह पात्रों के नाम भी नहीं होते। स्थिति का अमूर्त प्रभाव पैदा करने के लिए क, ख, ग को संकेत रूप में पात्र मान लेते हैं। अकहानी में शिल्प-विघटन का जहाँ सुंदर रूप दिखाई देता है, वहीं अकहानी फैंटेसी, डायरी, मोनोलॉग, संस्मरण, आत्म-प्रलाप आदि विधाओं की विशेषताएँ भी लिए हुए है।

अकहानी आंदोलन के दौरान रवींद्र कालिया की 'त्रास', 'अकहानी', 'नौ साल छोटी पत्नी', 'एक प्रामाणिक झूठ'; दूधनाथ सिंह की 'रीछ', 'आइस वर्ग', 'रक्तपात'; ज्ञानरंजन की 'पिता', 'संबंध'; गंगाप्रसाद विमल की 'विध्वंस', 'प्रश्नचिह्न', 'दूसरे दिनों का इंतजार'; विजयमोहन की 'कुछ महीने'; अवधनारायण सिंह की 'आकाश का दबाव' आदि कहानियाँ बहुत चर्चित रही हैं। किंतु वैचारिक भूमि के अभाव में, चर्चित होकर भी यह आंदोलन अपने पाँव नहीं जमा पाया और धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

अकहानी में पति और पत्नी के दाम्पत्य जीवन पुराने मूल्य सतीत्व/पातिव्रत आदि भी ध्वस्त होते हुए दिखाई पड़ते हैं। पति-पत्नी के बीच आत्मीयता और अंतरंगता की जगह ऊब, घुटन, तनाव और नफरत ने ले लिया है। इसके लिए, अकहानी के कहानीकारों ने, महानगर की यांत्रिकता और माहौल की एकरसता को जिम्मेदार ठहराया है। कृष्ण बलदेव वैद की 'त्रिकोण', दूधनाथ सिंह की 'रीछ', श्रीकांत वर्मा की 'साथ', 'ट्यूमर', मणिका मोहनी की 'एक ही बिस्तर' आदि कहानियों में पति-पत्नी के पुराने

मूल्य टूटे हैं और संभोगीय स्वतंत्रता की शुरुआत की गई है।

४. समकालीन कहानी :

डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने, सबसे पहले समकालीन कहानी की चर्चा शुरू की थी। जैसे महीपसिंह ने 'सचेतन कहानी' का एक आंदोलन खड़ा किया, वैसे ही डॉ. विमल ने 'समकालीन कहानी' का नारा दिया। कहते हैं कि कहानीकारों के मठाधीश बनने की प्रवृत्ति ने ही उन्हें इस नारे को उछालने की प्रेरणा दी। इस चर्चा को आगे बढ़ाने और उसे व्यापकता प्रदान करने के लिए उन्होंने नयी कहानी से इसे अलग करने का तर्क-जाल बुनना शुरू किया। 'समकालीन कहानी' की अपनी अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं : 'समकालीन कहानी रचना की कोई नयी विधा नहीं है। न ही नये लोगों का कोई रचनात्मक आंदोलन इसे कहा जाना चाहिए - अपितु वे सब रचनाकार जो कम से कम रोमांटिक भावबोध से तथा परंपरागत स्थिति से अलग हैं और कथा-रचना में अपने समग्र नयापन का आग्रह करते हैं - समकालीन रचना के रचनाकार हैं।'[२५]

समकालीन हिंदी कहानी में ऐसे लेखक बहुत बड़ी संख्या में हैं, जो कहानी की रचनात्मक सीमाओं को समझते हुए कहानी से वह काम लेना चाहते हैं, जो वह कर सकती है। समकालीन कहानी नयी कहानी की रूढ़िवादी स्थिति से भी नाराजगी प्रकट करती है। वह उसके शिल्पगत रूप को भी नापसंद करती है। सचेतन कहानीकारों और अ-कहानीकारों की ही तरह समकालीन कहानीकारों में भी वही चेहरे शामिल हैं, जिनकी चर्चा साठोत्तरी कहानीकारों में की जाती है।

५. समांतर कहानी :

'समांतर कहानी' आंदोलन के पुरस्कर्ता कमलेश्वर हैं। उन्होंने 'सारिका'

के अपने संपादन काल में, अर्थात् आठवें दशक के शुरू में, समांतर कहानी आंदोलन की शुरुआत की। आंदोलनों की गुटबंदी से लोग आजिज आ चुके थे; इसलिए कमलेश्वर ने वाद और पीढ़ी-मुक्त कहानी से अपनी बात शुरू की। चूँकि 'सारिका' एक बड़े पूँजीवादी संस्थान की पत्रिका थी; इसलिए लोगों को जोड़ने और इकट्ठा करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। दूर-दराज के इलाकों में 'समांतर कहानी' के शिविर आयोजित किए गए और गोष्ठियाँ हुईं। इन गोष्ठियों में वक्तव्यों और कहानियों के माध्यम से समांतर कहानी की अवधारणा विकसित हुई।

७. जनवादी कहानी :

'जनवादी कहानी' वामपंथी विचारधारा की कहानी है। इसे प्रगतिवादी का नया संस्करण माना जाता है। प्रगतिवादी साहित्य ने जो स्वस्थ परंपरा विकसित की थी, वह सन् १९४२ में कम्यूनिस्टों की ढुलमुल नीति के कारण अवरुद्ध हो गई थी। परंतु वही आगे चलकर लगभग आठवें दशक में फिर से उभरी।

अधिकतर जनवादी कहानियाँ राजनीतिक हैं। काम-संबंधों, दांपत्य-संबधों औप पारिवारिक विघटन की कहानियाँ अपेक्षाकृत कम लिखी गई हैं। इसी लिए जनवादी कहानी को यह श्रेय प्राप्त है कि उसने उपेक्षित, शोषित, पीड़ित, संघर्षरत 'आम आदमी' को अपनी कहानियों में प्रतिष्ठित किया। इस तरह हिंदी कहानी को एक विशाल जन-समूह से जोड़ा। भीष्म साहनी, अमरकांत, मार्कंडेय, शेखर जोषी, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, इसराइल, मधुकर सिंह, रमेश उपाध्याय, विजयकांत आदि जनवादी कहानी के प्रमुख कहानीकार हैं।

८. सक्रिय कहानी :

सक्रिय कथा-आंदोलन के प्रणेता राकेश वत्स हैं। डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

के अनुसार राकेश वत्स ने, सन् १९७९ में, ‘मंच’ के दो विशेषांकों में ‘सक्रिय कहानी’ की अवधारणा प्रस्तुत की। परंतु राकेश वत्स स्वयं इस आंदोलन की शुरुआत १९७५ से मानते हैं। राकेश वत्स के अनुसार ‘सक्रिय कहानी’ का सीधा और स्पष्ट मतलब है आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समय और अहसास की कहानी जो आदमी को बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर - पहले स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेती है।’[२६]

संदर्भ :

१. भारतेंदु : ब्रजरत्नदास, पृ. १९४।

२. हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा : डॉ. रामदरश मिश्र, पृ. २५-२६।

३. भूले-बिसरे चित्र : भगवतीचरण वर्मा, पृ. २१०।

४. हिंदी उपन्यास : शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. २७७।

५. दादा कामरेड (भूमिका) : यशपाल (हिंदी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ : डॉ. बालकृष्ण गुप्त, पृ. ८१ से उद्धृत)।

६. झूठा-सच की भूमिका (हिंदी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ : डॉ. बालकृष्ण गुप्त, पृ. ८२ से उद्धृत)।

७. बूँद और समुद्र (भूमिका) (हिंदी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ : डॉ. बालकृष्ण गुप्त, पृ. ८४ से उद्धृत)।

८. हिंदी साहित्य का इतिहास : संपा. डॉ. नगेंद्र, पृ. ४८५।

९. हिंदी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. २१४।

१०. हिंदी कहानी का विकास : मधुरेश, पृ. ३३।

११. हिंदी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ २१५।

१२. हिंदी साहित्य का इतिहास : संप. डॉ. नगेंद्र, पृ. ५८९-९०।

१३. हिंदी साहित्य का इतिहास : आ. रामचंद्र शुक्ल, पृ. ४८१।

१४. हिंदी कहानी का विकास : मधुरेश, पृ. १८।

१५. हिंदी कहानी का विकास : मधुरेश, पृ. ४८-४९।

१६. हिंदी गद्य का विकास : डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. २१८।

१७. हिंदी कहानियों की शिल्पविधि का विकास : डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. ४६।

१८. नयी कहानी की भूमिका : कमलेश्वर, पृ. ९।

१९. नयी कहानी : नये प्रश्न : डॉ. संतवख्श सिंह, पृ. १२६।

२०. हिंदी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश (खंड-३) : संप. गणपतिचंद्र गुप्त, पृ. ९१७।

२१. आधार, सचेतन कहानी विशेषांक, सन् '६४, संपादकीय, पृ. १५-१६ (हिंदी कहानी का विकास : मधुरेश, पृ ११५ से उद्धृत)।

२२. साठोत्तरी हिंदी कहानी और राजनीतिक चेतना : डॉ. जितेंद्र वत्स, पृ. ६५।

२३. हिंदी कहानी : एक अंतर्यात्रा : वेदप्रकाश अमिताभ, पृ. ६०।

२४. हिंदी कहानी का विकास : मधुरेश, पृ. १२३।

२५. समकालीन कहानी का रचना-विधान : गंगाप्रसाद विमल, पृ. १९।

२६. सक्रिय कहानी की भूमिका : राकेश वत्स, पृ. ११।

अध्याय-२

कथाकार चित्रा मुद्गल का जीवन-परिचय एवं साहित्य-परिचय

अध्याय-२

कथाकार चित्रा मुद्गल का जीवन-परिचय एवं साहित्य-परिचय

२.१. जीवन परिचय :

चित्रा मुद्गल का जन्म १० दिसंबर, १९४४, को मद्रास (वर्तमान चेन्नई) में हुआ। उनके दादा ठाकुर बजरंग सिंह जी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के निहाली खेड़ा नामक गाँव के जमींदार थे।

चित्रा जी के पिता का नाम ठाकुर प्रताप सिंह था। उनके दो और भाई भी थे : बड़े लालबहादुर सिंह और छोटे अंबिकाप्रसाद सिंह। उनकी चार बहनें भी थीं। चित्राजी के पिता भारतीय नौसेना में उच्चपदस्थ अधिकारी थे। उनका स्थानांतरण बंबई, चेन्नई, विशाखापट्टनम्, गोवा आदि स्थानों में हुआ करता था। वे परिवार के साथ रहते थे। इस कारण चित्राजी को देश के अलग-अलग हिस्सों के लोगों की जिंदगी का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने और उन्हें समझने का पर्याप्त अवसर मिला।

उनके पिता बड़े साहसी व्यक्ति थे। शिकार उनका शौक था। वे पूरी तरह सामंती संस्कार के व्यक्ति थे। इसी कारण किसी की इच्छाओं तथा भावनाओं को समझना उनकी प्रकृति में न था। वे घर में अपनी ही चलाते थे। चित्राजी की माता सीधी-सादी और घरेलू महिला थीं। दोनों का संबंध सौमनस्यपूर्ण न था। चित्राजी के अनुसार 'माँ के साथ पिताजी का व्यवहार असंतोषजनक था।[१]

चित्राजी के बचपन का एक हिस्सा उनके गाँव निहाली खेड़ा में बीता। छ

साल की अबोध अवस्था में भाई-बहनों के साथ उन्हें पितृगृह बंबई महानगर से उनके दादा जी के पास गाँव में भेज दिया गया। उनके गाँव के पास के भरतीपुर गाँव की कन्या पाठशाला में दूसरी कक्षा में उनका नाम लिखा दिया गया। पहली कक्षा की पढ़ाई वे बंबई में कर चुकी थीं। बंबई महानगरीय परिवेश से एकदम भिन्न गाँव की नैसर्गिक सुंदरता जहाँ उनके मन को आह्लादित करती थी, वहीं अपने जमींदार परिवार के अत्याचार और नृशंसता को देखकर उनका बाल मन दहशत से काँप उठता था। भीखू बारी को एक बोरी गेहूँ चुराने के अपराध में बड़े बप्पा का उसको कोड़े से पीटना, सुबह के कलेवा के अलावा दोपहर के भोजन की माँग करने पर जन पियारे का हंटर खाना - जैसी घटनाओं से क्षुब्ध उनकी बाल-चेतना में प्रतिक्रियास्वरूप विद्रोह पनपने लगा। घर-परिवार की अनेकानेक विसंगतियाँ उनके मन-मस्तिष्क में चुभती रहतीं। इन सब कारणों से उनका बालमन गाँव से उचट गया और उन्होंने अपने पिताजी को पत्र लिखकर अपने साथ ले जाने का आग्रह किया। उनकी चौथी तक की पढ़ाई गाँव में हुई। पाँचवीं से आगे की पढ़ाई पुनः बंबई में आरंभ हुई। घाटकोपर के हिंदी हाई स्कूल में उन दिनों वे पढ़ा करती थीं। उन्हीं दिनों वे पिता के विरोध के बावजूद अपनी रुचि के अनुसार नृत्य सीखती रहीं और गणेशोत्सव के अवसर पर रंगमंच पर कार्यक्रम भी करती रहीं। १९६६ में उन्होंने चित्रकला में डिप्लोमा किया। उनका चित्रकला और नृत्यकला सीखना उनके पिताजी को पसंद न था।

चित्राजी का विवाह हिंदी के कवि-कथाकार श्री अवधनारायण मुद्गल के साथ १७ फरवरी, १९६५, को हुआ। अवधनारायणजी और चित्राजी की मुलाकात एक आकस्मिक घटना थी। अवधनारायण जी उस समय 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की पत्रिका 'सारिका' के उपसंपादक थे। अंतःविश्वविद्यालय की कहानी प्रतियोगिता में

पुरस्कृत अपनी एक कहानी को छपवाने के लिए चित्राजी 'सारिका' कार्यालय में गई थीं। वहाँ से उन्हें अवधनारायण जी के पास भेजा गया। अवधनारायण जी उस समय 'सागर विहार' नामक गेस्ट हाउस में रहते थे। वहीं उनसे चित्राजी की पहली मुलाकात हुई। इस पहली ही मुलाकात ने उन दोनों को प्रणय-सूत्र में बाँध दिया।

अवधनारायण जी ब्राह्मण थे और चित्रा जी ठाकुर। चित्राजी के परिवार वालों को यह अंतर्जातीय विवाह मंजूर न था। चित्राजी के पिताजी तो इस विवाह के कट्टर विरोधी थे। फिर भी चित्रा जी ने अवधनारायण जी के साथ माटुंगा के आर्यसमाज मंदिर में जाकर चुपचाप विवाह कर लिया। उस विवाह-प्रसंग का वर्णन करते हुए शब्द कुमार जी लिखते हैं कि सूचना मिलते ही ठाकुर साहब हाथ में रिवाल्वर लेकर अवधनारायण के दो टुकड़े करने सागर विला पहुँच गए। मित्रों ने चित्रा को किसी दूसरे कमरे में बिठाकर अवध को उनके कमरे में बंदकर बाहर से ताला लगा दिया और ठाकुर साहब को बताया गया कि वह वहाँ नहीं हैं। जब ठाकुर साहब अवधनारायण को गोली मारे बिना वहाँ से हटने को तैयार ही नहीं थे, तो हिंदी फिल्मों के जोरदार सीन की तरह चित्रा सामने आ गई और हजारों बार बोला गया डायलॉग एक बार फिर सुनाई दिया, 'मारना ही है, तो पहले मुझे मार दीजिए।'

ठाकुर साहब अपनी बेटी को न मार सके, पर अवधनारायण को न छोड़ने की धमकी देकर वहाँ से चले गए। अगले दिन मित्रों ने रेल के दो टिकटों का प्रबंध कर दोनों को दिल्ली भेज दिया।

बेटे राजीव के जन्म के बाद चित्राजी के मायके वालों ने उन्हें स्वीकार कर लिया। उनके पिताजी उन्हें घर और अन्य सुविधाएँ देना चाहते थे; परंतु चित्राजी ने कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया।

चित्राजी का प्रारंभिक पारिवारिक जीवन आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते बीता। परंतु बाद में स्थिति अच्छी हो गई। उनको जीवन के विभिन्न मोड़ों पर संघर्ष करना पड़ा है।

अगर उनकी विचारधारा और प्रभाव की बात करें, तो उन पर गोर्की, टॉलस्टाय, प्रेमचंद, रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी आदि का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। यद्यपि वे कम्यूनिस्ट पार्टी का कार्ड होल्डर नहीं हैं, फिर भी वे मार्क्सवादी विचारधारा को स्वीकार करती हैं। उनके अनुसार किसी पार्टी का कार्ड होल्डर बनना, उस पार्टी के राजनीतिक और सामाजिक विचारों को बिना किसी आशंका के स्वीकार करना है। वे मानती हैं कि मार्क्सवादी विचारधारा के प्रकाश में सर्वहारा को भली भाँति समझा जा सकता है। उनकी यह धारणा है कि किसी राजनीतिक पार्टी से संबद्ध हुए बिना भी सामाजिक कार्यों में हिस्सा लिया जा सकता है।

२.२. चित्रा मुद्गल का रचना-संसार :

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य में चित्रा मुद्गल का विशिष्ट स्थान है। हिंदी की स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाओं में चित्राजी ऐसी लेखिका हैं, जिनकी रचनाओं में बहुत अधिक संतुलन और पारदर्शकता है। बदलते सामाजिक परिवेश में चित्राजी का साहित्य यथार्थवादी साहित्य का बहुमूल्य दस्तावेज है। वे व्यष्टि और समष्टि के द्वंद्व से अपने साहित्य पट बुनती हैं। उन्होंने अपनी गहरी जन-संवेदना को अपने साहित्य में पूरी ईमानदारी से व्यक्त किया है। मानवीय चेतना और उनकी संवेदनाओं की जड़ में मौलिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता चित्रा मुद्गल का सबसे बड़ा मूल्य और जीवन-दर्शन है।

विषय-वस्तु की दृष्टि से चित्रा मुद्गल की सृजनधर्मिता विस्तृत और विविधता

से युक्त है। समकालीन जीवन के सभी सम-विषम पक्ष उनकी रचनाओं में समाविष्ट हैं। आस्था, आक्रोश, आत्मालोचन, प्रेमानुभूति, सामाजिक-चिंतन, विसंगतिबोध, संत्रास, तार्किक मानवीय दृष्टि, आंचलिकता, शोक संताप, हर्ष-विषाद आदि सभी विषयों पर उन्होंने श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। बाल-संवेदनाओं, युवा आक्रोश, वृद्ध समस्याओं, स्त्री-पुरुष की मानसिकता से लेकर सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य, फिल्मी ग्लैमर, विज्ञापन जगत और मजदूर यूनियनों तक की वस्तु स्थितियों को उन्होंने बखूबी समेटा है ।

चित्राजी ने अपनी साहित्यिक यात्रा सन् १९६४ में कहानी-लेखन से आरंभ की। उनकी प्रथम कहानी 'सफेद अनारा' नवभारत टाइम्स के रविवासरीय अंक में २५ अक्टूबर, १९६४ को प्रकाशित हुई। आगे चलकर उन्होंने अपने लेखन का दायरा उपन्यास, कहानी, कविता, बाल साहित्य, स्तंभ-लेखन तथा चिंतनात्मक लेखों तक बढ़ाया।

उनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ निम्नलिखित हैं :

(क) उपन्यास :

१. एक जमीन अपनी (१९९०)

२. आवाँ (२०००)

३. गिलिगडु (२००३)

(ख) कहानी-संग्रह :

१. जहर ठहरा हुआ (१९८०)

२. लाक्षागृह (१९८२)

३. अपनी वापसी (१९८३)

४. इस हमाम में (१९८६)

५. ग्यारह लंबी कहानियाँ (१९८७)

६. जगदंबाबाबू गाँव आ रहे हैं (१९९२)

७. चर्चित कहानियाँ (१९९४)

८. मामला आगे बढ़ेगा अभी (१९९४)

९. जिनावर (१९९६)

१०. केंचुल (२००१)

११. भूख (२००१)

१२. लपटें (२००३)

१३. चर्चित कहानियाँ (२००४)

१४. बयान (२००४)

१५. आदि-अनादि (तीन खंड)

(संपूर्ण कहानियाँ) (२००७)

(ग) बाल साहित्य संकलन :

१. जंगल का राजा (१९८६)

२. देश-विदेश की लोककथाएँ (१९८६)

३. नीति कथाएँ (१९८७)

४. दूर के ढोल (२००८)

५. काँच की किरच (२००८)

(घ) बाल उपन्यास :

१. माधवी कन्नागी (१९९३)

२. मधि मेखलै (२००१)

३. जीवन (२००१)

(ङ) नाटक :

१. पंचपरमेश्वर तथा अन्य नाटक (२००५)

२. सद्गति तथा अन्य नाटक (२००५)

३. बूढ़ी काकी तथा अन्य नाटक (२०१०)

(च) कथात्मक रिपोर्ताज :

१. तहखानों में बंद कमरा (२०१०)

(छ) लेख-संग्रह :

१. विचार-संग्रह (१९८८)

२. बयार उनकी मुट्ठी में (२००४)

(ज) संपादित :

१. असफल दांपत्य की कहानियाँ (१९८७)

२. टूटते परिवारों की कहानियाँ (१९८७)

३. दूसरी औरत की कहानी (१९८७)

४. भीगी हुई रेत (१९८९)

५. पुरस्कृत कहानियाँ (१९८९)

६. देह-देहरी (१९८९)

७. प्रेमचंद की प्रेम कहानियाँ (२००५)

(क) उपन्यास :

चित्रा मुद्गल ने अपने सर्जक जीवन का आरंभ कहानी-लेखन से १९६५ में किया और लगातार लेखन कार्य करती रहीं - परंतु उन्होंने पचीस वर्षों बाद उपन्यास लिखा। इसके कारण की खोज करते हुए वे खुद लिखती हैं : 'अपने को खँगालते हुए जो कारण हाथ लगता रहा - किसी भी आड़ से मुक्त होकर - कि उपन्यास लेखन के लिए अपने समय - समाज से जिस सीमा तक मुठभेड़ करने की जरूरत है - नहीं कर पाई हूँ। संभव है यह अपनी अक्षमता का तर्क हो। स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं।'[५]

१. एक जमीन अपनी :

१९९० में प्रकाशित चित्राजी का यह प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखिका ने मध्यवर्गीय महिलाओं की अस्मिता की तलाश की कोशिश की है।

इस उपन्यास के दो प्रमुख पात्र हैं : अंकिता और नीता। ये दोनों पात्र दो विपरीत ध्रुवों पर स्थित हैं। एक तरफ जहाँ अंकिता एक स्वाभिमानी स्त्री है, तो दूसरी तरफ नीता का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। वह निर्बाध मुक्त व्यक्तित्व के विकास के नाम पर अपना शोषण करवाती है। शोषण को पुरुष की दासता से मुक्ति का साधन मानती है। उसे इस बात का एहसास नहीं हो पाता कि विज्ञापन कला की आड़ में उसकी देह का ही नहीं उसके समूचे व्यक्तित्व का शोषण हो रहा है। वह स्त्री-स्वातंत्र्य

के नाम पर बाल-बच्चों वाले सुधीर से संबंध बनाती है और में छली जाती है ।

दूसरी तरफ अंकिता के माध्यम से लेखिका ने यह कहना चाहा है कि धैर्य, विवेक और साहस के साथ पुरुष अत्याचारों का विरोध किया जा सकता है । पुरुषों के असह्य अहंकार और उनकी दुष्टता से टकराते हुए अपनी अलग राह और पहचान बनाई जा सकती है ।

अंकिता अपने घर वालों के विरोध के बावजूद प्रेम-विवाह करती है । परंतु उसका पति भी उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता । वह भी उसे त्रस्त करता है । अंकिता को बार-बार यह एहसास होता है कि पति के घर में वह सिर्फ एक नौकरानी बनकर रह गई है । उसका मन इस बात के लिए छटपटाता रहता है कि सुबह से लेकर रात तक के बीच कोई तो ऐसा क्षण मिले, जिसमें वह सिर्फ अपने लिए जी सके । वह कुछ पढ़ना चाहती है - कुछ लिखना चाहती है; परंतु इसके लिए उसे अवसर ही नहीं मिल पाता ।

उसके पति सुधांशु का अहंकार उसकी प्रगति के मार्ग में बाधक बन जाता है । वह अंकिता की कविताओं की कॉपी के पन्नों के टुकड़े-टुकड़े करके कूड़ेदान में फेंक देता है । अपनी कविताओं की यह दशा वह फटी-फटी आँखों से देखती रह जाती है ।

फिर तो अंकिता सुधांशु से संबंध तोड़कर अपने पैरों पर खड़े होने का संकल्प करती है । वह विज्ञापन जगत को अपने कैरियर के क्षेत्र के रूप में चुनती है । वह चमक-दमक, अपराध और सेक्स के भरी मुंबई में विज्ञापन फिल्मों के चक्रव्यूह में फँसती चली जाती है । वहाँ उसे अपने अस्तित्व और चरित्र को बचाए रखने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ता है । अनेक अग्नि-परीक्षाओं से होकर गुजरना पड़ता है । पुरुष रूपी

खूँखार भेड़ियों से जूझना पड़ता है। वह पारिवारिक कलह से बचने के लिए माँ की मौत के बाद पारिवारिक संपत्ति में अपने हिस्से का त्याग कर देती है। वह कला-निर्देशकों की कामुकता और उनके द्वारा किए जाने वाले यौन-शोषण का खुलकर विरोध करती है। विज्ञापन के क्षेत्र में कम करते-करते उसे यह पता चल जाता है कि विज्ञापन फिल्मों का सारा व्यापार बेईमानी और सेक्स के बल पर चलता है। इसलिए विज्ञापन एजेंसी का प्रबंधक बनने के बाद वह इस प्रवृत्ति का विरोध करती है। इस बात का पूरा प्रयास करती है कि वह अपनी एजेंसी को 'चकला' नहीं बनने देगी।

नीता विज्ञापन फिल्मों में उसकी सहयोगी हिरोइन है। वह अत्यधिक धन-लोलुप है। वह किसी भी कीमत पर धन कमाने में विश्वास करती है। नारी-स्वातंत्र्य के नाम पर वह बाल-बच्चेदार सुधीर से संबंध स्थापित करती है। इसे वह पति की दासता से मुक्ति का रूप देती है। पैसे के लालच या नारी-मुक्ति के नाम पर अपनी देह के साथ-साथ अपने संपूर्ण व्यक्तित्व का सौदा करती रहती है। परंतु अंततः सब कुछ छलावा सिद्ध होता है।

उपन्यास के अंत में अंकिता का पति सुधांशु जब अंकिता से खुद को पुनः अपनाने का निवेदन करता है, तब वह कहती है : 'सुधांशुजी, औरत बोनसाई का पौधा नहीं है, जब जी चाहा उसकी जड़ें काटकर उसे पुनः गमले में रोप दिया। वह बौना बनाए जाने की इस साजिश को अस्वीकार भी कर सकती है।[६]

अंकिता स्त्री-पुरुष की समान साझेदारी का पक्षधर है। इस दृष्टि से उसकी यह अस्वीकृति उचित ही है।

२. आवाँ :

चित्रा मुद्गल का बहुचर्चित उपन्यास 'आवाँ' सन् १९९९ में सामयिक प्रकाशन

से प्रकाशित हुआ । यह उपन्यास अपनी विषय-वस्तु में बहु-आयामी है । लेखिका ने इस उपन्यास में निम्न, मध्य और उच्च - तीनों ही वर्गों के खोखलेपन का तथा विडंबनात्मक स्थितियों का बड़ा प्रभावकारी चित्रण किया है ।

यह उपन्यास बीसवीं सदी के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को पूरी प्रभावकता के साथ उभारता है । वर्तमान सभ्यता की उपलब्धियाँ तथा भौतिक सुख-साधन किस तरह मनुष्य के लिए स्टेटस सिंबल बन गए हैं और किस तरह उनकी पूर्ति के लिए उसका नैतिक अधःपतन होता है - यही इस उपन्यास का मूल प्रतिपाद्य है । अपनी संदर्भगत बहुतलता तथा नारी-जीवन के बहुस्तरीय शोषण का अति विराट् फलक पर पर्दाफाश करने वाली यह अपने ढंग की अप्रतिम औपन्यासिक कृति है ।[९]

हिंदी में ट्रेड यूनियन और श्रमिकों पर यह पहला उपन्यास है, जिसमें चित्राजी ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर न केवल उनके मिल मालिकों और पूँजीपतियों के साथ संघर्षों को चित्रित किया है, बल्कि उनकी आपसी भीतरघाती, ईर्ष्याग्रस्त राजनीति को भी अंकित किया है । इस तरह उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि भारतीय मजदूरों को भीतर और बाहर दो 'फ्रंटों' पर लड़ना है - अपने नेताओं के साथ मालिकों के खिलाफ और अपने नेताओं के बीच की आपसी लड़ाई में ।

नमिता पांडे उपन्यास की कथा का केंद्रीय पात्र है । उसे कथा-नायिका कह सकते हैं । नमिता पांडे के पिता देवीशंकर पांडे 'कामगार अघाड़ी' के महासचिव हैं । एक श्रमिक प्रदर्शन के दौरान कोई 'भीतरघाती' ईर्ष्यावश उनकी पीठ में छुरा भोंककर उन्हें बुरी तरह से घायल कर देता है । उनके प्राण तो बच जाते हैं, परंतु वे पक्षाघात के शिकार हो जाते हैं और अपाहिज के रूप में बिस्तर पर पड़े रहने के लिए विवश हो जाते हैं । परिणामस्वरूप नमिता को अपनी पढ़ाई छोड़कर अपने पिता की सेवा

में लग जाना पड़ता है । उसकी माँ शाहबेन की 'श्रमजीवी संस्था' में पापड़ बेलकर घर खर्च चलाती है । नमिता भी माँ को सहयोग देने के लिए पापड़ बेलने लगती है । बाकी समय में साड़ियों में फॉल लगाती है तथा ट्यूशनें करती है । अपनी छोटी बहन मुनिया और छोटे भाई छुन्नू की भी देखभाल करती है । परिवार की जरूरतों को देखते हुए वह अन्ना साहब की कृपा से अपने पिता के स्थान पर नौकरी भी स्वीकार कर लेती है । परंतु तीन महीने बाद अन्ना साहब की अश्लील हरकतों के कारण नौकरी छोड़ भी देती है । परिवार की खराब आर्थिक स्थिति के कारण वह फिर से नौकरी ढूँढ़ने के लिए विवश हो जाती है । इसी भागदौड़ में उसकी मुलाकात एक बहुत बड़ी पूँजीपति मैडम अंजना वासवानी से होती है । वे उसे 'बाबा ज्वेलर्स' में साढ़े तीन हजार मासिक की नौकरी दिला देती हैं । मैडम के प्रेम भरे अनुरोध पर जल्द ही वह पुराने गहनों की प्रदर्शनी करने वाली मॉडल बन जाती है ।

इसी दौरान उसका परिचय संजय कनोई से होता है । अहमदाबाद में संजय कनोई का करोड़ों का व्यापार है । वह विवाहित है, परंतु निःसंतान है । वह अपनी संतान चाहता है । इसके लिए वह नमिता पर डोरे डालता है । यह कहकर वह नमिता को आश्वस्त करने में सफल हो जाता है कि वह अपनी पत्नी को तलाक देकर उससे शादी कर लेगा । नमिता उसकी बातों में आ जाती है । वह गर्भवती बनती है । संजय ऐसे ही उसे बहलाता रहता है । जबकि वास्तविकता यह है कि वह नमिता जैसी एक साधारण परिवार की लड़की के साथ सम्मानपूर्वक सामाजिक जीवन बिताना नहीं चाहता।

नमिता फँस जाती है । वह न तो संजय की रखैल बनकर रहना चाहती है और न अपना गर्भ गिरवा सकती है । परंतु इसी बीच अन्ना साहब की हत्या हो जाती है ।

इस घटना का नमिता पर बहुत बुरा असर होता है । इस आघात के चलते उसका गर्भ गिर जाता है । गर्भपात की बात जानकर संजय आग बबूला हो उठता है । अपने इरादे में नाकामयाब होने से वह बौखला उठता है ।

इस उपन्यास की सबसे दुखद उपकथा है सुनंदा की । सुनंदा एक मुसलमान युवक सुहैल से प्रेम करती है । वह सुहैल के बच्चे की माँ है - कुँवारी माँ! सुहैल के माँ-बाप को इस बात का आग्रह है कि सुहैल के साथ सुनंदा को विवाह करना हो, तो उसे मुसलमान बनना पड़ेगा । परंतु सुनंदा शादी के लिए धर्म बदलने पर राजी नहीं है । वह हिंदू-मुस्लिम एकता को धर्म से ऊपर देखना चाहती है । किंतु, अंततः उसे न्याय मिलने के स्थान पर धर्मांधता और सांप्रदायिकता के कारण उसकी हत्या हो जाती है ।

स्मिता और गौतमी की उपकथाएँ 'बोल्ड और मिलिटेंट फेमिनिज्म' के प्रभावशाली उदाहरण हैं । अपने दैहिक सुख और यौन-संबंधों के मामले में वे पुरुषों से भी आगे हैं । साथ ही, स्मिता की हिम्मत, ईमानदारी तथा स्पष्टवादिता एक संघर्षशील नारी का एक नया नमूना पेश करती है ।

वेश्याओं को उनके पेशे से अलग कर उन्हें मिलों और कारखानों में काम दिलवाया जा रहा है । परंतु सभी मजदूरों के दिलों में समाज-सेवा का भाव नहीं है । इसलिए वे वेश्याओं को समुचित नारी-सम्मान नहीं देते । उन्हें रंडी ही मानकर उनके साथ देह सुख पाने की कोशिश करते हैं । इस दुष्कृत्य में वे मजदूर भी शामिल हैं, जो अपने शोषण के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं । अपने पेशे से अलग होकर सामान्य जीवन जीने की इच्छुक और प्रयत्नशील इन वेश्याओं के जीवन की यहाँ भी दुर्दशा होती है ।

३. गिलिगडु :

'गिलिगडु' चित्राजी का तीसरा उपन्यास है । यह आकार में अपेक्षाकृत छोटा उपन्यास है । इसमें वृद्ध-समस्या पर आधारित दो बूढ़ों की कथा है । एक हैं सेवानिवृत्त इंजीनियर बाबू जसवंत सिंह और दूसरे हैं रिटायर्ड कर्नल नारायण स्वामी । दोनों अपने-अपने बेटों के साथ दिल्ली में रह रहे हैं । दोनों की मुलाकात एक दिन अचानक सुबह की सैर के समय हो जाती है ।

इस उपन्यास की शुरुआत बाबू जसवंतसिंह के सुबह 'फारिग' होने और कुत्ते 'टॉमी' को 'फारिग' कराने से होती है । टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है, जो परिवार में फैशन और प्रतिष्ठा का प्रतीक है । परंतु उसके नित्यकर्म का ध्यान रखना परिवार का नहीं, बल्कि बाबू जसवंतसिंह की जिम्मेदारी है । विडंबना यह है कि बेचारे बूढ़े को, परिवार में अपनी उपादेयता सिद्ध करने के लिए, यह काम नियमित रूप से करना पड़ता है । जसवंत सिंह की हालत इतनी दयनीय है कि अगर वे लिफ्ट का दरवाजा खुला छड़ दें, तो उनकी शिकायत होती है; जबकि दूध वाले और अखबार वाले यह काम अधिकारपूर्वक हर रोज करते हैं ।

बाबू जसवंत सिंह कानपुर के रहने वाले हैं । पत्नी और एकमात्र दोस्त के निधन के बाद वे एकदम से अकेले पड़ जाते हैं । अकेलापन उनके लिए बड़ी समस्या बन जाती है । इसलिए डॉक्टर की सलाह पर वे दिल्ली अपने बेटे नरेंद्र के पास आ जाते हैं । यहाँ आकर उन्हें पता चलता है कि बाप के प्रति बेटे नरेंद्र के मन में तनिक भी आदरभाव नहीं है । वास्तव में नरेंद्र के मन में पिता के कठोर अनुशासन के कारण तरह-चरह की कुठाएँ भरी हुई हैं । उसका जीवन सँवारने के लिए पिता ने अपने जीवन को जीवन नहीं समझा । इसके लिए उनके प्रति कृतज्ञ भाव रखने के बजाय उसके मन

में पिता की क्रूर मूर्ति बनी हुई है । बहू सुनयना के भी मन में ससुर के प्रति कोई आदरभाव नहीं है । उसके मन में सिर्फ एक लोभ है - दिवंगत सास के गहनों और ससुर की संपत्ति हड़पने का लोभ । नरेंद्र के बच्चों को बाबू जसवंतसिंह कोई दोष देना नहीं चाहते ; क्योंकि 'बुद्धि-विकास की आड़ में बड़ी खूबसूरती से ... संवेदना-च्यत किया जा रहा है । इतना कि बच्चे कभी परिवार में लौट ही न सकें , न अपना कभी परिवार गढ़ सकें ।[८]

अपनी परिस्थिति के कारण बाबू जसवंत सिंह कुंठाग्रस्त और अत्यंत दयनीय हो चुके हैं । उनको इस स्थिति से उबारने के लिए कर्नल स्वामी उनका बहुत ध्यान रखते हैं । अपने परिवार में अपनी दबंगई के किस्से सुनाते हैं । वे जसवंत सिंह को ऐसी-ऐसी बातें सुनाते हैं मानो उनके घर में उनकी मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता । जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है ।

एक दिन अचानक कर्नल स्वामी टहलने आना बंद हो जाता है । बाबू जसवंत सिंह हर रोज पुलिया पर बैठकर उनका इंतजार करते हैं । परंतु कर्नल स्वामी जब बारह दिनों तक नहीं आते , तब बाबू जसवंत सिंह उनका पता लगाने के लिए तेरहवें दिन उनके घर जाते हैं । वहाँ कर्नल के पड़ोसी से उन्हें पता चलता है कि सीढ़ियों से पाँव फिसल जाने के कारण बारह दिन पहले कर्नल की मौत हो गई । फिर उनके परिवार के बारे में पूछने पर जो कुछ मालूम पड़ता है, वह जानकर बाबू जसवंत सिंह की आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है । दूसरों को सदा प्रेरणा देते रहने वाले कर्नल के जीवन की त्रासदी जानकर वे सकते में आ जाते हैं । कर्नल अपने जिस बेटे श्रीनारायण की हरदम प्रशंसा किया करते थे , उसी ने पैसों के लालच में उनकी पिटाई की थी । अपनी जिस नृत्यांगना बहू प्रशंसा में उनकी जबान नहीं थकती थी, वह अपनी डेढ़

वर्ष की जुड़वाँ बेटियों को छोड़कर अपने नृत्यगुरु के घर जा बैठी थी।

कर्नल के घर से वापस लौटते हुए वे अपने घर कानपुर लौटने का निश्चय कर लेते हैं और शाम की गाड़ी से कानपुर के लिए रवाना हो जाते हैं।

(ख) कहानी-संग्रह :

चित्राजी की कहानियों में निम्न मध्यवर्ग से लेकर राजनीतिक, सामाजिक मजदूर संगठनों, कामगारों, भिखमंगों, वृद्धों, स्त्री-पुरुष के जटिल संबंधों, बलात्कार की शिकार स्त्रियों की पीड़ा, शोषितों की छटपटाहट, शोषण, अन्याय, अत्याचार और दमन के खिलाफ कदम उठाने के लिए सक्रिय स्त्रियों का अदम्य साहस, भारतीय परिवारों की सदियों पुरानी कौटुंबिक परंपरा के टूटते स्वरूप तथा उसके प्रभावों को बेहद तार्किक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

चित्राजी का अनुभव संसार इतना व्यापक और बहुरंगी है कि उनकी कहानियों में गाँव-देहात से लेकर आधुनिक शहरी समाज को साफ-साफ देखा जा सकता है। उनका लेखन एक खास दृष्टि, चिंतन, उद्देश्य और मानवीय प्रतिबद्धता को लेकर चलता है।

प्रमुख कहानी संग्रहों का परिचय :

१. अपनी वापसी :

चित्राजी का यह पहला कहानी संग्रह है। इस संकलन में कुल छ कहानियाँ संकलित हैं : अपनी वापसी, दरमियान, गर्दी, लिफाफा, शून्य और मोर्चे पर। इस संकलन में संकलित सभी कहानियाँ मनुष्य जीवन के विविध आयामों को उद्‌घाटित करती हैं और सामाजिक परंपराओं तथा रूढ़ियों पर तीखा प्रहार करती हैं। 'अपनी वापसी' कहानी में शकुन ढलती उम्र और क्षीण होती शारीरिक शक्ति के कारण परेशान

है। प्रौढ़ावस्था उसके सामने विशेष समस्या के रूप में आती है। वह अपने पति से उपेक्षा का भाव महसूस करती है। इसी कारण उसके मन में युवा लड़कियों के प्रति परोक्ष ईर्ष्या भी पैदा होती है। प्रौढ़ावस्था उसके सामने तरह-तरह की शारीरिक-मनसिक बीनारियाँ लेकर आती है। उसकी मनोदशा का बड़ा सूक्ष्म एवं कलात्मक चित्रण चित्राजी ने इस कहानी में किया है। 'दरमियान' कहानी में मध्यवर्गीय कामकाजी महिलाओं की व्यथा का चित्रण किया गया है। इस कहानी की नायिका आकांक्षा अपनी नौकरी और बच्ची के बीच समान भाव से बँधी है। एक दिन मासिक धर्म के अचानक शुरू हो जाने के कारण वह अपनी बच्ची मिनी को लेने स्कूल में कुछ देर से पहुँचती है और वहाँ का दृश्य देखकर वह स्तंभित रह जाती है। वहाँ पर उसकी बच्ची माँ के देर से आने के कारण माँ की रट लगाने के बजाय खेलने में मसगूल है। अपनी माँ की विवशता को समझकर मानो उसने स्थिति से समझौता कर लिया हो। यह देखकर आकांक्षा को लगता है जैसे उसके माँ होने का अधिकार-सुख छिन गया हो।

'गर्दी' कहानी दो पीढ़ियों के बीच के अंतराल की कहानी है। इस कहानी का नायक अपने मृत मित्र की पत्नी राजी और उसके दो बच्चों के साथ रहकर उनका सहारा बनने का साहसिक निर्णय करता है। परंतु उसकी माँ अपनी बीमारी का झूठा तार देकर उसे गाँव बुलवा लेती है और उसके बूढ़े पिता के सिर उसका हाथ रखवाकर उसे कसम देती है कि वह शहर पहुँचकर अलग कमरा ले ले और उस औरत का साथ छोड़ दे। वह यह भी कहती है कि अगर वह ऐसा नहीं करता, तो समझेगी कि चीन की लड़ाई के समय जैसे उसका बड़ा भाई मर गया, वैसे ही हमारे लिए तू भी मर गया। बुर्जुग पीढ़ी द्वारा अपने बच्चों पर अपने विचार थोपने की इस मानसिकता का चित्रण चित्राजी ने बहुत सुंदर ढंग से किया है। 'लिफाफा' कहानी में कमाऊ संतान

और बेरोजगार संतान के बीच परिवार वालों द्वारा फर्क किए जाने की समस्या की कहानी है। बेरोजगार युवक अशोक अपनी कमाऊ बहन अनु की तुलना में बहुत उपेक्षित है। परंतु उसी अशोक को जब नौकरी मिल जाती है और वह अपनी तनखाह के रुपयों का लिफाफा लाकर माँ को देता है, तब घर में उसकी कदर बढ़ जाती है। 'शून्य' त्रिकोणात्मक संबंधों की कहानी है। एक दूसरी औरत वेला की वजह से सरला अपने पति राकेश का घर छोड़कर बेटा दीपू के साथ अलग रहने लगती है। परंतु एक दुर्घटना की वजह से वेला माँ बनने की क्षमता खो बैठती है। उसके बाद राकेश पुरुष होने के अधिकार से दीपू को सरला से वापस लेना चाहता है। किंतु कहानी सरला के इस निर्णय पर खत्म होती है कि वह दीपू को किसी भी कीमत पर नहीं दे सकती - इसके लिए उसे अदालत तक जाना पड़ेगा, तो भी वह जाएगी। 'मोर्चे पर' कहानी में रिन्नी का पति सुदीप लड़ाई के मोर्चे से वापस नहीं आता। इस नाते उसे पहले तो गुमशुदा घोषित किया जाता है - फिर उसे मृत मान लिया जाता है। सुदीप के दोनों बच्चे राजू और बिट्टी अपने पिता से इतने घुले-मिले हैं कि उन्हें उनके पिता की मौत के बारे में कुछ भी बताना रिन्नी के लिए बहुत कठिन हो जाता है। पिता की मौत के एहसास से बच्चों को बचाए रखने की कोशिश करते हुए रिन्नी पूरी जिंदगी यूँ ही बिताने का निश्चय करती है। परंतु बच्चों के मन पर पिता की स्मृतियों की छाप इतनी सघन है कि कुछ ही दिनों में रिन्नी को यह एहसास हो जाता है कि 'इस मोर्चे पर' टिक पाना बहुत मुश्किल है।

२. इस हमाम में :

इस संकलन में कुल नौ कहानियाँ संकलित हैं : भूख, फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती, चेहरे, ब्लेड, अपने-अपने गिरेवान, इस हमाम में, होना संपादक की

पत्नी का लेखिका, जरिया और लेन। ‘भूख’ कहानी में महानगरों की झोपड़पट्टियों में बेकारी की जिंदगी गुजारने वालों की व्यथा-कथा कही गई है। जिंदगी जीने के लिए उन्हें कैसे-कैसे समझौते करने पड़ते हैं, यह कहानी उसकी अकल्पनीय दास्तान प्रस्तुत करती है। इस कहानी की लक्ष्मा जीविका का कोई साधन न मिलने पर, अपने छोटे बेटे छोटू को, एक भिखारिन को, किराये पर देने के लिए तैयार हो जाती है। ‘फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती’ कहानी रेड लाइट एरिया में धंधा करने वाली लड़कियों की जिंदगी पर आधारित है। फातिमा नामक एक महिला बाकायदा लाइसेंस लेकर लड़कियों से धंधा करवाती है। उन लड़कियों से बातचीत के दौरान जो सचाई सामने आती है, उसे जानकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। गरीबी, अभाव और परिवार को चलाने की मजबूरी के चलते जो लड़कियाँ तथा महिलाएँ उस धंधे में गई हैं, वे अपने सामाजिक जीवन में वापस नहीं आना चाहतीं। लेखिका का मानना है कि इस अंतहीन नरक की पीड़ा का कोई समाधान नहीं है। इसमें चारों तरफ फातिमाबाई, दलाल और क्रूर पुरुषों की कमी नहीं है।

‘चेहरे’ कहानी व्यवस्था और व्यवस्था से जुड़े लोगों के अलग-अलग चेहरों की असलियत का बयान करती है। यह मुंबई में और खासकर रेलवे स्टेशनों पर भीख माँगने वाली औरतों तथा बच्चों की जिंदगी पर आधारित कहानी है। वे औरतें और बच्चे टिकट के लिए लाइन में खड़े लोगों का ध्यान बँटाकर उनकी जेबें कटवा देते हैं। परंतु कहानी के अनुसार सच यह है कि इस तरह के अपराध के लिए सिर्फ वे औरतें या बच्चे ही जिम्मेदार नहीं हैं, बल्कि इस धंधे से जुड़े दूसरे लोग भी जिम्मेदार हैं, जो उन्हें इस धंधे में लगाते हैं और अपना हिस्सा लेते हैं। ‘ब्लेड’ प्रतीकात्मक कहानी है। कहानी के अनुसार कोई आदमी अगर ईमानदारी से पैसा उधार माँगता

है, तो उसे झूठा और बहानेबाज माना जाता है। ड्राइवर रामलखन पर पत्नी, बच्ची, माँ और विधवा भाभी के साथ-साथ उसके बच्चों की भी जिम्मेदारी है। रामलखन को जब यह पता चलता है कि उसकी बेटी घुघुनु के पाँव की हड्डी टूट गई है और उसे आगरा के अस्पताल में प्लास्टर चढ़ाया जाएगा, तब वह घर पैसा भेजने के लिए अग्रिम पैसा साहब से माँगता है। परंतु साहब बहाने बाजी करके पैसा देने से इंकार कर देता है। उसी समय उसका साथी ड्राइवर जमाल उसे बेईमानी करने के लिए उकसाता है। इस पर वह जमाल को फटकारता है। लेकिन घर पैसा भेजना जरूरी है। बार-बार उसके सामने बेटी घुघुनु का ख्याल आता है। वह सोचता है कि समय से प्लास्टर नहीं हुआ, तो बेटी लँगड़ी हो जाएगी। अंततः वह बेईमानी करने के लिए तैयार हो जाता है। वह ब्लेड से गाड़ी की सीट की सिलाई काट देता है।

'अपने-अपने गिरेवान' कहानी में उच्चवर्ग की पोल खोली गई है। इसमें पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के फलस्वरूप भारतीय उच्चवर्ग में बढ़ती घिनौनी क्लब संस्कृति पर तीखा प्रहार किया गया है। 'इस हमाम में' मध्यवर्गीय नारी की घुटन की कहानी है। इस कहानी में अंजना और दिवा नामक दो स्त्रियों के जीवन और चरित्रों के माध्यम से उनकी पारिवारिक, सामाजिक व्यक्तिगत जिंदगी की त्रासदी को उभारा गया है। अंजना कचरा लेने आती है। वह अपने जीवन के बारे में बताती है कि कितने तरह के कष्ट उठाकर वह अपने तीसरे पति के साथ रह रही है। परंतु दूसरी तरफ दिवा का जीवन घर में कैदी के समान है। वह अपने ही घर में पति के इशारों पर नाचने वाली एक नौकरानी से अधिक कुछ नहीं है। पढ़ा-लिखा होकर भी उसका पति पत्नी के साथ क्रूरता का व्यवहार करता है। चित्राजी ने इस सचाई को बड़ी मार्मिकता से उभारा है कि पुरुष की सत्ता को नकारने और उसका विरोध करने की कीमत स्त्री को चुकानी

ही पड़ती है। पति नामक प्राणी को खुश करने की जद्दोजहद में उसका अपना जीवन बीत जाता है।

'जरिया' कहानी व्यावसायिक क्षेत्र की मक्कारी प्रवृत्ति को उभारती है। इस समाज में लोग अपने को स्थापित करने के लिए दूसरों को जरिया बनाते हैं। कहानी में विवेक बतरा नामक एक युवक मुंबई शहर में टिके रहने के लिए एक लेखिका को जरिया बनाता है। वह फिल्म की स्क्रिप्ट पर घंटों झूठी बातें करता है। परंतु सामने से कोई जवाब न आने पर अधिकारियों को दोषी ठहराकर अपने को निर्दोष साबित करता है और हताश होने का नाटक करता है। परंतु अंततः उसकी हकीकत सामने आ ही जाती है। 'लेन' कहानी महिंदरी नामक परिश्रमी और जुझारू औरत की व्यथा का प्रतिबिंब है। महिंदरी आर्थिक संघर्ष और विपरीत परिस्थितियों के कारण पाठक की सहानुभूति का पात्र बनती है। कहानी लंबी है, परंतु उतनी ही सशक्त भी है। लेन की खरीद-फरोख्त कैसे होती है और कैसे कोई एक-दूसरे की लेन ले नहीं सकता, इस बात पर आपसी समझौते की जो शर्तें और बातें होती हैं, उस पर ये लोग कायम रहते हैं। इस तरह के समाज की आंतरिक जिंदगी को उसके परिवेश के रंग, भाषा, स्वभाव और समग्रता में प्रस्तुत करना ही इस कहानी की विशिष्टता है।

३. जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं :

इस संकलन में कुल नौ कहानियाँ संकलित हैं : मुआवजा, सौदा, अभी भी, जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं, ताशमहल, प्रमोशन, हस्तक्षेप, बेईमान और लकड़बग्घा। 'मुआवजा' कहानी कनिष्क विमान दुर्घटना में यात्रियों की जान बचाने की कोशिश में अपनी जान गँवाने वाली विमान परिचारिका नीरजा मिश्र की सत्य घटना पर आधारित है। कहानी की नायिका शीलू की विमान दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है। उसकी मृत्यु

के बाद मिलने वाले मुआवजे को, उसके माता-पिता 'वनिता आश्रम' को दान देना चाहते हैं। परंतु इसी बीच शीलू का पति सुमित मुआवजा लेने के लिए उपस्थित हो जाता है; जबकि थोड़े दिन पहले, एक समझौते के तहत शीलू और सुमित का संबंध विच्छेद हो चुका है। इस कहानी में यह दिखाया गया है कि पैसे का लालच व्यक्ति को कितने घटिया स्तर पर उतार देता है।

'सौदा' कहानी में एक स्त्री के अंतर्द्वंद्व का सघन चित्रण हुआ है। एक दिन गेंदा नाम की एक लड़की मंगला की खोली भागते हुए आकर मंगला के पाँव पकड़े लेती है और खुद को गुंडों से बचाने की मिन्नत करती है। मंगला स्त्री उद्धारक समिति की कार्यकर्ता पटवर्धन ताई की मदद से गेंदा को बचाने का निश्चय करती है। परंतु जब उसे पता चलता है कि वास्तव में गेंदा को उसका ही पति चंदू एक दलाल के हाथों बेचना चाहता है, तब वह उलझन में पड़ जाती है। अगर वह गेंदा को बचाने जाती है, तो उसके पति चंदू को जेल हो जाएगी और अगर ऐसा नहीं करती, तो एक स्त्री का जीवन बरबाद हो जाएगा। परंतु अंत में अपने परिवार की परवाह किए बिना मंगला गेंदा को बचाने के निर्णय पर अटल रहती है। 'अभी भी' पायलट मुकेश की विधवा शिल्पा की कहानी है। पायलट मुकेश की एक दुर्घटना के में मृत्यु हो जाती है। मुकेश की मृत्यु के बाद उसके हिस्से की संपत्ति पर अधिकार जमाने की कोशिश में उसके माता-पिता तरह-तरह के षड़यंत्र करते हैं। दबाव देकर शिल्पा की शादी मुकेश के छोटे भाई अनिल से कराते हैं। बाद में शिल्पा को जलाकर मार डालने की कोशिश भी करते हैं। 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं' कहानी गाँव की भोली-भाली जनता की भावनाओं के साथ राजनेताओं के खिलवाड़ की कहानी है। कहानी में सुक्खन भौजी का बेटा ललौना पोलियोग्रस्त होने के कारण बैसाखी पर चलता

है, जिससे उसकी काँख छिल जाती है। सुक्खन भौजी ठाकुर सुमेर सिंह के यहाँ चौका-बरतन करती है। सुमेर सिंह उसे आश्वासन देते हैं कि भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्र और 'विकलांग उद्धार समिति' के अध्यक्ष जगदंबा बाबू से वे ललौना के लिए पहियों वाली कुर्सी दिलवा देंगे। एक समारोह के दौरान ललौना को पहियों वाली कुर्सी मिल भी जाती है। परंतु कई दिनों के बाद, बहाने बना कर वह कुर्सी वापस ले ली जाती है, जिससे सुक्खन भौजी तथा ललौना निराश हो जाते हैं।

'ताशमहल' संबंधों के बनने, बिगड़ने और फिर ताश के पत्तों की तरह ढहने की कहानी है। यह पुरुष मानसिकता और माँ की ममता को व्यक्त करने वाली कहानी है। शोभना दिवाकर की पत्नी है और बच्चू उसका बेटा। दिवाकर के मर जाने के बाद निशीथ शोभना से शादी करना चाहता है। इसके लिए वह अपनी डायरी शोभना को पढ़वाता है। शोभना और निशीथ की शादी तो हो जाती है; परंतु निशीथ दिवाकर से पैदा हुए शोभना के बेटे बच्चू को पसंद नहीं करता। बच्चू में उसे सदा दिवाकर का ही चेहरा दिखाई पड़ता है। निशीथ से शोभना को एक बच्चा पैदा होता है रोनू। निशीथ बच्चू को हॉस्टल में डाल देना चाहता है; ताकि दिवाकर की स्मृतियों से पीछा छूटे। परंतु शोभना इसके लिए तैयार नहीं होती। वह बच्चू और रोनू दोनों के हित का विचार करके अपने तबादले के लिए तैयार हो जाती है। 'प्रमोशन' कहानी एक पति की संशयग्रस्त एवं कुंठाग्रस्त मानसिकता पर आधारित है। सुभाष और उसकी पत्नी ललिता दोनों एक ही विभाग में काम करते हैं। आगे चलकर ललिता का प्रमोशन पैकिंग विभाग के इंचार्ज के पद पर हो जाता है। इससे सुभाष के मन में शंका पैदा होती है कि ललिता का अपने बॉस कोठारी से जरूर गलत संबंध है। इसलिए वह ललिता से नौकरी छोड़ देने के लिए कहता है। परंतु ललिता स्वाभिमानी स्त्री है।

वह अपने पति की इस बात से अपने को अपमानित महसूस करती है। वह सुभाष से स्पष्ट रूप से कह देती है कि मेरे लिए घर और नौकरी को चुनने का अधिकार तुम्हें किसने दिया है। तुम मानसिक रूप से रुग्ण हो।

'हस्तक्षेप' दो युवतियों के वैचारिक द्वंद्व बहस की कहानी है। वास्तव में यह कहानी चित्राजी के उपन्यास 'एक जमीन अपनी' की ही मूल संवेदना को प्रस्तुत करती है। देह-प्रदर्शन आजकल किसी भी काम का अंग माना जा रहा है। परंतु अंकू इसे अशोभनीय, लज्जाजनक तथा संपूर्ण स्त्री-जाति के लिए कलंक मानती है। वह स्त्री की सामाजिक छवि को लेकर भी दुविधाग्रस्त है। परंतु नीता का मानना है कि बिकनी पहनने में कोई बुराई नहीं है। 'बेईमान' कहानी में समाज द्वारा शोषण से उपजी परिस्थितियों के कारण भोले-भाले बच्चे मजबूर बनकर किस प्रकार गलत रास्ते पर कदम बढ़ाते हैं, इसका अत्यंत सहज एवं स्वाभाविक चित्रण हुआ है। यह कहानी एक ऐसे ही लड़के की कहानी है, जो कमीशन के आधार पर पत्रिकाएँ बेचता है। ट्रेन में पत्रिका खरीदने के बहाने एक महिला उलट-पुलटकर पत्रिकाएँ देखती है और नजर बचाकर एक पत्रिका दबा लेती है। फिर उल्टे लड़के को ही डाँटती है। उस पत्रिका की क्षतिपूर्ति करने के लिए लड़का जानबूझकर एक दूसरे यात्री के पैसे नहीं लौटाता और गाड़ी चल देती है। प्रश्न उठता है कि उस गरीब लड़के को बेईमान बनाने के लिए जिम्मेदार कौन है? 'लकड़बग्घा' कहानी एक विधवा का मार्मिक व्यथा-कथा को उजागर करती है। भारतीय ग्रामीण समाज में आज भी विधवा की विपदा भरी, कंटकपूर्ण जिंदगी उसे ही नहीं, उसके पूरे परिवार को सहनी पड़ती है। इसमें पछाँहवाली ऐसी ही एक विधवा है, जिसमें भरपूर जिजीविषा ही नहीं, प्रतिशोध का जीवट भी है। वह अपने जेठ लंबरदार की बेटियों की तरह अपनी बेटी को भी पढ़ाई के लिए शहर भेजना चाहती है। परंतु

सामंती क्रूरता का प्रतीक लंबरदार को पछाँहवाली का मुँह खोलना पारिवारिक मर्यादा को चुनौती देने जैसा लगता है। वह षड़यंत्र करके लकड़बग्घा के नाम पर उस विद्रोही औरत का सफाया करवा देता है।

४. मामला आगे बढ़ेगा अभी :

इस संग्रह में कुल बारह कहानियाँ हैं। किंतु उनमें अंतिम छ कहानियाँ चित्राजी के उपन्यास 'अपनी वापसी' संग्रह की कहानियाँ हैं; जिन्हें इस संग्रह में दुबारा छापा गया है। 'मामला आगे बढ़ेगा' कहानी आर्थिक दृष्टि से उच्चवर्गीय और निम्नवर्गीय परिवारों की समस्याओं के सूत्रों की सघन बुनावट से बनी कहानी है। इसमें एक ओर जहाँ उच्चवर्गीय सक्सेना साहब के पारिवारिक विघटन का कारण धन की अधिकता और पारस्परिक अविश्वास है, वहीं निम्नवर्गीय मोटच्या की पारिवारिक दुर्दशा कारण धन का अभाव और अतिरिक्त विश्वास है। 'अग्निरेखा' एक अपाहिज स्त्री के संशय की कहानी है। अमरेंद्र की पत्नी मनु प्रसव के दौरान अपाहिज हो जाती है। उसकी बहन शशि उसकी देखभाल करने के लिए उसके घर आती है। परंतु मनु को अपने पति और अपनी बहन के बीच अवैध संबंध होने का संदेह हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है। 'शिनाख्त हो गई है' कहानी में वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की अव्यवस्था, पड़ोसियों और तथाकथित परिजनों की औपचारिक सहानुभूति पर तीखा प्रहार किया गया है। 'पाली का आदमी' एक ऐसे आदमी की कहानी है, जिसके लिए वात्सल्य, स्नेह और कर्तव्य जैसे गुण मानो आरक्षित हैं। वे एक जगह तो प्रकट होते हैं और दूसरी जगह उनकी आवश्यकता होते हुए भी वे लुप्त हो जाते हैं। रवि अपनी दूसरी पत्नी की बेटी सोनू की गुड़िया की शादी के लिए तो छुट्टी लेकर आ जाता है; लेकिन अपनी पहली पत्नी की बेटी लल्ली के विवाह में उसके

आग्रह करने पर भी उसे आशीर्वाद देने नहीं जाता। 'त्रिशंकु' मुंबई की झोपड़पट्टी में रहने वाले किशोर बंडू और उसकी माँ की दरिद्रता से उपजी उनकी त्रिशंकु जैसी स्थिति की कहानी है। रोटी कमाने के लिए किशोर सिनेमा के टिकटों का ब्लैक करते हुए पकड़ा जाता है; पर जब जेल से छूटकर घर आता है, तब उसे पता चलता है कि माँ ने दूसरा ब्याह कर लिया है। अभागे किशोर की स्थिति फिर से त्रिशकु जैसी हो जाती है।

५. जिनावर :

इस संग्रह में 'प्रेतयोनि', 'बाघ', 'सुख', 'जिनावर', 'एंटिक पीस', 'स्टेपनी', 'अढ़ाई गज की ओढ़नी' ये सात कहानियाँ हैं तथा बारह लघुकथाएँ संकलित हैं। 'प्रेतयोनि' कहानी में बलात्कार का शिकार होने से बाल-बाल बची एक लड़की के प्रति उसके घर वालों में जो परिवर्तन आता है, उसको रेखांकित किया गया है। अनिता गुप्ता दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्रा है। एक बार वह ट्रेन में घायल हो जाती है। घायलों को टैक्सी में भेजा जाता है। रास्ते में एकांत पाकर टैक्सी ड्राइवर उसके साथ बलात्कार करने की कोशिश करता है। परंतु अनीता खुद को बचाने में कामयाब हो जाती है। फिर वह पुलिस में जाकर रिपोर्ट दर्ज करवाती है। यह खबर अखबारों में छपते ही बवेला मच जाता है। घर वाले अपनी झूठी इज्जत बचाने के लिए इस बात को नकारते हैं कि अनीता नामक जिस लड़की का नाम अखबारों में छपा है, वह उनकी बेटी नहीं है। अनीता के प्रति उसकी माँ का व्यवहार बदल जाता है। पिता के भी बदले हुए रुख को देखकर उसे आश्चर्य होता है। हर वक्त परिवार के नुकीले शब्द बाणों और व्यवहार से आहत अनीता आत्महत्या करने का निश्चय कर लेती है। परंतु बाद में उसके विचार बदल जाते हैं और वह सारी परिस्थितियों से लड़ने के लिए अपने

को तैयार कर लेती है। इस कहानी में परिवार, समाज, लोकापवाद तथा अपने को लोगों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों से कुंठित माता-पिता की मनोदशा बड़ा सुंदर चित्रण किया गया है।

'बाघ' कहानी में धर्मनिरपेक्षता का ढोंग करने वाले अवसरवादी मध्यवर्गीय तत्त्वों का निरूपण किया गया है। इसमें सांप्रदायिक दंगों के कारण उत्पन्न विद्रूपताओं और विवशताओं की कुटिल व्यावहारिकता से लाभ उठाने वाले तत्त्वों का चित्राजी ने बड़ा साहसिक चित्रण किया है। 'सुख' कहानी में सुमंगला घर तथा बच्चों की देखभाल के लिए फूली को नौकरानी रखती है। किंतु थोड़े दिनों में ही वह फूली की खाने-पीने, सोने-जागने की आदतों से वह परेशान हो उठती है। सुमंगला के कुछ भी पूछने पर वह फटाफट जवाब दे देती है। इतना ही नहीं मनपसंद जिंदगी जीते हुए भी फूली का मन इस घर में नहीं लगता। इसलिए वह काम छोड़कर चली जाती है। इसके कारण का पता लगाने पर पता चलता है कि इस घर में कोई मर्द नहीं है; इसलिए फूली का मन इस घर में नहीं लगता। 'जिनावर' कहानी समाज में संबंधों के संवेदनहीन और खोखले होते जाने की प्रक्रिया को निर्ममता से व्यक्त करती है। रोजी-रोटी की मजबूरियों के चलते असलम ताँगे वाला अपनी बूढ़ी और बीमार घोड़ी को ताँगे में जोत देता है। घोड़ी बहुत बूढ़ी है और बीमार भी। असलम यह जानता है कि अब वह ज्यादा जिएगी नहीं। आखिर उसे मरना तो है ही। यह सोचकर वह ताँगे को एक कार से टकरा देता है। कार की चपेट में आकर घोड़ी सड़क पर मर जाती है। फिर वह पुलिस में रिपोर्ट करने का डर दिखाकर कार वाली लड़की से दो हजार रुपये ऐंठ लेता है। परंतु घर पहुँचकर रात में वह बेचैन हो उठता है। वह फूट-फूटकर रोने लगता है और अपनी पत्नी से कहता है कि पैसों के लालच में अपनी सरवरी को मैंने खुद ही मार डाला है।

'एंटिक पीस' कहानी चित्राजी के उपन्यास 'आवाँ' के एक अंश पर आधारित है, जिसे चित्राजी ने पारिवारिक पृष्ठभूमि और भावनात्मक धरातल की कहानी का रूप प्रदान किया है। 'स्टेपनी' कहानी शहरी जीवन की आपा-धापी और नौकरी-पेशा महिलाओं की मजबूरियों का, खाली समय में होने वाली पड़ोसिनों की बातों का और दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप वाली प्रवृत्तियों का बहुत दिलचस्प चित्रण इस कहानी में हुआ है। 'अढ़ाई गज की ओढ़नी' में हमारे समाज की विकृतियों एवं विडंबनाओं की झलक दिखाई देती है। सोसाइटियों में केबल के प्रभाव से बालकों में यौन-क्रिया के प्रति अस्वाभाविक ललक पर लेखिका का ध्यान गया है। आज हमारे संपूर्ण जीवन पर टी. वी. का जो भयंकर प्रभाव पड़ रहा है, उसे बच्चों की एक पिकनिक द्वारा अत्यंत मार्मिक रूप में दिखाया गया है। इन कहानियों के अलावा इस संग्रह में राक्षम, गरीब की माँ, रिश्ता, व्यावहारिकता, रक्षक-भक्षक, ऐब, पत्नी, मानदंड, पहचान जैसी लघुकथाएँ भी हैं।

६. लपटें :

इस संग्रह में सात कहानियाँ और चार लघुकथाएँ संकलित हैं। इस संग्रह की कहानियों में जहाँ एक ओर मध्यवर्गीय नारी अपने अस्तित्व और स्वाभिमान की रक्षा के लिए पुरुष प्रधान समाज द्वारा किए अवमूल्यन से टकरा रही है, वहीं चारों ओर फैले अन्याय, शोषण, अत्याचार, अमानवीयता आदि का भी खुला विरोध करती है। इस संग्रह की पहली कहानी 'गेंद' वृद्धाश्रम में रहकर अपनी जीवन बिता रहे वृद्ध पर केंद्रित है। नौकरी से रिटायर्ड सचदेवा का पुत्र विनय इंग्लैंड चला गया है। वहीं उसने शादी कर ली है। पिता के अंतिम वर्ष ठीक से बीत सकें, इसके लिए उसने उनकी व्यवस्था वृद्धाश्रम में कर दी है। शुरू में तो वह कुछ पैसे भेजता रहा; परंतु धीरे-

धीरे वह सिलसिला खत्म होता चला गया। कहानी में सचदेवा की व्यथा आर्थिक अभाव से ज्यादा मानसिक तथा भावनात्मक साहचर्य के अभाव की दिखाई गई है। इस अभाव की पूर्ति वे एक ऐसे बालक के साहचर्य में करते हैं, जिसके माँ-बाप के पास उसकी तरफ ध्यान देने का समय नहीं है। 'नीले चौखाने वाला कंबल' एक ऐसी औरत की कहानी है, जो विधवा हो चुकी है। उसके जीवन का एकमात्र आधार उसका पुत्र भी असमय में काल का ग्रास बन जाता है। जीवन से हर तरह से निराश हो चुकी वह अधेड़ औरत अपना सब कुछ दान करके तीर्थ-यात्रा पर जाने का निश्चय करती है। यात्रा के लिए प्रस्थान करने के पूर्व की अंतिम रात में दान के लिए मँगाए गए कंबलों में एक कंबल नीले चौखाने वाले कंबल को देखकर अपने अतीत की उन बाल-स्मृतियों में डूब जाती है, जहाँ वैसे ही कंबल के ओढ़ने की हार्दिक इच्छा के बावजूद हासिल न कर सकी थी।

'नतीजा' पूर्वी दी नामक एक ऐसी औरत के संघर्ष की कहानी है, जो वेश्याओं की बच्चों को पढ़ा-लिखाकर मानव-निर्मित नरक से बाहर निकालने का बीड़ा उठाती है। परंतु इसका नतीजा क्या निकलता है कि जहाँ आम लोग इन बच्चों को आम बच्चों के साथ देखना पसंद नहीं करते, वहीं ये बच्चियाँ भी अपने परिवेश को भूलकर कुछ अच्छा नहीं कर पातीं। इससे पूरबी दी बार-बार हताश होती हैं और बार-बार अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने की हिम्मत जुटाती हैं। 'एक काली एक सफेद' नामक कहानी में स्त्री का एक नया ही चेहरा सामने आता है। यह एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो स्वभाव से बहुत जिद्दी, क्रूर, झूठी, पाखंडी और कुछ हद तक आत्महीनता का शिकार है। वह सीधे-सादे पति पर हर समय हावी होकर उसे जलील करती रहती है। चित्राजी ने इस कहानी में बिना किसी पूर्वग्रह के इस सत्य को चित्रित किया है कि सारा पुरुष

समाज ही स्त्री का विरोधी नहीं होता और न ही हिंसक। कभी-कभी स्त्रियों की हिंसा, कठोरता और उनका व्यवहार पुरुषों को भी पीछे छोड़ देता है। स्त्री का क्रूरता भरा हृदय, संवेदनहीन व्यवहार अनायास ही संबंधों को नारकीय बना देता है, जिसकी सजा बच्चे भुगतते हैं।

'लपटें' कहानी प्रतीकात्मक रूप में भयावह विद्रूपताओं को सामने रखती है। आग की लपटें जितनी भयावह होती हैं, उससे ज्यादा भयावह इंसान के भीतर स्वार्थ की लपटें होती हैं। चुनाव के समय नेताओं का जो चेहरा होता है, चुनाव जीतने के बाद वह चेहरा बदल जाता है। वे खुद ही दंगे करवाते हैं, आगजनी करवाते हैं और खुद ही जनता का सबसे बड़ा हमदर्द भी बनते हैं। 'बलि' कहानी में अंधविश्वासी सामंतवाद स्वार्थ में अंधा होकर किस हद तक नृशंस, क्रूर और अमानवीय हो सकता है, जो अपनी शान के लिए एक किशोर को मौत के घाट उतारने में जरा भी नहीं हिचकिचाता। अपनी बेटी की मनोनुकूल शादी कराने के लिए उतावले बने ठाकुर साहब को जब यह पता चलता है कि उनकी बेटी की कुंडली में विधवा योग है, तो उसकी काट के लिए वे अपनी रैयत के एक बच्चे को अच्छा पैसा देकर नौकर रख लेते हैं। फिर चुपके से उस लड़के के साथ अपनी बेटी की शादी करा देते हैं और उसके बाद उसकी हत्या भी करा देते हैं; ताकि वे अपनी बेटी की शादी निर्विघ्न करा सकें और वह सुहागिन रह सके।

'जब तक विमलाएँ हैं' में घरों में काम करने वाली विमला नामक एक साहसी, संघर्षशील तथा दृढ़ मनोबल वाली नारी की कथा है, जो बलात्कार की शिकार अपनी बेटी को न्याय दिलाने के लिए संघर्ष करती है और अपराधी को पुलिस के हवाले करके ही दम लेती है। इस कार्य में उसका पति भी साथ नहीं देता, बल्कि उसे वह

मारता-पीटता भी है। फिर भी वह नहीं मानती। लेखिका को आशा बँधती है कि जब तक विमला जैसा स्त्रियाँ हैं, तब तक अन्याय, अत्याचार, शोषण तथा असत्य के खिलाफ संघर्ष करते हुए जीने की उत्कट कामना उन्हें जिंदा रखेगी। यह कहानी जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

७. बयान :

यह संग्रह चित्र मुद्‌गल की लघुकथाओं का संग्रह है। इस संग्रह में कुल १९ लघुकथाएँ शामिल हैं। इनमें से अधिकांश कथाएँ 'जिनावर' तथा 'लपटें' संग्रहों में संकलित हैं। 'बयान' लघुकथा में दंगा के बाद शरणार्थी कैंपों में पुलिस द्वारा शरणार्थियों से लिए जाने वाले बयान का वर्णन है। पुलिस वाले एक स्त्री की बेटी पर हुए अत्याचार की कहानी चटखारें लेते हुए लिखते हैं। 'आतंकवाद' कविता की शक्ल में लिखी गई लघुकथा है, जिसमें लेखिका ने कहना है कि सुबह जब भी अखबार आँखों के सामने फैलाती हूँ, शब्द-शब्द में अपनी कोख को कत्ल होता हुआ पाती हूँ। 'गणित' लघुकथा में कोढ़ग्रस्त त्रिवेणी की कथा है। डॉक्टर उसके पति को सलाह देता है कि वह अपनी पत्नी को 'शारदा कुष्ट निवारण आश्रम' में दाखिल कर दे, जहाँ बिना पैसे के उसकी पत्नी का इलाज होगा और वह बिल्कुल ठीक हो जाएगी। परंतु उसके पति को अपनी पत्नी के ठीक होने में कोई रुचि नहीं है। वह तो इस बीमारी का लाभ लेकर अपनी पत्नी से भीख मँगवाना चाहता है। इसलिए वह उसे कुष्ट निवारण केंद्र में भेजना नहीं चाहता। 'गली' लघुकथा में गजरा बेचने वाला एक लड़का एक लेखक दंपति से गजरा लेने का आग्रह करता है। लेखक उसके आग्रह से चिढ़कर कहता है कि वह गजरा यहाँ बेचने के बजाय कोठी वाली गली में बेचे, वहाँ तुम्हारे सभी गजरे बिक जाएँगे। 'शहर' नामक लघुकथा में शहर से आए लँगड़े द्वारा देहात से आए भिखारियों

को ठगने की घटना वर्णन है।

'सेवा' लघुकथा में विदेश विभाग का एक अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारी की पदोन्नति के बदले अपने एक रिश्तेदार की आँखों का इलाज करवाता है और फिर अपने रिश्तेदार से विदेशी नस्ल के दो कुत्ते भेंट के रूप में लेकर अपना रुपया वसूल करता है। 'बाजार' लघुकथा में डॉक्टरी पेश में दूसरे पेशों की तरह विज्ञापन के पीछे पागलपन की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। 'सेवक' लघुकथा नेपाल के राजपरिवार में हुई हत्या की घटना को आधार बनाकर लिखी गई है। 'नसीहत' लघुकथा में भीख माँगने वाले एक बच्चे को मेहनत और ईमानदारी से काम करने की नसीहत देती है और बच्चे के कहने पर उसे काम देने के लिए भी तैयार हो जाती है; परंतु उस बच्चे का पूर्व इतिहास जान लेने के बाद उसे पाँच रुपया देकर अपना पीछा छुड़ाती है। 'मर्द' लघुकथा में एक ऐसे मर्द की कथा है, जो खुद अपना पुरुषत्व खो बैठा है, परंतु अपनी पत्नी के चरित्र पर संदेह करता है। 'भूखे-नंगे' लघुकथा में एक ऐसी संस्था का वर्णन है, जो भूखे-नंगों को लोइयाँ बाँटना चाहती है; परंतु उसे सर्वत्र अपनी गरीबी से संघर्ष करने वाले लोग ही मिलते हैं; जबकि उस संस्था को तो असहाय-लाचार लोगों की जरूरत है। 'दूध' लघुकथा में एक माँ द्वारा अपने बेटे-बेटी के बीच भेदभाव करने की समस्या का वर्णन है। वह सिर्फ बेटे को दूध पीने के लिए देती है, बेटी को नहीं देती। 'धर्म' सांप्रदायिक भेदभाव को चित्रित करने वाली लघुकथा है। इसमें एक ऐसी मुसलमान महिला का वर्णन है, जो काम की खातिर अपना नाम बदल लेती है।

२.३. उपलब्धियाँ[३] :

१. चित्रा मुद्गल ने विद्यार्थी जीवन से ही जन आंदोलनों में हिस्सा लेना शुरू कर

दिया था। सामाजिक न्याय की पहली लड़ाई वे उन 'बाइयों' के अधिकारों के लिए लड़ीं, जो मुंबई की झोपड़पट्टियों में रहकर बड़े घरों में बरतन माँजने और झाड़ू-पोंछा का काम करती थीं। वे सन् १९६५ से १९७२ तक गरीब, पीड़ित और शोषित महिलाओं के हितों की रक्षा करने वाली संस्था 'जागरण' की सचिव रहीं। इसके अलावा प्रतिष्ठित और प्रतिबद्ध मजदूर यूनियन 'कामगार आघारी' की भी सक्रिय कार्यकर्ता रहीं।

२. सन् १९७९ से १९८३ तक वे महिलाओं को स्वावलंबन का पाठ पढ़ाने वाली संस्था 'स्याधार' की भी सक्रिय कार्यकर्ता रहीं।

३. सन् १९७८ से १९९९ तक वे फिल्म सेंसर बोर्ड की मानद सदस्य रहीं।

४. 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की प्रतिष्ठित फिल्म पत्रिका 'माधुरी' की लगातार तीन वर्षों तक आमुख लेखिका रहीं।

५. छठे, सातवें और आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन की 'सम्मान समिति' एवं 'शैक्षिक समिति' का सदस्य रहीं।

६. सन् २००५ से २००८ तक प्रसार भारती की महत्त्वाकांक्षी योजना (साहित्य, कला, संस्कृति के उत्थान हेतु) 'इंडियन क्लासिक' की चेयरपर्सन रहीं।

७. राष्ट्रीय एकता एवं सद्‌भावना के लिए सन् १९८६ का प्रज्ञा सम्मान।

८. वर्ष १९८६-८७ के लिए कहानी संकलन 'इस हमाम में' को हिंदी अकादमी का 'साहित्यिक कृति' पुरस्कार।

९. वर्ष १९८६-८७ में ही बालकथा संकलन 'जंगल का राजा' के लिए हिंदी अकादमी का बाल साहित्य पुरस्कार।

१०. 'ग्यारह लंबी कहानियाँ' के लिए वर्ष १९८७ में बिहार राजभाषा का 'राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरस्कार।'

११. उपन्यास 'एक जमीन अपनी' पर ग्रामीण संगठन, मुंबई द्वारा सन् १९९४ में 'फणीश्वरनाथ रेणु' साहित्य पुरस्कार।

१२. वर्ष १९९५ में हिंदी अकादमी की ओर से 'साहित्यकार सम्मान'।

१३. बहुचर्चित उपन्यास 'आवाँ' पर सहस्राब्दी का पहला 'इंदु शर्मा कथा सम्मान' (यू के)।

१४. 'आवाँ' उपन्यास पर हिंदी अकादमी, दिल्ली की ओर से वर्ष २००० का 'साहित्यिक कृति सम्मान'।

१५. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान की ओर से वर्ष २००० का 'साहित्य भूषण सम्मान'।

१६. उपन्यास 'आवाँ' पर के. के. बिड़ला फाउंडेशन का वर्ष २००३ का 'व्यास सम्मान'।

१७. 'गिलिगडु' उपन्यास पर मध्य प्रदेश शासन द्वारा २००५-०६ का 'चक्रधर सम्मान'।

संदर्भ :

१. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन : डॉ. गोरक्ष थोरात, पृ. १४।

२. आवाँ विमर्श : संपा. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. २७६-७७।

३. आवाँ विमर्श : संपा. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. २८१-८२।

४. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य युग-चिंतन : डॉ. अर्चना मिश्रा, पृ. १३।

५. एक जमीन अपनी : चित्रा मुद्गल, पृ. ६।

६. एक जमीन अपनी, पृ. १७७।

७. आवाँ विमर्श : संपा. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. ११।

८. गिलिगडु : चित्रा मुद्गल, पृ. ३४।

अध्याय-३

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी महिला कथाकारों का संक्षिप्त परिचय

अध्याय-३

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी महिला कथाकारों का संक्षिप्त परिचय

हिंदी कथा साहित्य में मुंशी प्रेमचंद को केंद्रीय कथाकार मानकर, हिंदी कथा साहित्य की विकास-यात्रा को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है : प्रेमचंदपूर्व युग, प्रेमचंद युग तथा प्रेमचंदोत्तर युग। इसी तरह एक भिन्न संदर्भ का आधार लेते हुए हिंदी कथा साहित्य के विकास को देश की स्वतंत्रता की घटना को केंद्र में रखकर दो वर्गों में बाँटा जाता है : स्वतंत्रतापूर्व युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग। इस वर्गीकरण के पीछे स्वतंत्रता पूर्व की राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियाँ और स्वतंत्रता के पश्चात् बदली हुई राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियाँ काम करती हैं। स्वतंत्रता से पूर्व देश का राजनीतिक-सामाजिक माहौल बिल्कुल भिन्न था। उस समय देश के सामने एक ही मुद्दा प्रधान था - देश की आजादी। दूसरे सभी मुद्दे या समस्याएँ गौण थीं। किंतु आजादी मिल जाने के बाद जब अपनी खुद की सरकार आई, तब देश की जनता की अपेक्षाएँ बदल गईं। आजादी के पूर्व जो समस्याएँ पृष्ठभूमि में थीं, वे आजादी के बाद सामने आ गईं। यह भिन्नता साहित्य में परिलक्षित होती है। इसी लिए स्वतंत्रता की घटना को केंद्र में रखकर हिंदी कथा साहित्य को स्वतंत्रता पूर्व युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग के नाम से जाना जाता है।

हिंदी कथा साहित्य में, जहाँ तक महिला रचनाकारों की भागीदारी का सवाल है, तो स्वतंत्रतापूर्व युग में महिला रचनाकारों की भागीदारी बहुत कम थी। उसका प्रमुख कारण महिलाओं में शिक्षा का अभाव माना जा सकता है। लेकिन स्वतंत्रता

के पश्चात् ज्यों-ज्यों महिलाएँ शिक्षित होती गईं, त्यों-त्यों, जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति सहित्य-सर्जन के क्षेत्र में भी महिलाओं की भागीदारी रफ्तार पकड़ती गई ।

स्वतंत्रतापूर्व के महिला कथाकारों ने ज्यादातर घरेलू नारी के जीवन की त्रासदी तथा उसकी यातना का चित्रण किया है । उनके उपन्यासों तथा कहानियों में अधिकांशतः सुधारोन्मुख दृष्टि दिखाई पड़ती है । परंतु स्वातंत्र्योत्तर महिला कथाकारों ने अपने अनुभव-क्षेत्र को विस्तार दिया । उनके कथा साहित्य में समाज की दोहरी नैतिकता का पर्दाफाश किया गया है । घर से बाहर निकलकर कार्य करने वाली महिलाओं की दोहरी भूमिका का यथार्थ चित्रण किया गया है । स्त्री-पुरुष के संबंधों की सूक्ष्मताओं को नए रूपों में प्रस्तुत किया गया है । ज्यादातर लेखिकाओं द्वारा काम-संबंधों को जैविक धरातल पर बड़े खुलेपन से प्रस्तुत किया गया है ।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन महिला कथाकारों ने स्त्री-जीवन के यथार्थ के साथ-साथ समाज के अन्य पहलुओं को भी अपने लेखन में स्थान दिया है । अकेलापन, संत्रास, कुंठा, अनमेल विवाह, तलाक, नैतिकता की समस्या, अहं की टटकराहट, दलितों की समस्याएँ, संयुक्त परिवार की समस्याएँ, खंडित परिवार की समस्याएँ, पश्चिम का अंधानुकरण आदि ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर समकालीन महिला कथाकारों ने जमकर लिखा है ।

पुरुषप्रधान समाज में नारी सदियों से दोयम दर्जे का नागरिक बनकर जीती आई है और बहुत हद तक आज भी जी रही है । सारे मूल्य, मान्यताएँ, परंपराएँ, संबंध और रिश्ते-नाते स्त्री चुपचाप सहती रही है । स्वातंत्र्योत्तर महिला रचनाकारों ने पुरुष सत्तात्मक समाज-व्यवस्था की तमाम विसंगतियों और विडंबनाओं को बड़ी बारीकी से छिन्न-भिन्न किया है और अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित की है । दाम्पत्य जीवन

में पति के व्यक्तित्व का विकास होता रहता है, जबकि नारी का व्यक्तित्व अधिकांशतः कुंठित हो जाता है। परंतु स्वातंत्र्योत्तर महिला कथाकारों की रचनाओं में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने की चाह मुखरता से व्यक्त हुई है। स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए उसे आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनना जरूरी था। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के लिए घर की देहरी से बाहर निकलना जरूरी था। इसके परिणामस्वरूप उनके दांपत्य और मातृत्व दोनों पर संकट आया। स्वातंत्र्योत्तर महिला कथाकारों ने कामकाजी महिलाओं की घर के बाहर और घर के भीतर की इस टकराहट को अपनी रचनाओं में बखूबी प्रस्तुत किया है।

इस काल की महिला कथाकारों के विचारों पर पश्चिम की नारीवादी विचारधारा का काफी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस विचारधारा के प्रभाव में आकर हिंदी की बहुत सारी लेखिकाओं ने पुरुषसत्तात्मक समाज के प्रति विद्रोह के नाम पर नारी जीवन में 'अर्थ और सेक्स' को केंद्र में रखकर साहित्य रचने का प्रयास किया। इसको उन्होंने 'बोल्डनेस' का नाम दिया। इन लेखिकाओं ने नारी मन की कसमसाहट, छटपटाहट और यौन-वर्जनाओं को नकारने के साथ-साथ दैहिक और स्वच्छंद काम-संबंधओं को खुली स्वीकृति दी। दांपत्य संबंधों का आंतरिक सूनापन और विवाहपूर्व तथा विवाहेतर यौन-संबंधों का समर्थन किया। आशय यह कि इन्होंने काम-सुख को पूर्णतः जैविक-प्राकृतिक मानते हुए नैतिकता के सारे मानदंडों को नकारकर चलने वाली आधुनिक नारी का चित्रण किया है।

हिंदी की स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख महिला कथाकार :

१. शिवानी :

शिवानी पाँचवें-छठे दशक की प्रमुख लेखिका हैं। चौदह फेरे (१९६२),

कृष्णकली (१९६९), भैरवी (१९६९), मायापुरी (१९७१), विषकन्या (१९७१), करिए छिमा (१९७१), श्मशान चंपा (१९७२), रतिविलाप (१९७२), कैंजा (१९७३), गैंडा (१९७७), माणिक (१९७७), किशुनली (१९७९), कृष्णवेगी (१९८१) और अपराधिनी इनके प्रमुख उपन्यास हैं । इसी तरह लाल हवेली (१९६५) तथा पुष्पहार (१९६९) इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं ।

शिवानी ने युगीन समस्याओं को अपने कथा साहित्य का विषय बनाया है । पारिवारिक विघटन आधुनिक युग की एक जटिल समस्या है । 'माणिक' नामक उपन्यास में उन्होंने पारिवारिक विघटन की समस्या को बहुत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है । स्वातंत्र्योत्तर विविध प्रकार के आयामों वाले उपन्यासों के बीच शिवानी अपने नायिका प्रधान उपन्यासों द्वारा सामान्य पाठक में बहुचर्चित रहीं और नारी-हृदय की भावुकताओं को उभार कर उन्होंने नारी पात्रों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे अविस्मरणीय बन गए हैं ।

'कृष्णकली' कुष्टरोग से पीड़ित माता-पिता की संतान है । उसकी परवरिश अन्यत्र होती है । परंतु बाद में जब उसे जन्म का रहस्य पता चलता है, तो वह हीनग्रंथि का शिकार हो जाती है और अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए वह इधर-उधर भटकती है । इसके लिए वह मॉडलिंग का काम करती है और अंत में केंसर से पीड़ित होकर दम तोड़ती है ।

इसी तरह 'विषकन्या' एक रोचक और मनोरंजक उपन्यास है । इसमें कामिनी और दामिनी दो जुड़वाँ बहनों की कथा कही गई है । कामिनी के साथ विडंबना यह है कि वह जिस चीज की प्रशंसा करती है, वह चीज नष्ट हो जाती है । एक दिन वह दामिनी के पति की प्रशंसा करती है और वह कोबरा के डँसने से मर जाता है । इस

कारण कामिनी को समाज से कटकर जीवन जीना पड़ता है - एकदम एकाकी। यही उसके जीवन की विडंबना है।

'भैरवी' उपन्यास चंदन नामक युवती की व्यथा-कथा है। एक बार वह रेल यात्रा के दौरान हैवान फौजियों से अपनी इज्जत बचाने के लिए चलती गाड़ी से कूद पड़ती है। घायल अवस्था में भैरवानंद नाम के तपस्वी उसे अपने आश्रम में ले जाते हैं। फिर एक साल बाद वह अपने घर जाती है। परंतु उसका पति उसे मरा जानकर दूसरा विवाह कर चुका है। उसका एक बच्चा भी है। यह सब देखने के बाद वह पुनः आश्रम में लौट आती है और अपना नाम चंदन से बदलकर भैरवी रख लेती है।

शिवानी के कथा साहित्य के बारे में डॉ. रामचंद्र तिवारी का मत है : शिवानी मनोरंजक कथा गढ़ने में सिद्धहस्त है। उनके उपन्यासों में रहस्य, रोमांच, भावुकता, स्वच्छंद कल्पना और मनोरंजन का पुट उन्हें पठनीय बनाता है। ... शिवानी के नारी पात्र विद्रोह भी करते हैं और परिस्थितियों से ऊपर उठने की कोशिश भी; किंतु अपने चारित्रिक संघटन में अविश्वनीय प्रतीत होते हैं। शिवानी की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वे अपने उपन्यासों में आधुनिक जीवन के खुरदुरे, जटिल और चुनौती भरे यथार्थ को महत्त्व नहीं देतीं। इसी लिए लोकप्रियता के बावजूद प्रथम श्रेणी की लेखिकाओं में उन्हें स्थान नहीं मिल सका।[१]

२. शशिप्रभा शास्त्री :

शशिप्रभा शास्त्री की कथा कृतियों में मुख्यतः नारी जीवन की पीड़ा और उसके संघर्ष को विविध संदर्भों में उभारा गया है। उन्होंने वर्तमान पीढ़ी के भटकाव, पारिवारिक जीवन के विविध पक्ष और उसमें उभरने वाली समस्याएँ, नारी के आंतरिक और बाह्य तनाव, आत्मनिर्भर होने के लिए उसके द्वारा किए जाने वाले संघर्ष, आर्थिक

निर्भरता के बावजूद परिवार की मर्यादा का अतिक्रमण न कर पाने की उसकी विवशता आदि का बड़ा सजीव चित्र खींचा है ।[३]

अमलतास (१९६८), नावें (१९७४), सीढ़ियाँ (१९७६), परछाइँयों के पीछे (१९७९), क्योंकि (१९८०), कर्करेखा (१९८३), सरसों के बाद (१९८५), ये छोटे महायुद्ध (१९८८), उस एक गलियारे की (१९८९), सागर पार का संसार (१९८९) आदि शशिप्रभा शास्त्री की उल्लेखनीय औपन्यासिक कृतियाँ हैं । एक टुकड़ा शांतिरथ, धुली हुई शाम (१९६९), अनुत्तरित (१९७५), दो कहानियों के बीच (१९७८) तथा जोड़ बाकी (१९८१) उनके कहानी संग्रह हैं ।

शशिप्रभा शास्त्री बदले हुए जीवन-संदर्भ में स्त्री-पुरुष-संबंधों का विश्लेषण करने वाली लेखिका हैं । उनके कथा साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे आज के सामाजिक-पारिवारिक विघटन के बीच भी सामंजस्य के किसी बिंदु की तलाश में विश्वास करती हैं । उनकी एक और विशेषता यह है कि वे कल्पना के आधार पर पाठकों के सामने पूरा यथार्थ रख देती हैं ।

अपने लेखन को शशिप्रभाजी ने जीवन के विभिन्न संदर्भों से जोड़कर बहुआयामी बनाया है । कहीं दाम्पत्य जीवन के दोहरे चेहरे खींचे हैं, तो कहीं पीढ़ियों के बीच के अंतराल से उपजी विविध प्रकार की समस्याएँ हैं और कहीं स्त्री-पुरुष का प्रेम है, जो कभी त्रिकोणी बन जाता है और कभी अपने मूल रूप में वापस आ जाता है ।

'नावें' उपन्यास शादी के पहले किसी युवती के माँ बनने और उससे उत्पन्न विषम स्थितियों और भटकाव की संघर्षपूर्ण कथा-यात्रा है । विपन्न परिवार में कई भाई-बहनों के बीच जन्मी मालती के जीवन में, अपनी एक नासमझी के कारण, आए उतार-चढ़ाव को लेखिका ने बखूबी चित्रित किया है । इस उपन्यास के माध्यम से

शशिप्रभा जी नारी की विवशताओं, उसके समर्पण, मातृत्व और दाम्पत्य जीवन से संबंधित कई प्रश्नों को हमारे सम्मुख रखा है। मालती और उसके माता-पिता के बीच पैदा हुई स्थितियाँ स्वाभाविकता और सचाई से उभरकर सामने आती हैं। गर्भवती बेटी के प्रति माँ का तिरस्कार रिश्तों के खोखलेपन को व्यक्त करता है।

इसी तरह 'क्योंकि' कहानी में शशिप्रभा शास्त्री ने नारी मन की भावनाओं को बड़ी खूबी से पकड़ा है। जेवरों के प्रति सहज आकर्षण बच्चों के प्रति ममत्व, पति की सहयोगिनी बनी रहने वाली और दूसरों के प्रति सहानुभूति रखने वाली नारी का चित्रण इस कहानी में आभा के माध्यम से किया गया है।

३. उषा प्रियंवदा :

हिंदी की महिला रचनाकारों में उषा प्रियंवदा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। समकालीन नारी चेतना का समग्र अंकन करने वाली सशक्त लेखिका के रूप में उषा प्रियंवदा का नाम प्रसिद्ध है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' (१९६१), 'रुकोगी नहीं राधिका' (१९६७), 'शेष यात्रा' (१९८४) तथा 'अंतर्वंशी' उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं। 'जिंदगी और गुलाब के फूल' (१९६१), 'फिर वसंत आया' (१९६१), 'एक कोई दूसरा' (१९६६) तथा 'कितना बड़ा झूठ' (१९७२) उनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं।

'पचपन खंभे लाल दीवारें' उषा प्रियंवदा का पहला उपन्यास है, जिसमें उन्होंने सुषमा नामक एक मध्यवर्गीय नारी को केंद्र में रखकर आधुनिक नारी की मानसिक यंत्रणा का सजीव चित्रण किया है। सुषमा एक कॉलेज में अध्यापक है। उसके पिता पक्षाघात के शिकार हैं। इस नाते परिवार की सारी जिम्मेदारी उसी के कंधों पर आ जाती है। वह अपने माता-पिता, भाई-बहनों के सुख के लिए अपने सुख को तिलांजलि दे देती है। वह अपने बारे में सोच ही नहीं पाती। धीरे-धीरे उसकी शादी की उम्र

निकल जाती है ।

'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका अपने पिता से बहुत प्यार करती है । उसके पिता अठारह वर्ष के एकाकी और विधुर जीवन से त्रस्त होकर राधिका की सहेली से विवाह कर लेते हैं । इस घटना से राधिका को बहुत धक्का लगता है । असहनीय मानसिक द्वंद्व के चलते वह डैन नामक युवक के साथ अमेरिका चली जाती है । परंतु डैन उसे अकेला छोड़ देता है । शिक्षा पूरी करके भारत लौट आती है । प्यार पाने के लिए वह मनीष और अक्षय नामक युवकों के बीच डोलती रहती है । पिता के साथ रहना अस्वीकार कर देती है ।

सांस्कृतिक और सामाजिक घटनाओं के बीच भारतीय नारी की दुविधा को आधार बनाकर यह उपन्यास लिखा गया है । दो संस्कृतियों के प्रभाव के बीच राधिका अपनी दिशा तय नहीं कर पाती । राधिका का अकेलापन स्वेच्छा से अपनाया गया है । उसमें आधुनिकता और अजनबीपन का बोध है ।

उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी किसी समय आलोचकों के मन-मस्तिष्क पर छा गई थी । वह आज भी हिंदी की बेजोड़ कहानी मानी जाती है ।

४. मन्नू भंडारी :

मन्नू भंडारी नई कहानी के दौर की एक समर्थ और सशक्त लेखिका हैं । उनके कथा साहित्य में जीवन की सचाइयों से साथ-साथ मनोविज्ञान की भी गहरी पकड़ दिखाई पड़ती है । उपन्यास के क्षेत्र में वे अपने पुरातन संस्कारों और रूढ़ियों से अपने को सरलता से मोड़ लेती हैं । अपने अनुभवों से उन्होंने आज की नारी की सामाजिक नियति और मानसिकता को बड़ी गहराई से उभारा है ।

'आपका बंटी' (१९७१), 'महाभोज' (१९७९), 'एक इंच मुस्कान' तथा

'स्वामी' मन्नू भंडारी के महत्त्वपूर्ण औपन्यासिक कृतियाँ हैं। पूरे हिंदी साहित्य में 'आपका बंटी' अपने ढंग का अकेला उपन्यास है। बंटी शकुन और अजय की संतान है। शकुन और अजय दांपत्य जीवन के तनावों के चलते संबंध-विच्छेद कर लेते हैं। अजय मीरा के साथ रहने लगता है तथा शकुन एक डॉक्टर से जुड़ जाती है। बंटी को शकुन अपने साथ ले जाती है। माता-पिता तो अपनी-अपनी नई जिंदगी शुरू कर देते हैं और बंटी बेचारा रह जाता है उपेक्षित। वह डॉक्टर को कभी पापा नहीं समझ पाता। उसकी समस्या बेहद जटिल है। वह चिड़चिड़ा और जिद्दी हो जाता है। पूरे उपन्यास की कथा की बुनावट बंटी की समस्याओं को ही केंद्र में रखकर की गई है। अपनी उलझनों से मुक्ति के लिए वह अपने पापा के पास कलकत्ता आता है। वहाँ वह मीरा को अपनी मम्मी नहीं मान पाता।

आज के मध्यवर्गीय समाज में तलाक की समस्या ने अनेक आनुषंगिक समस्याएँ खड़ी कर दी हैं। इनमें सबसे जटिल समस्या है तलाकशुदा दंपति के बच्चों की। बंटी की समस्या के बारे में प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामचंद्र तिवारी लिखते हैं : 'मन्नू भंडारी ने बंटी के मनोविज्ञान का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। कुछ आलोचकों को बंटी की मनोवैज्ञानिकता का अंकन बहुत कुछ किताबी प्रतीत हुआ है। हो सकता है, बंटी की मानसिकता का सूक्ष्म विश्लेषण विश्वसनीयता का अतिक्रमण कर गया हो; किंतु उसकी समस्या, उसका दर्द, उसका अकेलापन, उसका बिखराव क्या हमें झकझोर नहीं देते? [४]

'महाभोज' राजनीतिक उपन्यास है। इसका परिवेश सामाजिक है। बिसेसर नामक पिछड़ी जाति के एक युवक की हत्या हो जाती है। इस हत्या का लाभ पदासीन मुख्यमंत्री 'दा साहब' तथा पदच्युत मुख्यमंत्री 'सुकुल बाबू' दोनों उठाना चाहते हैं।

सामान्य जनता के प्रति सच्ची सहानुभूति किसी में नहीं है । लेखिका ने वर्तमान व्यवस्था की खामियों को खुलकर उजागर किया है ।

मन्नू भंडारी ने बदले हुए परिवेश में संस्कार और आधुनिकता के बीच उलझे हुए नारी-मन के द्वंद्व को बड़ी ईमानदारी से चित्रित किया है । 'मैं हार गई' (१९५७), 'यही सच है' (१९६६), 'एक प्लेट सैलाब' (१९६८), 'तीन निगाहों वाली तस्वीर' (१९६८) तथा 'त्रिशंकु' (१९७८) मन्नू जी के प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं ।

५. ममता कालिया :

स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख महिला कथाकारों में ममता कालिया का नाम विशेष उल्लेखलीय है । उनका लेखन विशेष रूप से भारतीय नारी के परिवेश के इर्द-गिर्द घूमता है । उन्होंने पारिवारिक जीवन परिधि से बाहर व्यापक सामाजिक संदर्भ को भी महत्त्व दिया है । 'बेघर' (१९७१), 'नरक दर नरक' (१९७५) 'प्रेम कहानी' (१९८०), 'साथी', 'लड़कियाँ' आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं ।

'बेघर' उपन्यास में उन्होंने संस्कारबद्ध पुरुष मन पर गहरी चोट की है । यह उपन्यास निम्न मध्यवर्ग की कहानी है । इस उपन्यास का केंद्रीय तत्त्व है द्वंद्व । यह द्वंद्व पात्रों के भीतर, दो पात्रों के बीच, आधुनिकता और संस्कारबद्धता के बीच तथा विभिन्न मानसिक दशाओं के बीच चलता है ।

इस उपन्यास में परमजीत के माध्यम से लेखिका ने बंबई में रहने वाले एक सुसंस्कृत युवक के तनाव और यातना को चित्रित किया है । मन में उठी शंका की वजह से परमजीत का पूरा जीवन बरबाद हो जाता है । किसी का पति और किसी का पिता होकर भी वह अपनी पहचान खो देता है ।

'नरक दर नरक' में आज की पूरी सामाजिक व्यवस्था को नरक के रूप में

चित्रित किया गया है, जिसके चलते प्रतिभासंपन्न, परिश्रमी और ईमानदार शिक्षित युवकों को आर्थिक असुरक्षा का दबाव झेलते हुए इधर-उधर भटकना पड़ता है और दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। जबकि समझौतावादियों और चापलूसों को दिन दूनी रात चौगुनी सफलता मिलती रहती है।

इसी तरह 'प्रेम कहानी' में अपनी इच्छा से किए गए विवाह और सामाजिक स्वीकृति से किए गए विवाह को समानांतर रखकर दोनों की विडंबनाओं को उजागर किया गया है।

'छुटकारा' (१९६९), 'सीट नं. ६' (१९७८), 'एक अदद औरत' (१९७९), 'उसका यौवन', 'प्रतिदिन' (१९८३) आदि उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं। ममताजी ने प्रतिदिन के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं को केंद्र में रखकर नारी के समग्र जीवन-संघर्ष को चित्रित किया है।

६. कृष्णा सोबती :

साठोत्तरी महिला कथाकारों में कृष्णा सोबती का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे आधुनिक बोध का चित्रण करने वाली लेखिका हैं। इनके उपन्यासों में काम का खुला चित्रण देखने को मिलता है। पारिवारिक जीवन के यथार्थ परिवेश की अछूती गुत्थियों का अनूठा चित्रण इनके कथा साहित्य में मिलता है। नारी के प्रेम, काम-वासना और रतिभाव के व्यक्त-अव्यक्त रूप प्रस्तुत करने में कृष्णा सोबती की कोई सानी नहीं। उन्होंने अपने उपन्यासों द्वारा श्लील-अश्लील जैसे नैतिक-अनैतिक प्रश्न उठाए हैं। इसी लिए उनके पात्र अत्यधिक निडर हैं।

कृष्णा सोबती ने 'डार से बिछुरी' (१९६०), 'मित्रो मरजानी' (१९६७), 'तिन पहाड़' (१९६८), 'सूरजमुखी अँधेरे के' (१९७२) जैसे उपन्यासों में नारी जीवन

की सूक्ष्म मानसिक ग्रंथियों का चित्रण किया है । 'तिन पहाड़' की जया अत्यंत अंर्तमुख, आत्मपीड़न से ग्रस्त, भावुक मनोवैज्ञानिक पात्र है ।

'डार से बिछुरी' की नायिका पाशो पुराने संस्कारों से जकड़े अपने परिवेश से कट जाती है । उसकी माँ का चरित्र शंकाओं के घेरे में है, जिसका दुष्परिणाम उसे भोगना पड़ता है । उसकी जिंदगी भटकाव की जिंदगी है । वह अने पुरुषों की वासना शिकार बनती जाती है । अंत में वह एक परिवार से जुड़ती है; परंतु वहाँ भी उसका मान-सम्मान छिन जाता है ।

'मित्रो मरजानी' लघु उपन्यास है । कुछ लोग इसे लंबी कहानी भी कहते हैं । इसकी नायिका एक सभ्य समाज की बहू है । परंतु उसे वहाँ के रीति-रिवाज रास नहीं आते । उसका उन्मुक्त जीवन परंपरागत सीमाओं में बँध नहीं पाता । वह हाड़-मांस की बनी अपनी उद्दाम वासनाओं के साथ जीने वाली नारी है ।

'सूरजमुखी अँधेरे के' के द्वारा कृष्णा सोबती ने सेक्स और संभोग को अँधेरे बंद कमरों से बाहर निकालने में अपनी पहचान बनाई है । शैशवकाल में ही बलात्कार का शिकार बनी इस उपन्यास की नायिका अपने को अनेक समस्याओं से घिरी पाती है ।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों के बारे में डॉ. शीलप्रभा वर्मा लिखती हैं : 'कृष्णा जी की कथा-यात्रा से गुजरते हुए ऐसा लगता है कि अलग-अलग समय में उन्होंने लग-अलग रचनाएँ नहीं कीं, एक ही रचना के विभिन्न अध्याय लिखे हैं । अपने जीवन को सुलझाते-उलझाते, बढ़ते-बोलते, उनके पात्रों के लिए सामाजिक मान्यताएँ, श्लील-अश्लील, नैतिक-अनैतिक कहीं कुछ रह ही नहीं गया । उनके पात्रों को न जीविका की चिंता है, न समय की, न समाज की ।'[५]

७. मालती जोशी :

मालती जोशी के कथा साहित्य में नारी जीवन के आंतरिक और बाह्य जगत का चित्रण बखूबी हुआ है। विशेष रूप से मध्यवर्गीय परिवार की हर समस्या पर उन्होंने कलम चलाई है। नारी जीवन की समस्या को लेकर उन्होंने बहुत सारे उपन्यास एवं कहानियाँ लिखी हैं। 'निष्कासन' (१९७८), 'गोपनीय' (१९७९), 'ऋणानुबंध' (१९७९), 'पटाक्षेप' (१९८२), 'सहचारिणी' (१९८५), 'राग-विराग' (१९८७), 'पाषाणयुग' (१९९७), 'समर्पण का सुख' (१९९७), 'विश्वास गाथा' (१९९८) आदि उनके उपन्यास हैं, जो नारी जीवन की सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक समस्याओं को मुखरित करते हैं। 'आखिरी शर्त' (१९९७), 'एक घर हो सपनों का' (१९९७), 'मध्यांतर' (१९९८), 'अंतिम संक्षेप' (१९९८), 'बोल री कठपुतली' (१९९८) आदि उनके कहानी-संग्रह हैं, जिनमें पारिवारिक तथा सामाजिक संबंधों के बीच उन्होंने नारी जीवन के तनाव तथा कुंठाओं को अभिव्यक्ति दी है।

८. मेहरुन्निसा परवेज :

मेहरुन्निसा परवेज के समक्ष नारी जीवन का व्यापक अनुभव है। उन्होंने आदिवासी, पिछड़ी, अशिक्षित औरतों को अपनी कथा का आधार बनाया है। 'आँखों की दहलीज' (१९६९), 'उसका घर' (१९७२), 'कोरजा' (१९७७), 'अकेला पलाश' (१९८१) उनके प्रमुख उपन्यास हैं। प्रेम, विवाह, तलाक, पतियों का निकम्मापन, अवैध संबंध, सास का अत्याचार, सौतेली माँ का अत्याचार, परित्यक्ता नारी का अकेलापन, जीने के लिए अवांछित स्थितियों का स्वीकार तथा अन्य अनेक संदर्भों में नारी जीवन की विवशता के अत्यंत मार्मिक चित्र मेहरुन्निसा परवेज ने अंकित किए हैं।

मेहरुन्निसा परवेज निम्नमध्यवर्ग के दुख-दर्द को शुद्ध मानवीय धरातल पर

चित्रित करने वाली लोकप्रिय कहानीकार हैं। 'आदम और हव्वा' (१९७२), 'टहनियों पर धूप' (१९७७), 'फालगुनी' (१९७८), 'गलत पुरुष' (१९७८), 'अंतिम चढ़ाई' (१९८२) आदि उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं।

मेहरुन्निसा की कहानियों में आदिम जातियों के अंधविश्वास, महानगर की खोलियों में रहने वाली स्त्रियों का दुख-दर्द, आर्थिक तंगी में जीवन बिताते नौकरी-पेशा लोगों का मानसिक तनाव, बेमेल विवाह की त्रासदी, महानगरीय मध्यवर्गीय नारियों की घुटन, रिक्तता और द्वंद्व, तलाकशुदा औरतों की त्रासदी आदि अनेक मनःस्थितियों का चित्रण उनकी कहानियों में देखा सकता है।

उनके उपन्यासों में मुस्लिम परिवेश, रहन-सहन, आचार-विचारों का बेजोड़ प्रतिबिंब मिलता है। मेहरुन्निसा का साहित्य जीवन की समग्रता को प्रस्तुत करता है। सामाजिक व्यवस्था के अभिशाप के बीच उनके पात्र अपनी मुक्ति का रास्ता ढूँढ़ते हैं। अन्य लेखिकाओं की भाँति मेहरुन्निसा सामाजिक व्यवस्था और परंपरागत रूढ़ियों से टकराती नहीं; बल्कि उनसे बाहर आने की कोई राह ढूँढ़ निकालती है।

९. मृदुला गर्ग :

मृदुला गर्ग के कथा साहित्य की विशेषता है कि नारी के प्रेम और वासनात्मक जीवन पर उन्होंने अपना एक विशेष दृष्टिकोण अख्तियार किया है। आधुनिक लेखिकाओं ने प्रेम और विवाह के स्वरूप को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा है और उसे समस्याओं के साथ गहरा रूप प्रदान किया है।

मृदुला गर्ग के पाँच उपन्यास प्रकाशित हुए हैं : 'उसके हिस्से की धूप' (१९७५), 'वंशज' (१९७६), 'चित्तकोबरा' (१९७९), 'अनित्य' (१९८०) और 'मैं और मैं' (१९८४)। सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं। इसी तरह पाँच कहानी संग्रह भी प्रकाशित

हैं : 'कितनी कैदें' (१९७५), 'टुकड़ा टुकड़ा आदमी' (१९७७), 'डेफोडिल जल रहे हैं' (१९७८), 'ग्लेशियर से' (१९८०) और 'उफ सैम' (१९८६)।

मृदुला गर्ग ने अभिजात वर्गीय नारी के स्वातंत्र्य, प्रेम विवाह, वैवाहिक एकरसता, ऊब, ताजगी की तलाश में परपुरुष की ओर झुकाव तथा प्रेम की अनुभूति के सूक्ष्म विश्लेषण के माध्यम से मानव जीवन की सार्थकता की तलाश द्वारा अपनी पहचान बनाई है।

'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा अपने असंतोष युक्त स्वभाव के कारण जीवन की राह तय करने में अपने आपको असमर्थ पाती है। पुरुष आकर्षण और वासना को सच्चे प्रेम से अधिक महत्त्व देने वाली मनीषा पुरुष को समय बिताने का साधन समझती है - जीवन साथी नहीं। 'चित्तकोबरा' की मनु दो परस्पर विरोधी तत्त्वों में जी रही है। वह पति-प्रेम के लिए लालायित तो है; परंतु परपुरुष के साथ शारीरिक संबंध को भी हेय नहीं समझती।

'अनित्य' उपन्यास में मृदुला जी ने स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक अवसरवादिता का बखूबी चित्रण किया है। भगतसिंह के क्रांतिकारी आंदोलन और गांधीजी के अहिंसक आंदोलन का तुलनात्मक चित्रण हुआ है। कल के स्वतंत्रता सेनानी और क्रांतिकारी आज सुविधाभोगी बन गए।

'मैं और मैं' में मृदुला जी ने एक ऐसी स्त्री की अस्मिता की खोज की है, जो कथा लेखिका भी है। कथा लेखिका माधवी अपने पति राकेश और दो पुत्रों के साथ सुविधा और शांति का जीवन व्यतीत करती है। एक दिन उसके जीवन में एक दूसरे लेखक कौशल का प्रवेश होता है। कौशल कुरूप और कुंठित है; किंतु प्रतिभाशाली है। वह बड़ी सूझ-बूझ के साथ माधवी की रचनाओं की तारीफ करता है। इस तारीफ

के परिणामस्वरूप कौशल के साथ माधवी का बहुत गहरा रिश्ता बन जाता है। परंतु आगे चलकर माधवी भी कौशल के अस्त्र (झूठी प्रशंसा) का उपयोग कौशल पर करने लगती है।

अपनी सभी रचनाओं में मृदुला जी ने विवाह संस्था की अप्रासंगिकता तथा अर्थहीनता का विशेष ध्यान रखा है।

१०. दीप्ति खंडेलवाल :

दीप्ति खंडेलवाल अपने को दांपत्य संबंधों तक ही सीमित रखने वाली लेखिका हैं। डॉ. रामचंद्र तिवारी के अनुसार 'आज के बदले हुए परिवेश में स्त्री-पुरुष-संबंधों में जो जटिलता आई है, उसका मनोविश्लेषण करने में दीप्ति खंडेलवाल सिद्धहस्त हैं।'[७] 'प्रिया' (१९७६), 'कोहरे' (१९७७), 'प्रतिध्वनियाँ' (१९७८) उनके मुख्य उपन्यास हैं। इसी तरह 'कड़वे सच' (१९७६), 'धूप के अहसास' (१९७६), 'वह तीसरा' (१९७६), 'सलीब पर' (१९७७), 'दो पल की छाँह' (१९७८), 'औरत और बातें' (१९८०) उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

दीप्ति जी ने अपने कथा साहित्य में परंपरावादी सामाजिक मानसिकता पर बार-बार प्रहार किया है। उनकी कथा-भूमि स्त्री-पुरुष संबंधों तक ही सीमित है। किंतु इस सीमित दायरे में उन्होंने नारी मन के जितने रूपों और छवियों को उकेरा है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। निःसंदेह वे नारी के प्रति अत्यंत संवेदनशील हैं। उसके प्रति उनकी गहरी सहानुभूति है। किंतु, उनकी कठिनाई यह है कि वे इसके लिए पुरुष की कठोरता, क्रूरता और जड़ता को जिम्मेदार ठहराती हैं; वे उस पीड़ा के मूल में सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियों और पूँजीवादी व्यवस्था को नहीं देख पातीं।

'प्रतिध्वनियाँ' दीप्ति खंडेलवाल का बहुचर्चित उपन्यास है। इसमें पाँच नारी

पात्रों द्वारा 'नारी-शोषण' के यथार्थ को उभारा गया है। गंगा पति के अत्याचार से त्रस्त है। शुभा असफल प्रेम से कुंठित है। अर्चना पति और प्रेमी के मध्य झूलती है। जया बलात्कार का शिकार बनती है। वेश्या मोती की समस्या सच्चे प्रेम का अभाव है। इन पाँच नारियों का शोषण एक ही पुरुष नील करता है।

११. मृणाल पांडेय :

आठवें दशक में कथाकार के रूप में उभर कर आईं लेखिकाओं में मृणाल पांडेय का महत्त्वपूर्ण नाम है। 'विरुद्ध', 'पटरंगपुर का पुराण' उनके महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। 'दरम्यान' (१९७७), 'शब्दवेधी' (१९८०), 'एक नीच ट्रेजेडी' (१९८१), 'एक स्त्री का विदागीत' (१९८३) उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं।

मृणाल जी ने नारी स्वातंत्र्य को अनेक बिंदुओं और कोणों से उठाया है। उनका मानना है कि अनादिकाल से प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था के दौर में नारी परतंत्र रही है। उसके बंदी जीवन को ही अनेक प्रकार से महिमामंडित किया गया है। आज भी वह इस स्थिति से पूरी तरह से उबर नहीं पाई है। धर्म, नैतिकता, परंपरा, विश्वास आदि को लोकाचार तथा बौद्धिकता-तार्किकता आदि धरातलों पर कसने का प्रयास उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है।

१२. मंजुल भगत :

मंजुल भगत समकालीन कथा लेखिका हैं। 'टूटा हुआ इंद्रधनुष' (१९७६), 'लेडीज क्लब' (१९७६), 'अनारो' (१९७७), 'बेगाने घर में' (१९७८), 'खातुल' (१९८३), 'तिरछी बौछार' (१९८४) उनके प्रमुख उपन्यास हैं।

मध्यवर्ग के नारी जीवन की मानसिकता को चित्रित करने में मंजुल भगत को विशेष सफलता मिली है। 'टूटा हुआ इंद्रधनुष' की शोभना आदर्श प्रेम को प्रतिष्ठित

करती है। उसका प्रेमी मनीष है। किंतु वह प्रेम में बँधकर प्रेमिका नहीं बनना चाहती; बल्कि विवाह में बँधकर पत्नी, माँ तथा गृहिणी बनना चाहती है। 'खातुल' में उन्होंने राजनीतिक परिस्थितियों से प्रताड़ित अफगान परिवारों की समस्याओं को समझने और विश्लेषित करने की कोशिश की है।

'गुलमोहर के गुच्छे' (१९७४), 'क्या छूट गया' (१९७६), 'आत्महत्या के पहले' (१९७९), 'कितना छोटा सफर' (१९७९), 'बावन पत्ते एक जोकर' और 'सफेद कौआ' (१९८६) इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। 'गुलमोहर के गुच्छे' में मुख्यतः नारी के विभिन्न रूपों और उसकी स्थितियों का चित्रण किया गया है। 'सफेद कौआ' में उन्होंने अपनी कथा-भूमि को थोड़ा विस्तृत किया है। इसमें एक सीमा तक साधारण लोगों की बुनियादी समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया गया है।

१३. राजी सेठ :

राजी सेठ ने व्यक्ति मन के पर्त-दर-पर्त विश्लेषण के द्वारा उसके दुख-दर्द को उजागर करने की अपनी विशिष्ट क्षमता के कारण अपनी अलग पहचान कायम की है। उनका रचना-संसार मुख्यतः घर-परिवार तथा स्त्री-पुरुष-संबंधों के दायरे तक ही सिमटा है। किंतु इस दायरे के भीतर की स्थितियों का जितना गहन मनोवैज्ञानिक विवेचन उन्होंने किया है, उतना किसी अन्य महिला कथाकार ने नहीं।[८]

राजी सेठ ने 'तत्सम' लिखकर हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। यों तो 'तत्सम' एक प्रेम-कथा है और इसमें स्त्री-पुरुष-संबंधों का ही विवेचन किया गया है। किंतु यह सब कुछ इतना सुसंस्कृत, सूक्ष्म और प्रौढ़ है कि पूरी रचना सामान्य प्रेमकथा से अलग और विशिष्ट बन गई है। इसमें वसुधा नामक एक विधवा की कथा है। वह विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करती है। वह लंबे समय तक अपने

दिवंगत पति की स्मृतियों में खोई रहती है; परंतु बाद में पुनर्विवाह कर लेती है। पुनर्विवाह करना और अपने पति की स्मृतियों में उलझने का द्वंद्व ही प्रस्तुत उपन्यास का कथ्य है।

'अंधे मोड़ से आगे' (१९७९), 'तीसरी हथेली' (१९८१), 'यात्रामुक्त' (१९८७) राजी सेठ के प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। पीढ़ियों के अंतराल के कारण टूटते-बिखरते मूल्य और उसकी पीड़ा, वृद्ध जीवन का अकेलापन और उसकी त्रासदी, प्रेम-विवाह की असफलता, नारी की स्वातंत्र्य भावना और जिजीविषा, पति का अहंकार और पत्नी के प्रति उसका अमानवीय व्यवहार आदि का चित्रण राजी सेठ की कहानियों में बखूबी हुआ है।

१४. प्रभा खेतान :

आज की सामाजिक विसंगतियों ने जिस टूटन, घुटन तथा संत्रास का जन्म दिया है, उसका अत्यंत गहराई से चित्रण करने में प्रभा खेतान को अच्छी सफलता मिली है। 'पीली आँधी' (१९९६) तथा 'छिन्नपत्रा' (१९९७) उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

'छिन्नपत्रा' में प्रिया को केंद्र में रखकर दांपत्य जीवन के तनाव, अहंजन्य मारवाड़ी पुरुषप्रधान संस्कृति, मारवाड़ी नारियों के अंधविश्वास, बेटी का जन्म होने पर माँ द्वारा की जाने वाली बेटी की उपेक्षा, समाज के मानवीय रिश्तों में आई टूटन, नारी के अकेलेपन का एहसास, विवाह-बाह्य तथा विवाहपूर्व प्रेम-संबंध आदि विविध विषयों पर प्रभा खेतान ने लेखनी चलाई है।

प्रभा खेतान ने प्रिया के माध्यम से नारी जीवन की विविध समस्याओं को वाणी दी है। रखैल नारी से लेकर लगभग हर घर की चारदीवारी में मानसिक पीड़ा

से दम तोड़ने वाली नारी की पीड़ाओं का भयावह यथार्थ उनके कथा साहित्य में प्राप्त है।

१५. सूर्यबाला :

समकालीन कथा साहित्य की प्रमुख कथा-लेखिकाओं के बीच सूर्यबाला की अपनी विशिष्ट पहचान है। स्त्री-पुरुष क संबंधों के बीच उभरा 'सेक्स' संबंधी ज्वलंत प्रश्‍न सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में उभारा है। इनके नारी-पात्र विषम परिस्थितियों में भी अनास्थावान नहीं बन पाते। परंपरागत मान्यताओं में इनका अटूट विश्‍वास है।

सूर्यबाला ने अपने लघु उपन्यासों 'मेरे संधि-पत्र', 'सुबह के इंतजार तक' (१९८०) तथा 'अग्निपंखी' (१९८४) के माध्यम से नारी जीवन की त्रासदी का बड़ा द्रावक चित्र खींचा है। प्रतिष्ठा के झूठे छद्‍म, रूढ़ियों की जकड़न और आर्थिक दबाव के चलते आज का निम्नमध्यवर्ग किस प्रकार पंगु, निरीह और असहाय बन गया है, इसे सूर्यबाला ने तार्तिक और संगत प्रसंगों के निर्माण द्वारा प्रभावी और विश्‍वसनीय बनाकर प्रस्तुत किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि लेखिका का स्वर आशावादी है। उसे पूरा विश्‍वास है कि आज की नारी जिस दिन परंपराओं और रूढ़ियों के छद्‍म को तोड़कर श्रमशील जीवन के महत्व को समझेगी, उस दिन सब कुछ बदल जाएगा।

'सुबह के इंतजार तक' की नायिका मानू परंपरा तथा निर्भीकता के संदर्भ में थोड़ी प्रगतिशील है। मानू शिक्षित, सुंदर, स्वाभिमानी, साहसी तथा सहनशील है। जवान बेटी की शादी की चिंता माँ-बाप की नींद हराम किए रहती है।

'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम' (१९७७), 'दिशाहीन' तथा 'थाली भर चाँद' (१९८८) सूर्यबाला के प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं। वे आज के जीवन का पूरा-पूरा साक्षात्कार

करना चाहती हैं। इसी लिए उनका कथाफलक अपेक्षाकृत व्यापक है। उनकी कहानियों की नारी मातृत्व की अपनी आदिम शक्ति खोना नहीं चाहती। सूर्यबाला ने अपनी कहानी 'गुमनाम दायरे' में ऐसी ही एक नारी को चित्रित किया है। उस औरत की बेटी हॉस्टल में रहती है और पति कार्य में व्यस्त। वह अपने पति सामने एक और बच्चे का प्रस्ताव रखती है। लेकिन उसका पति यह कहकर उसकी उपेक्षा कर जाता है कि एक बच्चे का मतलब है तीन सौ रुपये महीने का अतिरिक्त खर्च।

१६. अचला शर्मा :

आजादी के बाद ऐसी कहानियाँ लिखी गईं, जिनमें नारी को विवाहपूर्व प्रेम-संबंध स्थापित हो जाने के कारण पारिवारिक यातनाओं का शिकार होना पड़ता था। विवाह पूर्व प्रेम-संबंधों से कुंठित नारी समकालीन कथा लेखिकाओं की कथाओं के केंद्र में रही।

अचला शर्मा की कहानी 'धुँधले अँधेरे में' की नायिका के समक्ष एक ओर अपने परिवार की जिम्मेदारियाँ हैं, तो दूसरी ओर अपने प्रेम की गहराइयाँ। इन दोनों के बीच उसकी जिंदगी अँधेरे में भटक जाती है। एक समय वह खीझ कर अपनी माँ का विरोध करती है और अपने प्रेमी के पास चले जाने का निश्चय कर लेती है। परंतु दूसरे ही क्षण वह माँ की चिंताजनक हालत देखकर अपना इरादा बदल देती है।

अचला शर्मा का नारीवादी दृष्टिकोण कतिपय विशिष्टताएँ लेकर आता है, जिससे प्राचीन और आधुनिक युग की सीमा खिंच जाती है। बौद्धिकता और भावुकता में मानसिक तनावों का शिकार होने वाली नारी इनके कथा साहित्य के केंद्र में है।

१७. मैत्रेयी पुष्पा :

समकालीन कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन में उभरे नारी शोषण के विविध

आयामों को चित्रित करने का श्रेय निश्चित रूप से मैत्रेयी पुष्पा को मिलता है। ग्रामीण नारी-शोषण के परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी पुष्पा कृत 'इदन्नमम' (१९९४), 'चाक' (१९९७), 'झूला नट' (१९९९) उपन्यासों का निर्विवाद महत्त्व है।

'इदन्नमम' बुंदेलखंड के पहाड़ी पृष्ठभूमि पर रचा गया उपन्यास है, जिसमें विधवा 'बऊ' की व्यथा-कथा रची गई है। बऊ गाँव की गंदी राजनीति का शिकार होती है। उसकी जमीन-जायदाद को हड़प लेने के लिए गोविंदसिंह, अभिलाखसिंह जैसे भेड़िये ताक में बैठे हैं। इस उपन्यास में ग्राम्य नारी के यौन-शोषण की कथा बड़े यथार्थ रूप में कही गई है।

इसी तरह 'चाक' अतरपुर गाँव में उभरते हुए नारी स्वर को मुखर करता है। यहाँ की औरतें पुरुष-अहं, शील और सतीत्व की रक्षा के नाम पर बलि चढ़ा दी जाती हैं। रुक्मिणी गले में फंदा लगाकर झूल जाती है, रमदेई कुएँ में कूद जाती है, नारायणी नदी की गोद में समा जाती है।

'अल्मा कबूतरी' की कुमारी माँ 'अल्मा' गाँव की प्रचलित व्यवस्था के प्रति विद्रोह करती है। गाँव की विकृत मान्यताओं के खिलाफ अल्मा का विद्रोह निश्चय ही साहस भरा काम है।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियाँ भी नारी जीवन के यथार्थ को सामने लाती हैं। 'तुम किसकी हो बिन्नी' में बेटे की उम्मीद में जन्मी बेटी परिवार वालों की उपेक्षा का पात्र बनती है। 'ललमनिया' की मोहरो पुरुषवर्ग द्वारा भोगी गई वस्तु का यथार्थ रूप है। 'अब फूल नहीं खिलते' की झरना स्कूल के प्रिंसिपल की वासना का शिकार बनती है।

१८. नासिरा शर्मा :

नासिरा शर्मा ने एक प्रगतिशील मानवधर्मी लेखिका के रूप में अपनी पहचान बनाई है। उनके दो उपन्यास प्रकाशित हैं : 'सात नदियाँ : एक समुंदर' (१९८४), शाल्मली (१९८७)। 'सात नदियाँ : एक समुंदर' में आज के ईरान की कथा कही गई है। ईरान की जनता ने रजाशाह पहलवी के खिलाफ बगावत करके उनकी तानाशाही से मुक्ति पाना चाही थी; किंतु वह अपने लक्ष्य में सफल न हो सकी; क्योंकि शाह के जाने के बाद इस्लामी गणतंत्र के नाम पर अयातुल्ला खुमैनी ने जनता पर एक दूसरे प्रकार की तानाशाही लाद दी। नासिरा शर्मा ने इस धार्मिक तानाशाही के दबाव में पिसती जनता का बड़ा मार्मिक चित्र खींचा है।

'शाल्मली' में लेखिका ने एक सुशिक्षित और केंद्र सरकार में प्रथम श्रेणी की ऑफिसर महिला शाल्मली और किसी दफ्तर में सेक्सन ऑफिसर तथा हीनभाव से ग्रस्त उसके पति के बीच की टकराहट को उभारा है। पत्नी परिवार को टूटने से बचाने के लिए पति के सारे अत्याचार सहती जाती है।

१९. निरुपमा सेवती :

निरुपमा सेवती यथार्थवादी कथाकार हैं। वे कामकाजी महिलाओं के जीवन के द्वंद्व तथा बदली हुई नैतिक धारणाओं के बीच उसके संघर्ष को साहस के साथ दर्शाने में सिद्धहस्त हैं। जीवन की विसंगतियों एवं यथार्थबोध की तीखी संवेदनाओं से युक्त नारी उनकी कथाओं के केंद्र है।

'पतझड़ की आवाजें' (१९७६), 'बँटता हुआ आदमी' (१९७७), 'मेरा नरक अपना है' (१९७७) और 'दहकन के पार' (१९८२) निरुपमा सेवती के उपन्यास हैं। 'पतझड़ की आवाजें' में उन्होंने ऐसी महिलाओं के जीवन-संघर्ष का चित्रण किया है, जिन्हें एक ओर परिवार की आर्थिक दुर्दशा से जूझना पड़ता है, तो दूसरी ओर

अपनी आंतरिक इच्छाओं-आकांक्षाओं से। 'बँटता हुआ आदमी' में लेखिका ने संघर्ष के दूसरे बिंदु को उभारा है। आज की व्यवस्था में प्रतिभासंपन्न तथा ईमानदार आदमी की कद्र नहीं है। मक्कार, खुशामदी, मौकापरस्त और बेईमान आदमी आगे बढ़ जाते हैं और ईमानदार टूटकर बिखरने तथा आत्महत्या करने के लिए विवश होते हैं। 'मेरा नरक अपना है' में यौन-संबंध के कारण उपजे संघर्ष को कथा का विषय बनाया गया है। शीला, आशा, अनिला को स्वच्छंद जीवन जीने की छूट है - चाहे वह स्वच्छंदता नरक के समान ही क्यों न हो। अपने अकेलेपन के कारण उनका जीवन अस्थिर बन जाता है।

निरुपमा सेवती की कहानी 'माँ यह नौकरी छोड़ दो' नारी के स्वावलंबन को प्रस्तुत करती है। पति शराबी है, इसलिए पत्नी को नौकरी करनी पड़ती है। बच्चे की माँ अनेक यातनाओं को सहती है। बच्चा माँ की उन यातनाओं को देखता है, माँ की यातना उससे बर्दाश्त नहीं होती; इसलिए वह कहता है 'माँ यह नौकरी छोड़ दो'।

२०. मालती परूलकर :

अन्य समकालीन कथा लेखिकाओं की कृतियों में ज्यादातर नारी जीवन से संबंधित विद्रोही स्वर ही दिखाई पड़ता है; परंतु मालती पारूलकर की कथाओं के नारी चरित्र उतने विद्रोही नहीं हैं। उनके दो उपन्यास चर्चित हैं : १. 'जहाँ पौ फटने वाली है' (१९७६) और २. 'मुक्ता' (१९८०)।

'जहाँ पौ फटने वाली है' की देबू मुरली से प्रेम करती है, परंतु उसमें साहस का अभाव है। इसलिए वह मुरली को पति रूप में प्राप्त नहीं कर पाती। उसका विवाह श्रीकांत से होता है, जो एक पुत्र छोड़कर मर जाता है। उसके बाद वासनीक और

मि. प्रसन्न उसके जीवन में आना चाहते हैं। परंतु देबू उनमें से किसी को स्वीकार नहीं कर पाती।

इसी तरह 'मुक्ता' की नायिका रुक्की भी गंभीर समस्याओं से घिरी हुई है। अनाथ रुक्की का पालन-पोषण पड़ोस के चाचा ने किया है। उसके सामने परिस्थिति ऐसी उत्पन्न होती है कि पति और प्रेमी के बीच संतुलन बनाकर जीना पड़ता है।

इस तरह से देखा जाए तो मालती पारूलकर के स्त्री पात्र नियति को स्वीकार करके परिस्थिति के साथ संतुलन बनाकर चलते हैं। प्रकृतिजन्य गुणों में उनकी विशेष आस्था दिखाई पड़ती है।

२१. कृष्णा अग्निहोत्री :

समकालीन लेखिकाओं में कृष्णा अग्निहोत्री का नाम विशेष चर्चित है। नारी उत्पीड़न तथा दांपत्य जीवन की समस्याओं के साथ कृष्णाजी ने निम्नवर्ग के पात्रों को भी अपने कथा साहित्य का विषय बनाया है। 'बौनी परछाइयाँ', 'बात एक औरत की' तथा 'कुमारिकाएँ' उनके प्रारंभिक उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में कामकाजी महिलाओं की विवशता, उनका दैहिक शोषण एक निरंतर समस्या बनकर प्रस्तुत हुई है। 'टेसू की टहनियाँ', 'अभिषेक', 'निष्कृति' और 'निलोफर' बाद के उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में नारी जीवन की त्रासदी अपने विविध आयामों में अभिव्यक्त हुई है।

'टीन के घेरे', 'याही बनारसी रंग बा', 'जे सियाराम', 'नपुंसक', 'जिंदा आदमी', 'सर्पदंश' तथा 'विरासत' इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

२२. अचला शर्मा :

अचला शर्मा ने ऐसी कहानियाँ लिखी हैं, जहाँ नारी को विवाह पूर्व के प्रेम-संबंधों के कारण पारिवारिक यातनाओं का शिकार होना पड़ा है। विवाह पूर्व के

प्रेम-संबंधों से कुंठित नारी समकालीन महिला कथाकारों की कथाओं के केंद्र में रही है। 'धुँधले अँधेरे में' की नायिका के समक्ष एक ओर अपने परिवार की जिम्मेदारियाँ हैं, तो दूसरी ओर अपने प्रेम की गहराइयाँ। उसकी जिंदगी इन दोनों के बीच भटक जाती है। 'बर्दाश्त बाहर' की रति न तो प्रेमिका बन पाती है और न पत्नी। 'मुझे खोल दो' में नारी की स्वतंत्र रूप से जीने की लालसा अभिव्यक्त हुई है। इसकी नायिका अपनी वैयक्तिक चेतना का विकास करना चाहती है।

अचला शर्मा का नारीवादी दृष्टिकोण कुछ विशेषताएँ लेकर सामने आता है, जिससे प्राचीन और आधुनिक युग के बीच सीमा रेखा खिंच जाती है। बौद्धिकता और भावुकता में मानसिक तनावों का शिकार नारी इनकी कथा के केंद्र में है।

२३. रजनी पनीकर :

रजनी पनीकर मूलतः मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं। उनके उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याओं को मनोविज्ञान की कसौटी पर परखा गया है। 'दूरियाँ', 'काली लड़की', 'महानगर की मीता', 'बदलते रंग' तथा 'दो लड़कियाँ' रजनी पनीकर के प्रमुख उपन्यास हैं। 'दूरियाँ' की चारू और नमिता असफल प्रेम के परिणामों का प्रतीक हैं। उनके माध्यम से रजनी पनीकर ने प्रेम-विवाह की समस्याओं को नवीन दृष्टि से देखा है। प्रेम की परंपरागत मान्यताओं को तोड़ने वाली ये नायिकाएँ। 'दो लड़कियाँ' में मनोवैज्ञानिक आधार मध्यवर्ग की दो स्त्रियों का चित्रण किया गया है, जो नए-पुराने के बीच फँसकर छटपटाती हैं। 'रंजना' घर की आमदनी का एक मात्र साधन बनने के बाद धीरे-धीरे अपनी सारी वर्जनाएँ तोड़ती जाती है। इसी तरह शशि एक अंतर्मुख, परंपरागत, कुंठित पात्र है। अचला अपनी माँ के साथ रहती है तथा पुरुषों के साथ खूब घूमती है।

संदर्भ :

१. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन : डॉ. गोरक्ष थोरात, पृ. २१६।

२. हिंदी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. २०२।

३. हिंदी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. २०२।

४. हिंदी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. २०३।

५. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ : शीलप्रभा वर्मा, पृ. २१।

६. हिंदी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. २०६।

७. हिंदी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. २०५।

८. हिंदी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. २५०।

अध्याय-४

कथाकार चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य के वस्तुपक्ष का अनुशीलन

अध्याय-४

कथाकार चित्रा मुद्‌गल के कथा साहित्य के वस्तुपक्ष का अनुशीलन

(क) उपन्यास :

चित्रा मुद्‌गल के अब तक तीन उपन्यास प्रकाशित हैं : १. एक जमीन अपनी, २. आवाँ, ३. गिलिगडु। तीनों उपन्यासों की कथाभूमि अलग-अलग है। चित्राजी के कथा-लेखन का एक खास पहलू यह है कि वह किसी खास 'वाद' की उपज नहीं है। इसी लिए उनका सारा कथा साहित्य जीवन के सभी क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए चलता है। उसमें मॉडलिंग की दुनिया में स्त्री की स्थिति, उसका शोषण, श्रमिक आंदोलन, ट्रेड यूनियनों का असली चेहरा, श्रमिकों की समस्याएँ, श्रमिक स्त्रियों का जीवन, वृद्धावस्था की समस्याएँ, साम्प्रदायिकता की समस्या, राजनीति का गंदा और घिनौना रूप आदि विषय चित्राजी के उपन्यासों के वस्तुपक्ष के दायरे में आते हैं।

१. एक जमीन अपनी :

'एक जमीन अपनी' चित्राजी का पहला उपन्यास है, जो सन् १९९० में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में आदि से अंत तक स्त्री-शोषण के संबंध में संचार माध्यमों की भोगवादी दृष्टि का पर्दाफाश किया गया है। इसकी केंद्रीय कथा बंबई महानगर के विज्ञापन जगत में ग्लैमर की आड़ में मूल्यहीन प्रतियोगिता, तिकड़म, देह-व्यापार आदि का जो नंगा नाच होता है, उसको लेखिका ने बड़ी बेबाकी से प्रस्तुत किया है। पत्नी

और प्रेमिका के रूप में आधुनिक नारी की स्थिति कितनी त्रासद है, इसका अंकन चित्र मुद्‌गल ने गहरी संवेदना के साथ किया है। स्त्री चाहे कितनी भी योग्य हो, परंतु विज्ञापन की दुनिया में उसकी हैसियत भोग्या से ज्यादा नहीं है।

स्त्री जीवन की त्रासदी के अलग-अलग कोण चित्राजी के रचना-संसार में दिखाई पड़ते हैं। 'एक जमीन अपनी' में अर्थोपार्जन की विवशता से ग्रस्त अलग-अलग मनोदशा वाली स्त्रियों के जीवन संघर्ष का वर्णन है। प्रकाश मनु 'एक जमीन अपनी' को स्त्री-चेतना का महत्त्वपूर्ण उपन्यास मानते हैं।[१] चित्राजी ने इस उपन्यास में विज्ञापन की दुनिया में संघर्ष करती और शोषण का शिकार बनती नारी के जीवन यथार्थ को प्रस्तुत किया है। भूख और घर की अन्य जरूरतें उसे विज्ञापन की मंडी में ले जाती हैं।

इस उपन्यास में स्त्री-मुक्ति को बहुत भड़कीला और रसीला बनाने की कोशिश चित्राजी ने नहीं की है। उन्होंने स्त्री-मुक्ति को महज सेक्स और यौनाचार तक सीमित नहीं रखा है। उनके अनुसार स्त्री स्वातंत्र्य केवल मर्द बदलने या एक मर्द से दूसरे मर्द के पहलू में पहुँचने तक का सफर नहीं है। चित्राजी दूसरी लेखिकाओं से भिन्न इस अर्थ में हैं कि वे 'एक जमीन अपनी' में नारी विमर्श को एक भावुक, समझदार और जिम्मेदार बुद्धिजीवी की अवधारणा में बदलती नजर आती हैं।[२]

चित्रा मुद्‌गल 'पुरुष बनाम स्त्री' के सवाल को लेकर अपनी कथा का सृजन नहीं करतीं। वे पुरुष मात्र को दरिंदा और स्त्री मात्र को आदर्श मानकर नहीं चलतीं। 'एक जमीन अपनी' की कथा नायिका बहुत सुलझे हुए मन-मस्तिष्क की महिला है। वह यह मानती है कि विवाह संस्था मर्दों की वर्चस्ववादी मानसिकता के चलते दोषग्रस्त होने के कारण आज स्त्री के गले का फंदा बन गई है। परंतु साथ ही वह यह भी रेखांकित

करती है कि स्त्री की लड़ाई इस दोषग्रस्त व्यवस्था से होनी चाहिए, न कि पुरुष मात्र से। अंकिता के रूप में चित्राजी का यह मानना है कि आदर्श संबंधों में स्त्री-पुरुष का लिंगभेद कोई माने नहीं रखता। स्त्री को स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं चाहिए, बल्कि उन रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए, जिन्होंने उसे वस्तु बना रखा है।

अंकिता परंपरा सोच के जड़ ढाँचे को तोड़कर एक नए युग की शुरुआत करना चाहती है। इसी आधार पर रोहिणी अग्रवाल का मनना है कि असल में चित्रा मुद्गल के स्त्री विमर्श का अहम हिस्सा स्त्री की देहधर्मी पहचान के इर्द-गिर्द बुना गया है। 'एक जमीन अपनी' में वे अंकिता बनाम नीता तथा 'आवाँ' में नमिता बनाम स्मिता-गौतमी जैसे विरोधी चरित्रों के माध्यम से देह के जरिये 'सफल' स्त्रियों के मानसिक खोखलेपन का विशद चित्रण करती हैं।

फिल्मी दुनिया की तरह ही विज्ञापन की दुनिया भी ग्लैमर की दुनिया है, जिसका उद्देश्य है अपने चकाचौंधपूर्ण विज्ञापनों द्वारा विविध उत्पादों को खरीदने के लिए ग्राहकों को प्रेरित करना - या यों कहें कि ग्राहकों को सम्मोहित करना। अपने इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए सारा विज्ञापन जगत अपने विज्ञापनों में स्त्री देह का अधिकाधिक प्रदर्शन करता है और उत्पादों की विशेषताओं की चर्चा कम। चित्राजी ने 'एक जमीन अपनी' उपन्यास में यह प्रतिपादित किया है कि वास्तव में शत-प्रतिशत ऐसी स्थिति नहीं है। यदि एक ओर जहाँ मि. मैथ्यू, मि. सक्सेना और शैलेंद्र जैसे स्त्री-देह का बाजार बनाकर मुनाफा कमाने वाले लोग हैं, तो दूसरी ओर मि. भोजराज तथा मि. गुहा जैसे उदार व्यक्ति भी हैं, जो अपने स्त्री मातहतों को देह के रूप में नहीं, अपितु एक इंसान के रूप में देखते हैं और उनका सम्मान करते हैं।

'एक जमीन अपनी' उपन्यास में मालिक वर्ग के दो रूप हैं : स्त्रीदेह का उपयोग

कर लाभ कमाने वाले और स्त्रीदेह का सम्मान कर अपना व्यवसाय चलाने वाले। इस प्रकार इस व्यवसाय में आने वाली स्त्रियों के भी दो वर्ग हैं : १. उन स्त्रियों का वर्ग, जो अपनी मेहनत और लगन के बल पर इस क्षेत्र में टिके रहना चाहती हैं; और साथ ही इस क्षेत्र में कुछ खास बदलाव भी लाना चाहती हैं; २. उन स्त्रियों का वर्ग, जो रातों-रात सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ने के लिए अपनी देह का दुरुपयोग करने में तनिक भी संकोच नहीं करतीं।

अंकिता पहली श्रेणी में आने वाली पात्र है। वह अपनी देह को उन्नति का आधार बनाने के बजाय कठिन परिश्रम के बल पर इस क्षेत्र में टिके रहने की कोशिश करती है। जरूरत पड़ने पर वह अपनी नौकरी की परवाह किए बिना मि. मैथ्यू को फटकार भी लगाती है : 'लाभ के लोभ में आप कितना नीचे गिर सकते हैं, रेखांकित करने की जरूरत नहीं ... यह ग्लैमर की दुनिया है और यहाँ का समस्त कार्य-व्यापार बेईमानी और सेक्स के बूते पर चलता है... मि. मैथ्यू! 'लिली प्रेशर कूकर' के मि. सक्सेना का खाता आपके लिए इतना बड़ा और महत्त्वपूर्ण था कि उनकी ओछी हरकत जानते हुए भी एक संघर्षशील लड़की के भविष्य को खाई में ढकेल घुटने टेक दिए। किन उसूलों की बात कर रहे हैं आप...? मैं प्रत्यक्ष प्रमाण हूँ उस शोषण का; ... आप खातों को मुट्ठी में रखने के लिए मजबूर लड़कियों की मजबूरी का फायदा उठाकर उन्हें उनके मनोरंजन के लिए परोसा करते हैं। ... मि. मैथ्यू! कुछ परिश्रमी और ईमानदार लोग भी इस उद्योग में हैं, जो मूल्यों के प्रति सचेत ही नहीं हैं, उन्हें आचरण में लाते हैं।'[३]

'एक जमीन अपनी' उपन्यास में दो प्रमुख नारी चरित्र हैं : अंकिता और नीता। दोनों एक ही व्यवसाय से जुड़ी हैं। दोनों दोनों स्वाधीनता चाहती हैं; दोनों संघर्षशील

हैं। किंतु दोनों के संघर्ष में गुणात्मक अंतर है। अंकिता प्रतिरोधात्मक ताकत के रूप में विज्ञापन जगत में विद्यामान है; परंतु नीता अपने को संपूर्ण रूप से प्रवाह में डाल देने केलिए उत्सुक है। इसे ही वह अपना संघर्ष और साहस समझती है। इसी लिए लेखिका ने नीता को एक दिग्भ्रमित नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। निजी समृद्धि, ख्याति और सफलता की चकाचौंध में वह भूल चुकी है कि उस जैसी नारी के कर्मों का समाज पर क्या असर होता है। रातों-रात नंबर वन मॉडल बन जाने के लिए वह लगभग नग्न होकर विज्ञापन फिल्म में काम करती है। अपने इस कार्य को वह 'साहस', 'स्वाधीनता' और आधुनिकता का नाम देती है। किंतु अंकिता इस आधुनिकता को अपनी शर्तों पर स्वीकार करती है। वह नारी-अस्मिता और समाज-बोध के प्रति सदा सतर्क रहती है। उसमें पर्याप्त उत्तरदायित्व-बोध है। वह उच्छृंखलता को साहस नहीं मानती। अपने इसी मूल्यबोध और विवेक के कारण वह आधुनिक नारी का प्रतीक बन सकी है। विज्ञापन में नग्न होना तो दूर की बात - वह तो पार्टी-संस्कृति को नारी के प्रति विलास संस्कृति में बदले जाने का प्रतविाद करती है। जिस 'ऑब्जर्वेशन' कंपनी में वह काम करती है, उसके सबसे बड़े खातेदार का अपने कंधे पर रखा गया हाथ वह झटक देती है : 'दिस शोल्डर बिलांग टु मी ... अपना हाथ जगह पर रखेंगे या मैं उसे जगह बताऊँ?'[४] भले ही, इस उद्दंडता के कारण उसे अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ता है। मि. भोजराज की जिस 'माध्यम' कंपनी में वह काम करती है, उसी भोजराज से वह यह कहते हुए तनिक भी नहीं हिचकती : 'मैं अश्लीलता का आश्रय लेकर उत्पाद बेचने के विरुद्ध हूँ।'[५]

अपनी दृढ़ता, साहस और स्वाधीन चेतना के कारण अंकिता को विज्ञापन जगत में अनेक षड्यंत्रों का सामना करना पड़ता है; क्योंकि अपनी गरिमा और दृष्टिकोण

को त्यागकर पाई गई आधुनिकता उसका मार्ग नहीं है।

इस उपन्यास का केंद्रीय विषय भले ही विज्ञापन की दुनिया है, उसकी चकाचौंध भरी जिंदगी, नारी का शोषण, अपने उत्पादों को बेचने के लिए तरह-तरह के दाँव-पेंच, वहाँ की अस्वाभाविक जिंदगी हो, परंतु चित्राजी ने जीवन के दूसरे महत्त्वपूर्ण संदर्भों को भी उपन्यास के मुख्य सरोकारों के साथ बड़ी सहजता से जोड़ा है। उनमें से एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है आधुनिक युग में पारिवारिक और सामाजिक संबंधों के खोखलेपन को उजागर करना। इस औपनिवेशिक काल में आपसी संबंध, घर एवं परिवार का महत्त्व नष्ट होता जा रहा है। हर कोई संकुचित स्वार्थपूर्ण व्यापारिक मानसिकता का शिकार होता जा रहा। उपन्यास में चित्राजी इस पक्ष में दिखाई पड़ती हैं कि परिवार भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। परिवार की सुदृढ़ता में ही संबंधों की अर्द्रता है। घर का माहौल स्नेह संबंधों की आर्द्रता से गुंजायमान है, तो वहाँ से सबको जीने का संबल मिल जाता है। अंकिता के मन में शुरू से लेकर अंत तक घर के प्रति उचित स्थान बना रहता है। वह अपने पति सुधांशु के साथ घर बसाना चाहती है; परंतु असफल हो जाती है। फिर भी अपने परिवार वालों के साथ, अपनी माँ के साथ उसका गहरा संबंध बना रहता है।

अंकिता को अपनी माँ बहुत प्रिय है। बंबई में एक घर लेकर माँ को वहाँ लाना चाहती है और उसका इलाज कराना चाहती है। परंतु उसका यह सपना पूरा नहीं हो पाता। समय से पहले ही उसकी माँ चल बसती है। इस घटना से वह बहुत आहत होती है। परंतु, उससे भी अधिक चोट उसे तब पहुँचती है, जब माँ की चिता की आग ठंडी होने के पहले ही घर वाले संपत्ति के बँटवारे में जुट जाते हैं। जिन्होंने जीते जी अम्मा की फिक्र नहीं की, उनके सुख-दुख की परवाह नहीं की, वे लोग माँ

के अवसान के बाद लोक-व्यवहार निभाने के लिए आ जाते हैं और न जाने किस अधिकार से वे माँ की संपत्ति के बँटवारे में जुट जाते हैं।

अंकिता को घर की इस स्थिति ने पत्थर बना दिया। वह घर यह सोचकर आई थी कि उस घर में अम्मा के अंतिम स्पर्श की गरमाहट मिलेगी। भाइयों और भाभियों का साथ मिलेगा। उनके साथ छोड़ा समय बिताने पर मन थोड़ा हल्का होगा। लेकिन सबके तिरस्कारपूर्ण व्यवहार से वह स्तब्ध रह जाती है। उसके मन में परिवार के प्रति जो मोह था, वह संपत्ति के बँटवारे की घटना से भंग हो जाता है।

चित्राजी बंबई नगरी के जीवन की कठिनाइयों और घर खोजने की मुश्किलों को भी प्रस्तुत उपन्यास की कथा का हिस्सा बनाया है। कहते हैं बंबई नगरी माया नगरी है। वहाँ काम-धंधा तो आसानी से मिल सकता है; लोग खाने को भी दे सकते हैं; परंतु कोई रहने का ठिकाना नहीं दे सकता। इस विषय में अंकिता की सोच चित्राजी के शब्दों में : 'बंबई में अपने घर की कल्पना किसी के लिए भी जीवन का सबसे खूबसूरत सपना हो सकता है - उसके लिए भी है कभी न सच होने वाला सपना। लेकिन क्या सचमुच वह उम्मीद के डोरों पर पग धरती वह रास्ता बुन सकती है, जो उसे अपने गर की दीवारों तक ले जाएगा?'[६]

सचमुच चित्राजी ने अंकिता के रूप में एक बहुत उदात्त स्त्री पात्र का सृजन किया है। शायद इसी लिए, अंकिता का प्रतिपक्षी पात्र नीता, अपनी बेटी को बेटी को अंकिता के हाथों में सौंपकर चली जाती है। उपन्यास की इस घटना के आधार पर, बेशक यह कहा जा सकता है कि अंकिता की सृष्टि लेखिका ने भारतीय नारी की प्रतिष्ठा के लिए की है। नारी स्वातंत्र्य संबंधी मिथ्या धारणा को तोड़ने में यह उपन्यास पूर्णतः सफल प्रतीत होता है।

'एक जमीन अपनी' में विज्ञापन फिल्मों के संदर्भ में नारी देह प्रदर्शन को लेकर काफी बहसें चित्रित हुई हैं। वास्तव में मनुष्य के जीवन में कपड़ों का महत्त्व अपने शरीर को ढँकने के साथ-साथ अपनी सुंदरता को बढ़ाने की दृष्टि से भी है। लेकिन आज आधुनिकता के नाम पर स्त्रियों के कपड़े कम से कमतर होते जा रहे हैं। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि आज स्त्रियों को देखने का पुरुषों का नजरिया बदल गया है। स्त्री को कपड़ों के भीतर झाँकने की मनोवृत्ति बढ़ गई है।

चित्राजी व्यक्ति स्वातंत्र्य की विरोधी नहीं हैं। परंतु उनका मानना है कि जब हम समाज में होते हैं, तब कुछ नीति-नियमों का पालन करना हमारा सामाजिक दायित्व बनता है। उनके अनुसार 'वह कोई कार्य निजी नहीं होता, जो सार्वजनिक हित-अहित को प्रभावित करता है। प्रतिक्रिया प्रकट करने का उसे पूरा अधिकार है ... और करना भी चाहिए; ... अपने कमरे के भीतर आप नंगे रहिए, कौन झाँकने-टोकने जाता है, किसे आपत्ति हो सकती है? ... मगर घर से बाहर आप मात्र एक व्यक्ति नहीं होते, समाज होते हैं।'[७]

नीता जैसी कुछ स्त्रियाँ आधुनिकता के नाम पर देह-प्रदर्शन का लाभ उठाकर रातों-रात सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ना चाहती हैं। इसके लिए उन्हें किसी प्रकार का अपराधबोध नहीं होता। उल्टे वे इसका विरोध करने वाले को दकियानूसी करार देती हैं। दरअसल, इससे पुरुषों का ही फायदा होता है। उन्हें अपनी यौन-तृप्ति के लिए किसी स्त्री को शिकार बनाने का कष्ट नहीं करना पड़ता; क्योंकि ऐसी स्त्रियाँ तो खुद ही उनका शिकार बनने के लिए तैयार बैठी हैं। अंकिता इस हकीकत से भलीभाँति परिचित है। इसी लिए वह नीता को सावधान करते हुए कहती है : 'आधुनिकता की जिस परिभाषा को तुम जी रही हो, ... दरअसल वह परिभाषा अधिकार, आधुनिकता,

समता और स्वतंत्रता के नाम पर पुरुषों द्वारा ही अखबारों, पत्रिकाओं, विज्ञापनों, फिल्मों, पोस्टरों, स्लाइड्स के माध्यम से स्त्री को सौंपी जा रही है।'[८]

२. आवाँ :

हिंदी की कथा लेखिकाओं में चित्रा मुद्‌गल का अपना विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अपने जीवनानुभवों को अपने कथा साहित्य का विषय बनाया है। एक कहानीकार के रूप में उन्होंने अपने लेखक जीवन का आरंभ सन् १९६५ में किया। परंतु उन्हें हिंदी जगत में कथा लेखिका के रूप में व्यापक ख्याति मिली, सन् १९९९ में प्रकाशित उनके उपन्यास 'आवाँ' से। 'आवाँ' उनके बहुविध जीवनानुभवों की फलश्रुति है। 'आवाँ विमर्श' के संपादक करुणाशंकर उपाध्याय लिखते हैं : 'आवाँ' का वस्तु-विन्यास अतिशय प्रशस्त, विस्तृत और वनस्थली की भाँति अकृत्रिम है। यही कारण है कि इसके प्रदीर्घ एवं सघन परिवेश में शेर, चीता, भेड़िया, हाथी, गीदड़, भैंसा, गिद्‌ध, बाज एवं कौवा की तरह ढेरों पुरुष पात्र हैं, तो हंसिनी, नीलगाय, कोयल एवं बुलबुल जैसे निरीह किंतु कलावंत स्त्री पात्र भी हैं। यदि इसमें लोमड़ी सदृश् चालाक एवं शिकारी स्त्रियाँ हैं, तो दुधारू गाय की तरह उपयोगी भी। अतः इसकी जैव सामाजिक संरचना विविधतापूर्ण एवं यथार्थपरक है, जिसमें साहित्य, समाज, महानगरीय परिवेश, औद्योगिक सभ्यता की विकृतियों एवं अप-संस्कृति के बढ़ रहे दानवीय भुजदंड का गहन संश्लेषण परिलक्षित होता है।[९] डॉ. नामवर सिंह ने इसके प्रकाशन के तुरंत बाद दूरदर्शन के 'सुबह-सवेरे' कार्यक्रम में इसे दशक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा था।

'आवाँ' उपन्यास में श्रमिक आंदोलन के मंच के रूप में 'कामगार आघाड़ी' संगठन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस संगठन के प्रमुख नेता अन्ना साहब हैं। वे मुंबई के प्रसिद्ध मजदूर नेता दत्ता सामंत के प्रतिनिधि प्रतीत होते हैं। लेखिका चित्रा मुद्‌गल

खुद मजदूर संगठनों से सीधे तौर पर जुड़ी रहीं। वे खुद कहती हैं : ट्रेड यूनियन से मैं बहुत थोड़े समय के लिए जुड़ी रही। लेकिन श्रमिक परिवारों से मेरा लंबा नाता रहा। मीरा ताई से मेरी सबसे पहली मुलाकात तब हुई थी, जब वे एक शाम दत्ता सामंत के साथ ठाकुर साहब (चित्राजी के पिता) से मिलने आईं। यह समय था, जब मैं मीरा ताई की संस्था 'जागरण' से जुड़ी, जो घरों में काम करने वाली मजदूर पत्नियों की संस्था थी - उनके बुनियादी हक की लड़ाई लड़ने वाली।[१०]

नारी-विमर्श 'आवाँ' के मूल कथ्य का हिस्सा है। इस उपन्यास से नारी पात्रों की भारी भीड़ है, जिनमें से प्रत्येक की अपनी अलग-अलग कहानी है। इस उपन्यास की नायिका नमिता पांडेय, नमिता की माँ, उसकी मौसी कुंती, करमाकर आंटी, ममता, स्मिता, सुनंदा, किशोरीबाई, शाहबेन, विमलाबेन, निलम्मास मानि, अंजना वासवानी, गौतमी, निर्मला कनोई आदि। नमिता की माँ भारतीय समाज के पुत्र-प्रेम और पुत्री-द्वेष का साक्षात् उदाहरण है। इसी तरह अंजना वासवानी, गौतमी, चेतना स्वामी, देवयानी और निर्मला कनोई पूँजीवादी सोच के अनुसार दुनिया को बाजार मानकर चलने वाली स्त्रियाँ हैं, जिनकी दृष्टि में सब कुछ खरीदा और बेचा जा सकता है - स्त्री की छबि भी, उसकी देह भी और उसका मातृत्व भी। यहाँ कुछ खरीदार हैं, कुछ बिकाऊ चीजें और कुछ दलाल।

तीन पात्रों का उनके निकट संबंधियों ने उनका यौन-शोषण किया है। नमिता के मौसा ने नमिता का, गौतमी के सौतेले भाई ने गौतमी का और स्मिता के पिता 'मटका किंग' ने स्मिता की दीदी का। आगे चलकर नमिता को अन्ना साहब की घिनौनी यौन-विकृति का और संजय कंदोई की चालबाजी का शिकार बनना पड़ा। सवाल यह उठता है कि इन परिस्थितियों से गुजरकर ये स्त्रियाँ कहाँ पहुँचीं? गौतमी ने अपनी

देह को बाजार में भुनाने का रास्ता चुना और संतानहीन सेठों के लिए संतान उत्पन्न कर दौलत कमाने लगी। स्मिता की दीदी इन सबसे उबरकर एक सामान्य गृहस्थ जीवन जीने की ओर अग्रसर दिखाई देती है और नमिता भी अपने जीवन को एक सार्थक दिशा में कदम बढ़ाया। नमिता का जब यौन-शोषण हुआ, तब वह सिर्फ ग्यारह वर्ष की थी। नमिता की मौसी और उसकी माँ ने इस घटना को दबा दिया। इसी तरह गौतमी अपने सौतेले भाई की यह हरकत किसी को बता भी नहीं पाई कि तब तक गर्भवती हो गई। फिर आत्महत्या करने के लिए चल पड़ी। ऐसी लड़कियों के लिए घात लगाए बैठी अंजना वासवानी उसे रोका और उसके साथ ठीक वैसा ही किया, जैसा नमिता के साथ किया था।

इस तरह देखा जाए, तो गौतमी की भी वहीं परिणति है, जो नमिता के लिए बाजार ने तय कर रखी थी। स्मिता की माँ तो सब कुछ जानते हुए भी मटका किंग के भय से मूक बना रही। नारी-विमर्श की दृष्टि से उपन्यास का सबसे सक्रिय पात्र है स्मिता और मुखर पात्र है पवार। स्मिता स्वयं को आज की औरत कहती है। अपने पिता से उसने भी पिता का वात्सल्य नहीं पाया। उसे वह एक आतंक पैदा करने वाले अत्याचारी के रूप में ही देखती रही। इसी लिए मौका पाकर उसने ऐसे बाप की हत्या कर दी और उसके अत्याचार से अपने परिवार को मुक्ति दिलाई। यहाँ तक कि नमिता को भी उसने उसके कई पूर्वग्रहों और समस्याओं से छुटकारा दिलाया।

पवार मेहनकश है और दलित भी। उसके चिंतन में गहराई है; लेकिन उसकी अभिव्यक्ति भदेस है और कभी-कभी अश्लील भी। वह सामने वाले की पूर्वधारणाएँ तोड़ने और उसे नए सिरे से सोचने के लिए प्रेरित करने की खातिर जान-बूझकर ऐसा करता है। स्त्री के स्वावलंबी बनने का समाज पर जो प्रभाव पड़ रहा है, उसके बारे

में पवार का कहना है : 'परस्परता विकसित होनी चाहिए थी। संतुलित हो। हो रहा है उल्टा। घर टूट गए। टूटेंगे। त्रिशंकु बनी संतानें अपने अस्तित्व के अपरिचय से जूझ रही हैं, जूझेंगी। समस्या विकराल से विकरालतर होती जा रही है।'

वह स्त्री मजदूरों के पुरुष मजदूरों के समान वेतन के लिए संघर्ष करता है, लेकिन नारीवादी विचारों से सहमत नहीं है। वह विवाह की परंपरा को भी उचित मानता है। उसे लगता है कि इसी के अंतर्गत स्त्री की सारी आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं। माँ बनना भी उसकी ऐसी ही आवश्यकता है। इसी संदर्भ में उसका यह भी विचार है कि स्त्री विवाह करके पुरष के आश्रय में रहकर अपनी संतान को पाले-पोसे, तभी वह सुरक्षित रह सकती है। पवार के बारे में कमलेश सचदेव का मत है कि पवार की अभिव्यक्तियों की तीक्ष्णता को छड़ दिया जाए, तो उसके विचार लेखिका के विचारों से बहुत हद तक मेल खाते हैं।[११]

स्त्री समस्या का एक रूप वेश्याओं की समस्या है। वेश्याओं को उनके पेशे से अलग करके उन्हें मिलों, कारखानों में काम दिलवाया जाता है। परंतु सभी मजदूरों के दिलों में समाज-सेवा का भाव नहीं है। इसलिए वे वेश्याओं को समुचित स्त्री-सम्मान नहीं देते। उन्हें रंडी ही मानकर उनके साथ देह-सुख का आनंद उठाने की कोशिश करते हैं। मजदूरों के बीच में रहकर ईमानदारी का जीवन बिताने पर भी इन वेश्याओं को उचित सम्मान नहीं मिलता। उल्टे उनका अत्याचारपूर्ण शोषण होता है और यह अत्याचार वे मजदूर ही करते हैं, जो खुद के शोषण के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। इस संदर्भ में डॉ. इंदुप्रकाश पांडेय का निष्कर्ष है : 'इन अनेक औरतों की कथाओं से चित्राजी नारी-विमर्श की 'थीम' को सर्वोपति स्थान देकर यही बताना चाहती हैं कि समाज के हर वर्ग में नारी-शोषण हो रहा है। वह पुरुषों के शारीरिक शोषण का

साधन है और इस उपभोक्ता समाज में पैसों के बल पर पुरुषों की मरदानगी को साबित करने की कसौटी है और बच्चे जनने के लिए उधार की कोख भी। इस पुरुषसत्तात्मक समाज में नारी को सर्वत्र अपमान का जीवन जीना पड़ रहा है। सम्मानपूर्ण जीवन के लिए इस समाज में नारी के पास, कठिन परिश्रम करते हुए भी, अपनी जमीन नहीं।'[१२]

'आवाँ' में आए नारी-शोषण के विविध कथाओं-उपकथाओं और प्रसंगों के आधार पर डॉ. के. वनजा (चित्रा मुद्‌गल : एक मूल्यांकन) कुछ विचारणीय निष्कर्ष निकालती हैं। वे कहती हैं कि आज जन्म लेते ही बच्चियों को कामलिप्सा का उपकरण बनाने वाले पुरुष हैं। मासूम बच्चियों के प्रति भी ऐसा नीच-निर्मम व्यवहार हमारी सोच के परे है। छोटी बालिकाओं का रिश्ते-नाते के लोग अधिकतर बलात्कार करते हैं। इसलिए इससे सजग होना प्रत्येक माता का फर्ज है। लड़कियों पर कुछ हुआ, तो नमिता की माँ के समान उसे छिपाकर रखने की प्रवृत्ति भी हमारे बीच में है।

डॉ. वनजा एक अन्य सचाई की तरफ ध्यान आकृष्ट करती हैं : पुरुष के भटक जाने का एक कारण पत्नियाँ भी हैं। ये वे नारियाँ हैं, जो पूँजीवाद का उपज हैं। वे पुरुष की जरूरतें न समझकर अपनी मर्जी के मुताबिक जीतीं हैं। वे अपने पतियों को वेश्यालयों या अन्य स्त्रियों के हाथ में फेंककर खुद ऐशो-आराम से जीतीं हैं। संजय कंदोई की पत्नी निर्मला और सिद्धार्थ की पत्नी अणिमा पुरुष को बिल्कुल नकार कर जीने वाली स्त्रियाँ हैं। निर्मला द्वारा परित्यक्त तथा पूर्णरूप से अतृप्त संजय कंदोई ब्यूटीपार्लर में जाकर काम-सुख प्राप्त करता है।

डॉ. किरण श्रीवास्तव 'आवाँ' को सामाजिक विमर्श का महाकाव्य कहती हैं। वे 'आवाँ' के विवेकशील पक्ष पर प्रकाश डालते हुए कहती हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों के अहंकार पर प्रहार करने के लिए तथा उनकी बेहूदगियों का माकूल जवाब

देने के लिए लेखिका न कोई अवसर छोड़ती हैं और न कोई कसर। डॉ. किरण के अनुसार, इस उपन्यास में विशिष्ट बात यह है कि स्त्री-पुरुष के संबंधों, उनके कार्य क्षेत्रों और उनके जीवन के सभी पहलुओं पर खुलकर चर्चा होती है। विशेषकर स्मिता और पवार जैसे पात्र ज्यादा ही मुखर दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं शालीनता को पार करते हुए समाज के मर्मभेदी बिंदु और मानव की बुनयादी कमजोरियों का स्पर्श भी मिलता है। परंपरागत नैतिकता से हटकर नए नैतिक मूल्यों के प्रति आग्रह के साथ ही दैहिक आकर्षण को प्राकृतिक और स्वभाविक मानते हुए उसे मानवीय दृष्टिकोण से देखने का प्रयास भी किया गया है।[१३]

'आवाँ' में एक गौरतलब बात यह है कि लेखिका सम्यक् दृष्टिकोण और समभाव से उपन्यास के प्रत्येक स्थल पर विद्यमान हैं। वे स्त्रियों के शोषण और उन पर होने वाले अत्याचार के लिए स्त्री और पुरुष दोनों को जिम्मेदार ठहराती हैं। साथ ही स्त्री के विकास के लिए स्त्री और पुरुष दोनों के सह-प्रयास की हिमायत करती हैं।

चित्राजी अपने इस उपन्यास में अपने गंभीर चिंतन और अनुभव के आधार पर जीवन की कठोरतम सच्चाइयों से हमें परिचित कराती हैं।

मद्यपान के विरुद्ध ओजस्वी भाषण करने वाली विमलाबेन की वास्तविकता कुछ और ही है। पवार उनके बारे में कहता है : भरी सभाओं में मुट्ठियाँ उछाल-उछालकर मद्यपान के जानलेवा दुष्परिणामों से श्रमिकों को चेताने वाली विमलाबेन गई रात थककर चूर हो जब घर पहुँचती हैं, अंग्रेजी स्कॉच की बोतल हलक से नीचे उतारे बिना पलक नहीं झपकाती।

चित्राजी ने पुरुषों द्वारा की जाने वाली हर हरकत का, हर दुराचार का पर्दाफाश बड़ी बेबाकी से किया है। ऐसे भद्दे और गंदे यथार्थ समाज में घटित हो रहे हैं, इसी

लिए साहित्य उनकी चर्चा होती है और होनी चाहिए। लेखिका की पैनी दृष्टि समाज में बहुत गहरे छिपी हुई बुराई को उघाड़कर सामने लाती है। नमिता को बचपन में ही अपने सगे मौसा की अश्लील हरकत का शिकार होना पड़ा था। समाजशास्त्रियों के सघन सर्वेक्षण से यह हकीकत सामने आई है कि बालिग -नाबालिग लड़कियाँ अपने सगे-संबंधियों की हबस का ज्यादा शिकार होती हैं। इसका सीधा कारण यह है कि इस कार्य के लिए उन्हें आसानी से मौका मिल जाता है। रिश्तों पर लोगों का विश्वास अधिक होता है। यह अलग बात है कि कौन रिश्ता कब धोखा दे जाएगा, यह किसी को मालूम नहीं होता।

आघाड़ी कार्यालय के सभी मजदूर अथक परिश्रम के बावजूद नमिता के पिता को नहीं बचा पाते। परंतु जिस तरह से आघाड़ी के मजदूरों ने चंदा इकट्ठा करके नमिता का आर्थिक सहायता की उससे मजदूरों की उदारता एवं उत्कृष्ट मैत्रीभाव का परिचय मिलता है। एक मजदूर ने तो चंदे के लिए अपनी पत्नी का कंगन तक बेच डाला। तमाम सामाजिक विरोधों के बावजूद नमिता यह तय करती है कि अपने पिता के अस्थि-विसर्जन के लिए वह खुद नासिक जाएगी। इस प्रसंग द्वारा चित्राजी एक प्रगतिशील संदेश समाज को देती हैं कि बेटे और बेटी में अंतर मानना उचित नहीं है।

इस उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि चित्राजी स्त्री-विमर्श के नाम पर कोई अतिवादी दृष्टिकोण नहीं अपनातीं। उनके चिंतन के दायरे में, स्त्री-विमर्श का उद्देश्य केवल पुरुषों की खामियाँ बताना तथा स्त्रियों की तरफदारी करना, उनकी वकालत करना या पुरुषों के अत्याचारों का वर्णन करना नहीं है, बल्कि सच्चा स्त्री-विमर्श तो स्त्रियों की खामियों उजागर करते हुए उनके अहंकार एवं आडंबर का परदाफाश

करना है, जिससे वे उससे मुक्त हो सकें। चित्राजी द्वारा रचित कथा-प्रसंगों से स्त्री-विमर्श की नई संभावनाओं के द्वार खुलते हैं।

इस उपन्यास में चित्राजी ने स्त्री-विमर्श के अलावा कुर्ला से मुलुंड तक फैले मजदूरों के नित्य प्रति के संघर्ष, आशा-आकांक्षा, सुख-दुख तथा चारित्रिक दुर्बलताओं को जिस साहस एवं प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है, वह चकित कर देनेवाला है। इसका अति भयानक उदाहरण है गोदरेज सोप फैक्ट्री में काम करने वाला किरप दुसाध, जो गर्भवती वेश्या अनीसा के साथ जबरदस्ती करना चाहता है; और अपने इरादे में सफल न होने की स्थिति में उसके पेट में इतनी जोर से लात मारता है कि अनीसा का बच्चा पेट से बाहर आ जाता है। इस जघन्य कृत्य का इतना जीवंत चित्रण करना सामान्य बूते की बात नहीं है।

'आवाँ' के बारे में डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय का कहना है कि 'आवाँ' वर्तमान उत्तर आधुनिक दौर के बड़े फलक को चित्रित करने वाला उपन्यास है, जिसमें लेखिका का जीवनानुभव तथा समाजशास्त्रीय ज्ञान अत्यंत व्यापक परिधि का संस्पर्श करता है। नारी जीवन के तमाम प्रश्नों एवं स्तरों को इतने वैचारिक धरातल पर चित्रित करने वाला दूसरा उपन्यास शायद ही हो। इसके अलावा यह उपन्यास मुंबई के श्रमिक आंदोलन के भटकाव, आंतरिक प्रतिद्वंद्विता तथा दुर्बलताओं का भी अतिशय सटीक निर्वचन करता है। इस उपन्यास का गौरव इस बात में है कि यह किसी हिंदी लेखिका का व्यापक सामाजिक सरोकारों का निदर्शन करने वाला पहला महाकाव्यात्मक उपन्यास है।[१४]

३. गिलिगडु :

'गिलिगडु' चित्राजी का तीसरा उपन्यास है। यह आकार में बड़ा नहीं है,

परंतु अपनी विषय वस्तु की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

इस उपन्यास की मूल संवेदना वृद्धों के अकेलेपन की त्रासदी है। जिसका कोई न हो, वह तो अकेला होता ही है; परंतु जिसका भरापूरा परिवार हो, उसके लिए अकेलेपन का दंश सहना बड़ा कठिन होता है। इस उपन्यास में चित्राजी ने वृद्धों के मनोविज्ञान को आधार बनाकर, नई पीढ़ी द्वारा उनके प्रति किए जाने वाले दुर्व्यवहार का चित्रण किया है, जो लेखिका के व्यापक और प्रौढ़ अनुभव का प्रमाण है।

इस उपन्यास में दो वृद्धों के जीवन संदर्भों के माध्यम से वृद्धजनों की दुर्दशा का वर्णन किया है। वे दो वृद्धजन हैं - सेवानिवृत्त इंजीनियर बाबू जसवंत सिंह और सेवानिवृत्त कर्नल विष्णु नारायण स्वामी। बाबू जसवंत सिंह अपनी पत्नी के अवसान के बाद कानपुर से अपने बेटे नरेंद्र के पास दिल्ली आए हैं तथा कर्नल स्वामी के तीन बेटे हैं, जो पढ़-लिखकर अलग-अलग शहरों में नौकरियाँ कर रहे हैं। सेवानिवृत्त होने तथा पत्नी के दिवंगत हो जाने के बाद वे दिल्ली वाले बेटे के पास रहने चले आते हैं। परंतु दोनों बुजुर्ग दिल्ली आकर अपने-अपने बेटों द्वारा उपेक्षा का शिकार होते हैं। एक दिन सुबह में टहलने के समय दोनों की मुलाकात होती है। दोनों समदुखिया हैं, इसलिए जल्द ही दोनों में मैत्री हो जाती है।

इस उपन्यास में सेवानिवृत्त बुजुर्गों की एकरेखीय कहानी नहीं है; बल्कि इसमें जीवन अपने बहुरंगी आयामों में प्रतिबिंबित होता है। आज परिवार में बुजुर्गों की स्थिति क्या है, इसे चित्राजी ने बड़ी आत्मीयता से चित्रित किया है। इस कथा के माध्यम से वे यह स्पष्ट करना चाहती हैं कि आज परिवार में वृद्ध नीति-निर्धारक और शासक की भूमिका से स्थानांतरित हो चुके हैं। आज परिवार के अंतःसूत्रों के संचालन में प्रेममय संबंधों की स्थिति समाप्त हो चुकी है। आज परिवार और समाज में बुजुर्गों

की उपेक्षा का यह आलम है कि जब बूढ़े लोग हास्य संघ बनाकर सुबह हँसने का कार्यक्रम चलाते हैं, तो उन्हें रोक दिया जाता है। वृद्धों के प्रत्येक क्रिया-कलाप पर टीका-टिप्पणी होती है। जसवंतसिंह अगर लिफ्ट का दरवाजा खुला छोड़ दें, तो उनकी शिकायत होती है; परंतु दूध वाला, अखबार वाला यह कार्य करता है, तो उसे कोई कुछ नहीं कहता।

वैसे तो 'गिलिगडु' दो वृद्धों के मात्र तेरह दिनों के संग-साथ की कथा है; परंतु उसकी गहरी मार्मिक व्यंजना आधुनिक बनने की होड़ में लगे समाज के खतरों के रूप में की गई है। आज जिस भोगवादी-व्यक्तिवादी स्वार्थी मनोवृत्ति की तरफ मनुष्य बढ़ रहा है, उससे होने वाले दूरगामी प्रभाव की ओर लेखिका ने स्पष्ट संकेत किया है। इस उपन्यास के बारे में डॉ. विश्वमोहन तिवारी का कहना है कि रूप और कथ्य के गहरे संबंध से संयुक्त इस उपन्यास में वृद्धों की समस्या को लेकर संवेदनशील उपन्यास लिखकर लेखिका ने अतिरिक्त साहस और साहित्यिक जिम्मेदारी का जो रचनात्मक कार्य किया है, वह वृद्धों के लिए साहित्यिक रेगिस्तान में एक महत्त्वपूर्ण 'ओएसिस' का कार्य करेगा।[१५]

आज के सामाजिक आदर्श को ढहते हुए देखकर चित्राजी इस कृति के माध्यम से बार-बार यह दर्शाती हैं कि सुखी और समृद्ध समाज का आधार पारिवारिक प्रेम ही हो सकता है। आज घर का आधार प्रेममय संबंध निर्धारित नहीं करता, बल्कि शक्ति निर्धारित करती है। इस भोगवादी धारा में ज्यों ही प्रेम का स्थान शक्ति अथवा धन ले लेता है, त्यों ही समाज का पतन शुरू हो जाता है और परिवार दुखी होने लगते हैं। वृद्धों के प्रति दुर्व्यवहार और उनकी अवमानना हमारी परंपरा की अवहेलना और अवमानना है।

आधुनिकता के इस युग में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और इसका सबसे अधिक दुष्परिणाम घर के बुजुर्गों को भुगतना पड़ रहा है। आज उनकी अहमियत, घर के किसी कोने में पड़े टूटे-फूटे सामान ज्यादा नहीं रह गई है। वे न अपने बेटे को लिए कोई महत्त्व रखते हैं, न बहू के लिए और न अपने पोते-पोतियों के लिए। घर में आज उनकी जगह टी. वी. और कंप्यूटर ने ले ली है।

डॉ. गोरक्ष थोरात ने ठीक ही लिखा है कि चित्रा मुद्गल के 'गिलिगडु' उपन्यास में आज की विघटनात्मक पारिवारिक परिस्थिति से उत्पन्न घर के बुजुर्गों की करुणाजनक अवस्था का चित्रण है। चाहे नरेंद्र हो, बहू सुनयना हो या पोते मलय-अनिल हों अथवा कर्नल स्वामी के परिवार के सदस्य हों - हर कोई कल की चिंता में अपने आज को मार रहा है। घर के सभी सदस्यों को उन्नति की भूख ने इस प्रकार विक्षिप्त बना दिया है कि उनके लिए अपने पिता, ससुर, दादाजी घर के नौकर से भी कम अहमियत रखते हैं, लेकिन जैसे ही रुपये-पैसों की या जमीन-जायदाद की बात आती है, वे उनके तलुवे सहलाकर अपनी अवसरवादिता का परिचय देते हैं।[१६]

आजीवन जिस परिवार के लिए अपना सब कुछ गँवा दिया, उस परिवार की उपेक्षा टूटे हुए वृद्धों की समस्या आज भारतीय समाज की एक विकट समस्या है। सरकार ने भले ही वृद्धों की रक्षा के लिए कानून बना दिया हो, परंतु उस कानून का सहारा लेकर अपने हक के लिए लड़ने में कितने वृद्ध समर्थ हैं, यह एक सवाल है। कानून कुछ हद तक ही सहायक बन सकता है। जब तक हमारी मानसिकता में सुधार नहीं आएगा, तब तक यह समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी। परंतु इस उपभोगतावादी माहौल में नई पीढ़ी की मानसिकता में कोई परिवर्तन आना संभव नहीं दिखाई देता।

संयुक्त परिवार व्यवस्था में परिस्थिति इतनी खराब नहीं थी। संयुक्त परिवारों

में बुजुर्गों के प्रति पर्याप्त आदर-सम्मान का भाव होता था। बुजुर्ग पूरे परिवार के अधिकारी समझे जाते थे। परिवार में उनकी निर्णायक भूमिका होती थी। परिवार के बुजुर्गों की सेवा-शुश्रूषा परिवार के दूसरे सदस्य प्रेम से और अपना कर्तव्य मानकर करते थे। सिर्फ अपने परिवार के ही नहीं दूसरे लोग भी उनके जीवनानुभवों से सीख ग्रहण करते थे। लेकिन आज परिस्थिति बदल गई है। आज तो लोग बुजुर्गों की राय लेने के बजाय अपना निर्णय उन पर थोपते हैं।

'गिलिगडु' के अध्ययन से वृद्धजनों से संबंधित अनेक प्रश्न उभरकर हमारे सामने आते हैं। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि आखिर क्यों वृद्ध-समस्या दिनों-दिन इतनी विकराल बनती जा रही है? विचार करने पर लगता है कि भारतीय समाज में संयुक्त परिवार का विघटित होना इसका मुख्य कारण है।

अकेलेपन की पीड़ा बहुत दुखदायी होती है - खासकर तब जब तन और मन दुर्बल हो जाते हैं। तन और मन के स्वस्थ रहने पर आत्मविश्वास व्यक्ति का साथ देता है। यह सचाई बाबू जसवंतसिंह की कथा से बखूबी प्रकट होती है। वे पत्नी के निधन के बाद अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए अपने मित्र अहलुवालिया की सलाह से अपने बेटे के पास दिल्ली आ जाते हैं; परंतु विडंबना यह होती है कि दिल्ली आकर वे और अधिक अकेले हो जाते हैं। भरेपूरे घर में अकेले। अपने बेटे-बहू, पोते-पोतियों के साथ रहते हुए भी अकेले।

बाबू जसवंत सिंह अकेलेपन के क्षणों में अपने प्रेम को याद करते हैं - उस ऊष्मापूर्ण प्रेम को, जो पढ़ाई के दौरान हुआ था; परंतु साहस के अभाव में नष्ट हो गया था। पुरानी स्मृतियाँ बुढ़ापे में संबल का काम करती हैं। वे सुनगुनिया के भरेपूरे परिवार के प्रति आकृष्ट होते हैं, जो कानपुर में उनकी देखभाल किया करती थी। उनको

लगने लगता है कि उस परिवार में मेरे कोई स्थान हो सकता है। बेटे नरेंद्र को तो पिता से नहीं, पिता की संपत्ति से प्रेम है।

अंततः वे कर्नल साहब के विचारों से प्रेरणा लेकर कानपुर वापस लौटने का साहसपूर्ण निर्णय लेते हैं। बाबू जसवंत सिंह के इस निर्णय द्वारा चित्राजी एक महत्त्वपूर्ण और क्रांतिकारी संदेश देना चाहती हैं। वह संदेश है - अपने ऊपर हो रहे अत्याचार के प्रति सजग होकर उसके विरुद्ध लड़ना जरूरी है। जसवंत सिंह कर्नल की जिंदगी से प्रेरणा लेकर अपनी वसीयत बदल देते हैं। वे अपनी सारी संपत्ति सुनगुनिया के नाम कर देते हैं। उसके नाम वे बैंक में लॉकर भी खेलते हैं। वे सुनगुनिया से पूछकर वे अपनी वसीयत में यह भी लिखवा देते हैं कि मेरी मरणोत्तर क्रिया सुनगुनिया के बेटे रामरतन तथा अभिषेक ही करेंगे।

दूसरी तरफ कर्नल स्वामी की जीवन गाथा है। उपन्यास में चित्रित कर्नल स्वामी के जीवन के बारे में डॉ. के. वनजा का कहना है कि 'गिलिगडु' उपन्यास में कर्नल स्वामी के द्वारा चित्राजी ने जिस फैंटेसी का निर्माण किया है, उसमें संयुक्त परिवार का सुंदर सपना है। लेकिन वह सपना मात्र रह जाता है। वह सफल नहीं बन पाता। इस आदर्श परिवार की अतिकाल्पनिक कथा सुनकर हम सब खुशी महसूस करते हैं। वजह है कि हम सब ऐसा स्नेह, सहयोग, आनंद, शांति, बच्चों की चहल-पहल, बुजुर्गों का आदर आदि से भरापूरा परिवारिक माहौल चाहते हैं। यह उपन्यासकार का नोस्टेल्जिया है - साथ ही साथ हम सब का।[१७]

कर्नल स्वामी अपने परिवार के बारे जसवंतसिंह से जो कुछ बताते हैं, वह सचमुच स्पृहणीय है। कर्नल स्वामी के अनुसार उनकी पत्नी कई साल पहले गुजर गईं। घर में उनके तीन बेटे और तीन बहुएँ हैं। बड़े बेटे के दो बेटे हैं, मझले बेटे

की दो बेटियाँ हैं तथा छोटे बेटे की अभी कोई संतान नहीं। पूरा परिवार एक साथ रहता है। अपना-अपना फ्लैट बना लेने के बावजूद बेटे उन्हें छोड़कर अलग नहीं रहना चाहते। इसी लिए वे अपने फ्लैट किराये पर दे रखे हैं।

परिवार के सभी सदस्य कर्नल का आदर-सम्मान करते हैं। उनकी इच्छा के अनुसार बहुएँ भोजन बनती हैं। घर के बुजुर्ग होने के नाते कर्नल साहब सभी की समस्याओं को सुलझाते हैं। उनके शब्द ही अंतिम शब्द होते हैं - आदि-आदि।

परंतु, वास्तविकता इसके विपरीत है। कर्नल स्वामी के जीवन की वास्तविकता जान लेने के बाद जसवंतसिंह को बहुत आघात लगता है।

वास्तव में कर्नल स्वामी का यह सपना चित्राजी की आदर्श परिवार की परिकल्पना है। अर्थात् संयुक्त परिवार में विविधता कायम है, उसमें हमें जीवन रस मिलता है। अणु परिवार की एकरसता से हम ऊब जाते हैं। वहाँ विकल्प की गुंजाईश नहीं है।

(ख) कहानियाँ :

चित्रा मुद्‌गल ने अपने रचना कर्म का आरंभ कहानी लेखन से किया। अर्थात् वे पहले कहानीकार हैं बाद में उपन्यासकार। बड़े घर की बेटी होकर भी चित्राजी ने अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा निम्नवर्ग और अभावग्रस्त लोगों के साथ बिताया; उनके सुख-दुख में हिस्सेदार बनीं और उनके लिए संघर्ष किया। इस कारण उनकी कहानियों का फलक बहुत विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है। अपने अनुभवों के खुरदुरे यथार्थ को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है।

चित्रा मुद्‌गल की कहानियों का केंद्रीय विषय नारी-मुक्ति और दलित-चेतना है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक विद्रूपताओं को इनकी कहानियाँ तीखे स्वर में व्यक्त करती हैं। अपने कहानी-संग्रह ‘लपटें’ की भूमिका में वे लिखती

हैं : 'जाहिर है कि हम अभिव्यक्ति के खालिस व्यक्तिवादी रवैये के अनुगामी होकर सामाजिक सरोकारों के प्रति शब्द-शक्ति को प्रज्वलित नहीं कर सकते; बेचैनियों को सामूहिक चेतना का आधार नहीं बना सकते। सामूहिक चेतना को क्षीण न होने देने के लिए जरूरी है शब्दकर्मी का अपने वजूद की परिभाषा से टकराना। कलम की दराँती को छद्म के पाश से मुक्त करना।'[१८]

चित्राजी अपनी कहानियों के माध्यम से परंपरागत मान्यताओं और रूढ़िगत संस्कारों की परख और पहचान करती हैं। बेड़ियों में जकड़े समाज को स्वतंत्र करके नए मूल्यों की प्रतिष्ठा की पक्षधर चित्राजी खुले मन की लेखिका होने के नाते विचारों के स्तर पर तमाम ज्वलंत मुद्दों को चुनौती देती हैं और आज के दलित विमर्श तथा नारी विमर्श को नया आयाम देती हैं।

चित्राजी के कथा फलक का फैलाव इतना व्यापक है कि वह अपने आप में युगीन परिवेश के सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को, यातायात, आवास, भीड़, शोर-शराबा, प्रदूषण जैसे महानगरीय बोध को, बाल, किशोर, युवा, वृद्ध आदि की संवेदनाओं एवं समस्याओं को, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, नगरी जीवन की राजनीति, ग्राम्य जीवन की राजनीति, सत्ता की राजनीति, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, जातिवाद, नेताओं के देहरे चरित्र, सभी वर्गों की आर्थिक समस्याओं से लेकर वैश्वीकरण के प्रभाव तक को समेटे हुए है।

आगे, चित्राजी की, विषय-वस्तु की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण कहानियों की चर्चा निम्नलिखित उपशीर्षकों के अंतर्गत की जाएगी :

(१) नारी जीवन संदर्भों से संबंधित कहानियाँ।

(२) पारिवारिक रिश्तों से संबंधित कहानियाँ।

(३) अभाव और गरीबी से संबंधित कहानियाँ।

(४) राजनीतिक संदर्भों की कहानियाँ

(५) सांप्रदायिकता और प्रादेशिकता के संदर्भ की कहानियाँ

(६) मूल्यों के बदलते रूप से संबंधित कहानियाँ।

(७) भिक्षावृत्ति और वेश्यावृत्ति से संबंधित कहानियाँ।

(१) नारी जीवन संदर्भों से संबंधित कहानियाँ :

नारी जीवन संदर्भ चित्राजी की कहानियों का केंद्रीय विषय है। उनकी ज्यादातर कहानियों में नारी अपने बहुविध रूपों में चित्रित हुई है - जैसे कि शिक्षित नारी-अशिक्षित नारी, कार्यालयों में काम करने वाली, घरों में काम करने वाली नारी, बच्ची, किशोरी, युवा, प्रौढ़ा, वृद्धा नारी, यौन-शोषण की शिकार नारी, आर्थिक शोषण की शिकार नारी, वेश्यावृत्ति और भिक्षावृत्ति करने वाली नारी, स्वावलंबी या आत्मनिर्भर नारी तथा चौखट की कैद में रहने वाली घरेलू नारी, पुरुष के द्वारा उत्पीड़ित नारी, नारी के द्वारा उत्पीड़ित नारी आदि।

आज स्त्रियाँ पुरुषों के समान हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं। पुरुष वर्चस्व वाले समाज में विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए अपने परिश्रम और लगन के बल पर देश और समाज का गौरव बढ़ा रही हैं। परंतु दूसरी तरफ पुरुष वर्ग स्त्रियों की इस सफलता को पचा नहीं पाता। वह तरह-तरह से उसे उत्पीड़ित और अपमानित करने में लगा रहता है। चित्राजी ने इस तरह के नानाविध संदर्भों को आधार बनाकर ढेर सारी कहानियाँ लिखी हैं।

इसी तरह की एक कहानी है 'प्रमोशन'। इस कहानी में, कामकाजी महिला ललिता को ऑफिस में प्रमोशन मिलता है। इस समाचार से उसका पति सुभाष खुश

होने के बजाय यह संदेह करने लगता है कि निश्चय ही ललिता का अपने बॉस डॉ. कोठारी के साथ अनैतिक संबंध है। इसलिए वह ललता से नौकरी छोड़ देने के लिए कहता है। परंतु ललिता निर्भीक, स्वावलंबी और स्वतंत्र विचारों वाली महिला है। वह सुभाष को मुँह पर जवाब दे देती है : 'न नौकरी मैंने तुमसे पूछकर की थी और न तुम्हारे कहने पर छोड़ूँगी।'[१९]

ललिता सुभाष की संकीर्णता सह नहीं पाती। सुभाष जब नौकरी छोड़ने के लिए धमकाता है, तब वह उबल पड़ती है : 'सोचना मुझे नहीं है सुभाष! सोचना तुम्हें है। ... मानसिक रूप से रुग्ण तुम हो मैं नहीं ... कान खोलकर सुन लो! तुम्हारी कुंठाओं द्वारा रचा गया सत्य मेरी नियति नहीं बन सकता।'[२०]

'ताशमहल' कहानी की शोभना भी आत्मनिर्भरता का वरण करने वाली स्त्री है। अपने प्रथम पति दिवाकर के दिवंगत हो जाने के बाद उसके जीवन में निशीथ आता है और वह शोभना को इस शर्त पर शादी के लिए राजी करने में सफल हो जाता है कि वह उसके पूर्व पति के बेटे के रहते अपनी संतान की जिद नहीं करेगा। परंतु ऐसा संभव नहीं हो पाता और शोभना को निशीथ से पुत्र रोनू पैदा होता है। उसके बाद निशीथ बच्चू के साथ सौतेला व्यवहार करने लगता है। यह स्थिति शोभना से बर्दाश्त नहीं होती और वह निशीथ से अलग हो जाती है। इस कहानी पर वेदप्रकाश अमिताभ ने बहुत सही टिप्पणी की है : 'कहानी के अंत में तबादले जाने की शोभना की स्वीकृति एक निर्णय मात्र नहीं है, जीवन को अपमानजनक शर्तों पर न जीने के साहस की सहज अभिव्यक्ति भी है।'[२१]

इसी तरह 'बावजूद इसके' की प्रीति एक ऐसी स्थिति में फँसी नौकरी पेशा स्त्री है, जो एक तरफ पति द्वारा प्रताड़ित होती है तथा दूसरी तरफ उसका सगा भाई

उसका आर्थिक शोषण करता है। परंतु सारी स्थितियों को जान लेने के बाद उसका आत्मसम्मान जागृत होता है और वह जिंदगी भर दूसरों से भागते रहने के बजाय अपनी जिंदगी खुद जीने का निश्चय करती है।

समाज में हमेशा शोषण का शिकार बनने वाला वर्ग है नारी। नारीवाद तथा नारी शिक्षा के चलते नारी में यद्यपि थोड़ी सजगता आई है, तथापि उसकी पूर्ण मुक्ति होने की संभावना अभी कम ही है। चित्रा मुद्‌गल की कहानियों में स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं पर, स्त्री की कमजोरियों एवं उसकी खूबियों सहित, उसके जीवन संघर्ष पर प्रकाश डाला गया है। स्त्री जीवन की दर्द भरी दास्तान के साथ निम्नमध्यवर्गीय एवं सबसे निम्नवर्गीय जीवन की त्रासदियों एवं संघर्ष चेतना को चित्राजी की कहानियों में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।[२२]

‘ट्रेन छूटने तक’ एक ऐसी कहानी है, जिसमें संघर्षशील नारी जीवन का एक भयानक पहलू अनावृत हो उठता है। इस कहानी में एक ओर दफ्ती वातावरण में स्त्री के प्रति पुरुषों की मानसिकता अभिव्यक्त हुई है, तो दूसरी तरफ अपने ही घर में, एक स्त्री द्वारा यानी खुद उसकी माँ द्वारा उसका कैसे शोषण होता है - इन दो स्थितियों की भयानकता अंकित है।

इस कहानी की नायिका शुभा की जिंदगी में जो अवसाद छा गया है, असल में वह इस कहानी की नब्ज है। वह दफ्तर में टाइपिस्ट का काम करती है। अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए बाहर का भी काम करती है। घर में माँ और भाई दोनों का खर्च शोभा के ही सिर पर है। बेटा निकम्मा है और बेटी कमाऊ है। इसलिए माँ उसका ब्याह नहीं करना चाहती। इसलिए शुभा का प्रेमी रवि दूसरी लड़की से शादी कर लेता है। परंतु थोड़े समय के बाद उसका तलाक हो जाता है। रवि फिर शुभा के सामने

शादी का प्रस्ताव रखता है। इसलिए आज शुभा उससे मिलने जा रही है। ट्रेन पकड़ने की परेशानी में वह दौड़ रही है। उसे यही चिंता सता रही है कि कहीं उसे पहुँचने में देर हो गई तो रवि चला न जाए!

शुभा की परेशानी भरी कहानी के साथ चित्राजी ने दफ्तर में काम करने वाली रोजाना ट्रेन में, भीड़ में छेड़खानी तथा अपमान सहतीं युवतियों की मनोव्यथा और उनकी दिनचर्या का चित्र भी किया है।

कामकाजी महिलाओं के जीवन संघर्ष का एक अन्य उदाहरण है 'दरमियान' कहानी। नौकरीपेशा औरतों को, परिवार को, छोटे बच्चों को अपने से अलग रखने का अपराधबोध, दफ्तरों में काम करते हुए लगातार वहाँ के माहौल और किस्से-कहानियों को झेलते से जो खीझ, पीड़ा तथा अपमान का एहसास होता है, उसका बारीक चित्रण इस कहानी में हुआ है।

आकांक्षा एक अखबार के दफ्तर में काम करती है। लड़कियों के मामले में उसका दफ्तर कुछ ज्यादा ही बदनाम है। वैसे भी दफ्तर में काम करने वाली लड़कियों का मजाक बनाना दफ्तर का स्वभाव है। नलिनी नामक लड़की के साथ समलैंगिकता का आरोप लगाने पर दफ्तर में हंगामा मच गया। आकांक्षा इन सभी का जोरदार विरोध करती है। आकांक्षा के इस प्रतिरोध से एक बात स्पष्ट होती है कि स्त्री अपने अपमान का विरोध करने के लिए सजग होने लगी है। वैसे साधारणतया स्त्री के ऐसे प्रतिरोध के साथ खड़े होने में दूसरी स्त्री साथ नहीं देती।

आकांक्षा दफ्तर के ऐसे वातावरण से परेशान तो है ही - घर की झंझट भी उसे परेशान करती है। अपनी डेढ़ साल की बच्ची मिनी को 'शिशु विकास केंद्र' में छोड़कर उसे दफ्तर जाना पड़ता है। ऐसी हालत में दफ्तर और घर के बीच की यात्रा

और भी कठिन बन जाती है। आकांक्षा का पति उससे कहता भी है कि अब छोड़ो भी नौकरी-फौकरी का चक्कर; घर बैठो! जैसे भी चलेगा चलाएँगे। पर, इस गुड़िया को यूँ छोड़कर जाना अखरता है। पर आकांक्षा अच्छी तरह जानती है कि बढ़ते खर्च को निपटाने के लिए पति और पत्नी दोनों को नौकरी करनी ही पड़ेगी।

'मुआवजा' नामक कहानी की शैलू एअर होस्टेस है। आतंकवादियों द्वारा विमान अपहरण के दौरान यात्रियों को बचाते हुए वह मारी जाती है। उसकी साहसिक मृत्यु के उपलक्ष्य में उसको पुरस्कार और नियमानुसार मुआवजा मिलता है। मुआवजा का समाचार सुनकर उसका पति, जो वर्षों से उससे अलग रह रहा था, अधिकार और कानून का हवाला देकर, मुआवजा प्राप्त करने के लिए हाजिर हो जाता है। मजे की बात यह है कि जब वह नौकरी करती थी तब वही पति स्वतंत्र रूप से काम करने से उसे रोकता था। सिगरेट से शैलू को उसने दागा भी था।

इस कहानी में चित्राजी ने समाज की उस प्रवृत्ति को बेनकाब किया है, जिसके तहत पुरुष नारी का जीवन भर शोषण तो करता ही है, परंतु उसकी मौत के बाद भी वह उस पर अपना दावा बनाए रखना चाहता है। उसके जिंदा रहते भले ही उससे घृणा करता रहा हो, उसकी भावनाओं से खेलता रहा हो, लेकिन धन की बात आते ही बेशर्मी से वह उसके धन पर अपना अधिकार जताता है।[२३]

'हस्तक्षेप' कहानी विज्ञापन के क्षेत्र में काम करने वाली अंकिता और नीता नामक दो महिलाओं की कहानी है। इस कहानी में स्त्री की आजादी पर कई प्रश्न उठाए गए हैं और अनेक भ्रांत धारणाओं पर गंभीर विचार-विमर्श किया गया है। इस मुद्दे को लेकर अंकिता और नीता के बीच जो बहसें होती हैं, उनसे स्त्री स्वातंत्र्य से संबंधित अनेक गुत्थियाँ खुलती हैं। नीता आधुनिकता की दुहाई देती है और अंकिता

उस तथाकथित आधुनिकता की पोल खोलती है।

इस कहानी में नारीवादी भ्रामक धारणा को लेकर अंकिता और नीता के बीच होने वाली बातचीत के द्वारा कहानीकार चित्रा मुद्‌गल अंकिता का समर्थन करती हैं। नारी स्वातंत्र्य की पक्षधर चित्राजी नारी स्वतंत्र्य के उच्छृंखल रूप को बिल्कुल मान्यता नहीं देतीं। इस कहानी द्वारा नारीवाद को समझने में बहुत मदद मिलती है।

'लाक्षागृह' की सुनीता भी एक कामकाजी युवती है। वह रेलवे में अच्छे पद पर काम करती है। परंतु उसका दुर्भाग्य यह है कि वह खूबसूरत नहीं है। उसकी छोटी बहनों की शादी हो जाती है, परंतु वह कुँवारी ही रह जाती है। वह शादी करके घर बसाना चाहती है - जैसी कि सभी स्त्रियों की लालसा होती है। परंतु उसे कोई पसंद ही नहीं करता। उसके दफ्तर में काम करने वाला सिन्हा नाम का एक व्यक्ति उससे शादी का प्रस्ताव करता है, तो वह खुशी से झूम उठती है। परंतु जब उसे पता चलता है कि सिन्हा उससे नहीं उसकी नौकरी से शादी करना चाहता है, तो वह मानो आसमान से जमीन पर गिर पड़ती है।

इस कहानी का निहितार्थ यह है कि नारी पुरुष की नजर में अभी भी शरीर से ऊपर नहीं उठ पाई है।

चित्रा मुद्‌गल ने कामकाजी महिलाओं के जीवन की विडंबनाओं के अनेक पहलू अपनी कहानियों में चित्रित किया है। 'स्टेपनी' कहानी में ऐसी ही एक महिला की व्यथाकथा प्रस्तुत की गई है। आभा ऐसी ही एक कामकाजी औरत है। उसका पति भी नौकरी करता है। पति-पत्नी दोनों नौकरी पर चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में वह अपनी छोटी बच्ची को दिन भर के लिए क्रेश में छोड़ जाती है और घर का कामकाज करने के लिए बताशा नाम की एक बाई रखे हुए है।

महानगरों में आसपास के फ्लैट वाले बाइयों की वेशभूषा और उनके चाल-चलन को हमेशा शक की निगाह से देखते हैं। एक दिन पड़ोस की मिसेज खन्ना ने आभा के मन में उसके पति और बाई के संबंध को लेकर शंका का बीज बो दिया, जो थोड़े ही समय में बढ़कर वटवृक्ष बन गया। घर के काम के दबाव की वजह से वह बताशा को निकाल नहीं सकती थी और पति से बताशा और उसके संबंध को लेकर प्रश्न भी नहीं कर सकती थी। इसी असमंज में जीना उसकी नियति थी।

यह कहानी नगरीय जीवन की सचाइयों की ओर संकेत करती है। एक तरफ नौकरी पेशा नारी जीवन की व्यथा और दूसरी तरफ बाइयों को शंका की नजर से देखने वाला हमारा समाज। बाकी बचा काम घर बैठी वे पड़ोसिनें पूरा करती हैं, जो दूसरों की मदद करने की जगह उनकी जिंदगी की मुसीबतों को बढ़ाती रहती हैं।

इस कहानी में यह जाहिर नहीं होता कि बाई बताशा और विनोद के बीच कोई अनैतिक संबंध है भी या नहीं।

विधवा अथवा परित्यक्ता कामकाजी स्त्रियों की समस्या विवाहित अथवा परिवार वाली स्त्रियों से भिन्न होती है। 'शून्य' ऐसी ही एक स्त्री की कहानी है, जिसमें प्रेम, प्रतारड़ा और वैवाहिक जीवन की टूटन, नारी शोषण आदि को मुद्दा बनाया गया है। राकेश, बेला और सरला इस कहानी के मुख्य पात्र हैं। राकेश और बेला दोनों एक ही दफ्तर में काम करते हैं। बेला का पति प्रोफेसर है। वह बेला को मारता-पीटता है। इस नाते राकेश के मन में बेला के प्रति पहले हमदर्दी पैदा होती है; परंतु जल्दी ही हमदर्दी प्रेम में बदल जाती है। यह सब जानते हुए भी राकेश और सरला के घर वाले यह सोचकर दोनों की शादी कर देते हैं कि शादी के बाद सब ठीक हो जाएगा। परंतु ऐसा हो नहीं पाता। शादी के बाद भी राकेश बेला से संबंध बनाए रखता है

और सरला को भयानक रूप से प्रताड़ित करता है।

सारी प्रतारणाओं के बावजूद सरला राकेश के साथ समझौता कायम रखती है। फिर भी राकेश बेला के साथ शादी कर लेता है। सरला और राकेश का तलाक हो जाता है। सरला चारों तरफ से 'शून्य' से घिर जाती है। न चाहते हुए भी बेटे दीपू को, अदालत के आदेशानुसार, पालन-पोषण के स्वीकारना पड़ता है। सरला की विवशता पर कहानीकार की परेशानी इन शब्दों में व्यक्त हुई है : 'एक तलाकशुदा औरत का निभाव समाज में सहज है? फिर जिसकी गोद में बच्चा टँगा हो, उसकी जिंदगी में तो वैसे ही सैकड़ों पूर्ण-विराम लग जाते हैं। उसके जीने के सारे हक खत्म हो जाते हैं। चारों तरफ होती हैं संदिग्ध, लांछित करती निगाहें, सैकड़ों प्रश्नचिह्न ...।'[२४]

इस कहानी में दो स्त्रियाँ हैं। दोनों अपनी-अपनी स्थिति में पुरुष से प्रताड़ित हैं। परंतु सवाल यह उठता है कि क्या राकेश ही पूरा दोषी है? उसके परिवार वालों का कोई दोष नहीं है, जो सारी सचाई जानते हुए भी राकेश और सरला की शादी कर देते हैं।

आधुनिक युग में भी हमारे समाज में ऐसे पुरुषों की कमी नहीं है, जो पत्नी को केवल शोभा की वस्तु समझते हैं। उसकी रोटी, कपड़ा, मकान आदि बुनियादी जरूरतों की पूर्ति करके अपना कर्तव्य पूरा समझते हैं। 'हमारे खानदान में औरतें नौकरी नहीं करतीं' जैसे खोखले जुमलों के सहारे औरतों को नौकरी करके आत्मनिर्भर होने से रोका जाता है और उन पर मनमाना अत्याचार किया जाता है।

'इस हमाम में' कहानी में सोमेश की पत्नी पढ़ी-लिखी होने के बावजूद सुखी होने का नकली मुखौटा लगाकर सोमेश के सारे अत्याचार मूक होकर सहती चली

जाती है। इसके विपरीत उनके फ्लैट का कचरा उठाने वाली अंजा दो पतियों को छोड़कर तीसरे पति के साथ अपना घर बसा रही है; क्योंकि वह पति के जुल्म को नहीं सह सकती।

इस कहानी में चित्रा जी ने इस बात पर जोर दिया है कि निम्नवर्ग हो या मध्यवर्ग, हर स्तर पर स्त्री पर अत्याचार होते रहते हैं। निम्नवर्ग में इन अत्याचारों का स्वरूप मार-पीट तथा आर्थिक अभाव का है, तो मध्यवर्ग में यह मानसिक यातनाओं का है। इस दृष्टि से चित्राजी का यह कथन बड़ा ही सूचक है कि 'आदमी और जगह बदल देने से जिंदगी थोड़े ही बदल जाती है।'[२५]

डॉ. माहेश्वर के मतानुसार : 'पूँजीवादी सामंती समाज में औरत की स्थिति पर यह कहानी करारी चोट करती है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और बौद्धिक रूप से विकसित स्त्री पर भी उसका पति किस तरह हावी है और एक पुरुष के बदले दूसरे का साथ कर लेने से औरत की सामाजिक स्थिति या हैसियत में कोई परिवर्तन नहीं आता। इस सचाई को अनपढ़ नौकरानी अपनी मालकिन विद्या की अपेक्षा ज्यादा शिद्दत से महसूस करती है।'[२६]

'अभी भी' नामक कहानी की शिल्पा भी पढ़ी-लिखी स्त्री है। उसके पाइलट पति मुकेश की एक दुर्घटना में मृत्यु के बाद उसकी सास उसका ब्याह उसके देवर सुरेश से करा देती है; ताकि मुकेश की मृत्यु के बाद मिलने वाले पैसे पर शिल्पा का एकाधिकार न रह जाए।

आधुनिक काल में पति की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति की उत्तराधिकारी उसकी पत्नी होती है। उस संपत्ति को हथियाने के लिए घर वाले तरह-तरह के हथकंडे करते हैं। इस कहानी में इसी का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। भारत भारद्वाज

इस कहानी पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं : 'इस कहानी की शिल्पा मूलतः विद्रोही प्रकृति की नारी नहीं है। पारिवारिक प्रतिष्ठा के नाम पर सास के कहने पर अपने पति की मृत्यु के बाद अपने देवर से उसने पुनर्विवाह भी किया। लेकिन जब उसे पता चला कि यह सारा नाटक उसके पैसों के लिए किया गया था, तब वह विद्रोह कर बैठती है।'[२७]

'शिनाख्त हो गई है' कहानी कुछ अलग ढंग की है। कुकी एक माँ है उसका बेटा सोनू है। सोनू स्कूल से घर न पहुँचकर कहीं भटक जाता है। फिर उसकी खोज शुरू होती है। तमाम तरह की आशंकाएँ की जाती हैं।

इसी बीच एक दुर्घटनाग्रस्त बच्चे की सूचना मिलती है। उस बच्चे की शिनाख्त के लिए सोनू के पिता को बुलाया जाता है। परंतु वह सोनू नहीं, बल्कि कोई दूसरा बच्चा होता है। सभी राहत की साँस लेते हैं। लेकिन सोनू की माँ कुकी अर्धमूच्छा की अवस्था में भी माँ की कल्पना करती है, जिसका बच्चा रेल की पटरियों पर मरा पड़ा है। वह चीख पड़ती है। सोनू सही-सलामत वापस आता है। सभी खुशियाँ मनाते हैं। परंतु सोनू की माँ कुकी उस माँ की वेदना को भुला नहीं पाती, जिसका बच्चा मर गया है। ऐसी अनुभूति एक माँ को ही हो सकती है।

यह कहानी यह संदेश देती है कि मानवीय भावनाओं की कोई सीमा नहीं होती। अनजान मृत बच्चे के प्रति कुकी का यह दारुण दुख पाठक को शाश्वत भावनाओं से जोड़ देता है।

'सौदा' स्त्री के उच्च चरित्र और मजबूत इरादे को रेखांकित करने वाली कहानी है। मंगला के घर में गेंदा नामक एक लड़की भागते हुए आती है और अपनी रक्षा की गुहार लगाती है। कोई गुंडा उसे किसी गिरोह को बेचने के लिए उसे पकड़ना

चाहता था। वह गुंडा और कोई नहीं मंगला का पति चंदू था। चंदू का यही धंधा था। इसी से उसकी गृहस्थी चलती थी।

मंगला धर्मसंकट में पड़ जाती है। चंदू को पकड़वाकर अपनी गृहस्थी उजाड़े या अपनी गृहस्थी को सुखी रखने के लिए एक निर्दोष मासूम लड़की की जिंदगी बरबाद होने दे। उसके चित्त में उथल-पुथल मच जाती है। चित्राजी ने मंगला के अंतर्द्वंद्व को बड़े प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। भारी कश्मकश के बाद मंगला अपनी गृहस्थी उजाड़कर उस बेसहारा लड़की की जिंदगी बचा लेती है।

गौर करने की बात यह है कि मंगला एक गृहिणी होने के नाते घर-परिवार, बच्चे और पति की सुरक्षा चाहती है, लेकिन दूसरी ओर स्त्री होने के नाते या मनुष्य होने के नाते दूसरों के प्रति या समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को जाहिर करती है।[२८]

'लकड़बग्घा' कहानी में 'पछाँहवाली' एक विधवा औरत है - लंबरदार के छोटे भाई की बहू। उसकी एक बेटी है पुनिया। लंबरदार के चार बेटे हैं। भरापूरा संयुक्त परिवार है। किंतु 'पछाँहवाली' और उसकी बेटी पुनिया के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार होता है। इसलिए वह लंबरदार से अपना हिस्सा अलग करने की बात कहती है। यह सुनकर लंबरदार का खून खौल उठता है। एक मामूली-सी मेहरिया की इतनी मजाल कि वह मेरे सामने मुँह खोले। उसकी यह मजाल कि मेरे सामने आकर मुझसे अपना हिस्सा माँगे।

लंबरदार को बँटवारे की बात बेचैन कर देती है। 'साँप भी न मरे और लाठी भी न टूटे' इस तरीके से वह रात में 'पछाँहवाली' का काम तमाम कर देता है और सुबह यह प्रचारित कर देता है कि रात में 'पछाँहवाली' को लकड़बग्घा उठा ले गया।

एक विधवा स्त्री का, अपने हक के लिए, घर के शक्तिशाली पुरुष से टकराने का परिणाम क्या-क्या हो सकता है, इसका जीवंत चित्रण इस कहानी में किया गया है।

'प्रेतयोनि' अनीता नाम की एक ऐसी लड़की की कहानी है, जो बलात्कार की कोशिश करने वाले एक टैक्सी ड्राइवर के चंगुल से अपने आपको बचा लेती है तथा लोकापवाद के भय से चुप रह जाने के बजाय साहसपूर्वक पुलिस में इस घटना की रिपोर्ट भी दर्ज कराती है। बाद में यह समाचार अखबारों में छपता है। अनीता के माता-पिता अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए सबसे यही कहते हैं कि जिस अनीता का नाम अखबारों में छपा है, वह मेरी बेटी अनीता नहीं है। अनीता के बार-बार कहने पर भी उसके माता-पिता यह विश्वास करने को तैयार नहीं कि अनीता पर बलात्कार नहीं हुआ है। बलात्कार की सिर्फ कोशिश हुई है। माता-पिता के इस रवैये से अनीता को बहुत आघात लगता है। वह जीवन से निराश हो जाती है और आत्महत्या करने का विचार करती है। परंतु उसे जब यह मालूम होता है कि कुछ दूसरे लोग भी हैं, जो उसके लिए न्याय की लड़ाई लड़ गहे हैं, तब उसके अंदर हिम्मत आती है और वह उन लोगों के साथ उस लड़ाई में शामिल हो जाती है।

इस कहानी में चित्राजी ने स्त्री को कमजोर नहीं, बल्कि सशक्त दिखाया।

२. पारिवारिक रिश्तों से संबंधित कहानियाँ :

चित्राजी की प्रायः सभी कहानियों का केंद्र मानवीय रिश्तों को महत्त्व प्रदान करने वाला पारिवारिक माहौल है। परिवार को समाज की मुख्य इकाई समझने वाली चित्राजी जीवन-मूल्यों एवं मानवीय संवेदनाओं के मर्म को वहाँ ढूँढ़ लेती हैं। वे भारतीय संस्कृति के महान आदर्शों को उन पारिवारिक रिश्तों में देखती हैं। लेकिन

वे पारिवारिक जीवन की जटिलता एवं घोर अनुशासनप्रियता के बंधन को तोड़ने के पक्ष में हैं।[२९]

'दशरथ का वनवास' कहानी पिता-पुत्र के संबंधों की असफलता पर प्रकाश डालती है। कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है। दशरथ पिता का प्रतीक है। पिता अपने पुत्र-प्रेम की अजस्र धारा को हृदय में ही बाँधे रखता है। पुत्र को अनुशासन में रखने के चक्कर में हमेशा मारता-पीटता रहता है। उसकी छोटी-छोटी जरूरतों और इच्छाओं को पूरा करने में भी अनुशासन का पालन करता है।

इस कहानी से यह विदित होता है कि स्नेह छिपाकर रखने की चीज नहीं है। वह एक-एक शब्द और एक-एक कार्य द्वारा प्रकट होना चाहिए। प्रेम जब प्रकट होता है, तभी सुख प्रदान करता है। जीवन की दिशा बदल देता है। जीवन के प्रत्येक कार्य में संबल प्रदान करता है। कहानी में प्रेम जब बाहर आया, तब पिता का वनवास भी समाप्त हो गया। परंतु प्रेम को प्रकट होने में बहुत देर हो चुकी थी।

ऐसे ही पारिवारिक रिश्तों वाली एक कहानी 'दुलहिन' है। अपनी सास के सामने 'माँ' अपने को दुलहिन (नई-नवेली बहू) ही समझती है, जबकि वह खुद भी सास बन चुकी है। इसी लिए वह हर साल गर्भ धारण करती है, जबकि उसका बेटा माँ के इस मनोविज्ञान को समझ नहीं पाता और खुद बाप बनना नहीं चाहता; क्योंकि उसे माँ के गर्भ धारण करने पर शरम आती है। परंतु माँ इस बात को समझ नहीं पाती; क्योंकि वह खुद की सास के होते हुए अपने को दुलहिन ही समझती है।

परंतु जब माँ की सास का देहांत हो जाता है, तब उसे खुद ही अपने गर्भ धारण करने पर शरम आने लगती है; क्योंकि खुद की नजर में अब वह दुलहिन नहीं रही। अब वह सास बन चुकी है। मनुष्य का सहज स्वभाव है कि परिवार में जब तक

हमारा ख्याल रखने वाला कोई बड़ा है, तब तक हम अपने को छोटा ही समझते हैं। इस मनोविज्ञान को इस कहानी में बड़ी बारीकी से बुना गया है।

कहानी यह संकेत करती है कि परिवार के प्रत्येक रिश्ते को उसकी पूरी गरिमा के साथ निभाने की जिम्मेदारी परिवार के प्रत्येक सदस्य की है। अगर ऐसा नहीं हो पाता, तो परिवार की गरिमा नष्ट हो जाती है। अपने बच्चों की उम्र और उनकी इच्छा-अनिच्छा का ध्यान न रखने की स्थिति में परिवार के सदस्य मानसिक संघर्ष का शिकार बन जाते हैं।

इस कहानी के बारे में डॉ. के. वनजा लिखती हैं : 'पारिवारिक वातावरण से ऐसे सूक्ष्म विषयों को चुनकर चित्राजी ने यह दिखा दिया है कि उन्होंने कुटुंब को कितनी निकटता से देखा है। ऐसे अनछुए पहलुओं को प्रकाश में लाने का चित्राजी का प्रयत्न सचमुच सराहनीय ही नहीं, बल्कि यह उनकी अपनी खासियत भी है।'[३०]

'गेंद' कहानी वर्तमान समय में बढ़ती संवेदनहीनता की कहानी है। परिवार में, खासकर बुजुर्गों के प्रति, उपेक्षा का भाव बढ़ता जा रहा है। संयुक्त परिवार व्यवस्था भारतीय समाज और संस्कृति के अनिवार्य तत्त्व एवं विशेषताओं में आती है। परंतु आधुनिक समय में यह विशेषता लगभग लुप्त हो चली है। आज बढ़ते हुए वृद्धाश्रम इस बात के द्योतक हैं कि नई पीढ़ी के मन में अपने माता-पिता या दादा-दादी के प्रति कोई प्रेम नहीं हैं।

सचदेवाजी वृद्धाश्रम में रहते हैं। वृद्धाश्रम के साथी अपना-अपना अकेलापन दूर करने के लिए कुछ न कुछ किया करते हैं और अपनी-अपनी जिंदगी जीने के लिए एक-दूसरे का सहारा लेते हैं। सचदेवाजी वृद्धाश्रम के नीरस वातावरण से ऊबे हुए हैं। वे चाहते है कि वे बेटे और पोतों के साथ रहें। उनके साथ खेलें, बातें करें। परंतु

बेटा तो उन्हें पहले ही अपने जीवन से काटकर फेंक चुका है।

परंतु एक दिन शाम को टहलते समय उन्हें अपने जीने का आधार मिल जाता है। एक बंद मकान के कंपाउंड के अंदर से एक बच्चा उनसे अपनी खोई हुई गेंद खोज देने की प्रार्थना करता है। बच्चे की माँ डॉक्टर है। वह अपने पति से अलग रहती है। डिस्पेंसरी जाते समय वह बच्चे को घर में बंद कर देती है, ताकि वह आसपास के साथ खेलकर बिगड़ न जाए। ये सारी बातें बच्चे से जानकर सचदेवाजी अपनी तुलना उस बच्चे से करने लगते हैं। दोनों समदुखिया हैं। इसलिए दोनों एक अटूट बंधन में बँध जाते हैं।

इस कहानी के बारे में डॉ. वनजा लिखती हैं : 'असल में यह कहानी आज की दो ज्वलंत समस्याओं को अभिव्यक्त कर हमें सचेत करती है कि आगामी पीढ़ी और ढली पीढ़ी, दोनों की हालत इस नवीन बाजारू संस्कृति में भयानक एवं दर्दनाक है। रिश्तों की यह अनार्द्रता सबसे ज्यादा विचारणीय मुद्दा है।'[३१]

'मोर्चे पर' कहानी रिन्नी नामक एक स्त्री की व्यथाकथा है। भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद पहले तो उसके पति सुदीप को लापता घोषित किया जाता है; फिर कुछ समय बाद उसकी मुत्यु की खबर आती है।

रिन्नी की समस्य यह है कि वह पिता सुदीप के लाड़-प्यार में पले राजू और बिट्टी को यह कैसे बताए कि उनके पिता मर चुके हैं। यह सत्य वह बच्चों से छिपाना चाहती है। वह माता-पिता दोनों बनकर उन बच्चों की परवरिश करने का निश्चय करती है। परंतु, थोड़े ही समय में उसे आभास हो जाता है कि इस 'मोर्चे पर' उसका टिक पाना बहुत मुश्किल है। वह बच्चों से उनके पिता की मौत की खबर कब तक और कैसे छिपाए रख सकती है! बच्चों पर अपने पिता की स्मृति की छाया इतनी

सघन है कि उसको मिटा पाना उसे असंभव-सा लगता है।

चित्राजी की यह कहानी अपनी बुनावट में इतनी मार्मिक है कि उसे सिर्फ एहसास किया जा सकता है।

'पाली का आदमी' कहानी में फैक्टरी में पालियों में काम करने वाला नायक रवि अपने व्यक्तिगत जीवन में भी पालियों में बँटा हुआ है। माता-पिता की मरजी से बचपन में उसकी शादी हो जाती है। एक बेटी भी पैदा होती है।

पढ़ाई के लिए वह बाहर निकलता है और पलटकर पीछे नहीं देखता। शहर में वह दूसरी शादी कर लेता है। दूसरी पत्नी से अपनी पहली शादी की बात छिपा जाता है। लेकिन वर्षों बाद उसे अपनी पहली बेटी लल्ली का पत्र मिलता है। लल्ली की शादी होने वाली है। उसे लल्ली की बचपन की सूरत याद आती है। वह विचलित हो उठता है। परंतु उसे वर्तमान का सुख मजबूती से पकड़े हुए है। वह अतीत और वर्तमान के अंतःसंघर्ष से भयभीत हो उठता है। वह लल्ली के पत्र को फाड़कर फेंक देता है। वह जीती-जागती बेटी की शादी में शामिल नहीं होता, परंतु दूसरी बेटी की गुड़िया की शादी में छुट्टी लेकर घर आ जाता है।

इस तरह इस कहानी में एक व्यक्ति के दो रूपों, दोहरे चरित्र को बखूबी चित्रित किया गया है। भीरूता, स्वार्थपरता तथा मनोवांछित जीवन जीने की लालसा के चलते रवि अपनी पहली पत्नी और उसकी बेटी को जीवन भर के लिए प्यार, अधिकार और सम्मान से वंचित कर देता है।

३. अभाव और गरीबी से संबंधित कहानियाँ :

चित्राजी की कहानियों में जिस प्रकार स्त्री की व्यथाकथा केंद्रीय विषय है, उसी प्रकार अभाव और गरीबी का शिकार निम्नवर्ग भी उनकी कहानियों के केंद्र में

है। यह वर्ग हमारे समाज का एक विशाल हिस्सा है। फिर भी समाज-व्यवस्था और प्रशासन की गलत नीतियों के कारण वह हमेशा कष्ट ही भोगता है। गरीबी के असली कारणों की खोज की जाए, तो पता चलता है कि आर्थिक शोषण से बढ़कर दूसरा कोई कारण नहीं है। अमीर वर्ग और अधिक अमीर होने के लिए भयानक रूप से गरीबों का आर्थिक शोषण करता है। चित्राजी की अनेक ऐसी कहानियाँ हैं, जिनमें अभाव और गरीबी के तरह-तरह के कारणों का खाका खींचा गया है।

ऐसी कहानियों में 'केंचुल' बड़ी सशक्त कहानी है। इस कहानी में एक परिवार की गरीबी, अभाव, जिंदा रहने के संघर्ष आदि का बहुत जीवंत चित्र प्रस्तुत किया गया है। कहानी में एक परिवार की स्त्री परिवार चलाने के लिए शराब का धंधा करती है। उधार देनेवाला बनिया उसकी लड़की को अश्लील हरकतें करने के लिए बाध्य करता है।

लड़की की माँ को जब बनिये की अश्लील हरकत का पता चलता है, तो वह गुस्से में आकर उस बनिये के मुँह पर थूँकने के इरादे से, उसको गालियाँ देते हुए, उसकी दुकान पर पहुँचती है। परंतु उसके सामने पड़ते ही उसका सारा गुस्सा शांत पड़ जाता है; क्योंकि वक्त-बेवक्त वही उसकी मदद करता है।

इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि गरीबी, अभाव, जिंदा रहने का संघर्ष और परिवार की जिम्मेदारी आदमी को कितना विवश बना देता है। पुरुष की तुलना में स्त्री को इस जिम्मेदारी का एहसास अधिक होता है। इसी लिए बानी सारे अपमान और कष्ट सहकर काम करती रहती है।

'भीख' एक दिल दहला देने वाली कहानी है। इसमें चित्राजी ने एक निम्नवर्गीय नारी लक्ष्मा के जीवन की विडंबना का यथार्थपरक चित्रण किया है। एक दुर्घटना में

लक्ष्मा के कारीगर पति की मौत हो जाती है। अपने तीन बच्चों के साथ लक्ष्मा अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए विवश हो जाती है। वह चौका-बरतन या अन्य कोई काम करके अपने बच्चों का पेट पालना चाहती है। परंतु, इनमें भी उसे सफलता नहीं मिलती। अंत में हारकर एक पड़ोसिन की सलाह पर अपने छोटे बेटे छोटू को एक भिखारिन को भाड़े पर देने के लिए राजी हो जाती है। पहले तो उसे अपने जिगर के टुकड़े को भाड़े पर देना बड़ा अजीब लगता है। परंतु जब उसे बताया जाता है कि उसके छोटू के खाने-पीने का पूरा ध्यान रखा जाएगा, तब वह राजी हो जाती है।

परंतु वास्तविकता यह है कि वह भिखारिन छोटू को भूखा रखती है ताकि वह दिन भर रोता रहे और दया खाकर लोग उसे अधिक से अधिक पैसे दें। थोड़े समय बाद छोटू भूख के कारण मर जाता है। भिखारिन की इस घिनौनी हरकत का बड़ा मार्मिक चित्रण चित्राजी ने इस कहानी में किया है। डॉ. के. वनजा ने इस कहानी को चित्राजी की कालजयी और तीसरी दुनिया के चेहरे को प्रतिबिंबित करने वाली कहानी कहा है।[३२]

'ब्लेड' कहानी एक ईमानदार आदमी के बेईमान बनने की प्रक्रिया की कहानी है। रामखेलावन दिल्ली में एक साहब के यहाँ ड्राइबर है। साहब के यहाँ से उसे इतने पैसे नहीं मिलते कि वह पाँच-छ लोगों के अपने परिवार का पालन कर सके।

इसी बीच एक दुर्घटना में उसकी बेटी की एक टाँग टूट जाती है। टाँग के प्लास्टर के लिए घर वालों ने पैसे माँगे हैं। रामखेलावन मालिक से ऐडवांस माँगता है। परंतु मालिक उसे ऐडवांस देने से इंकार कर देता है। वह बहुत चिंता में पड़ जाता है। तब जमाल उसे राय देता है कि अन्य ड्राइवरों की तरह वह भी वर्कशॉप में अपना हफ्ता बँधवा ले। पहले तो रामखेलावन ऐसी बेईमानी के लिए तैयार नहीं होता; परंतु

बेटी की टाँग का ख्याल आते ही वह इस काम के लिए तैयार हो जाता है। वह मालिक की नजर बचाकर गाड़ी के सीट-कवर पर ब्लेड मार देता है; ताकि नया सीट-कवर लगवाने पर उसको हिस्सा मिलेगा।

वास्तव में, रामखेलावन साहब के प्रति कृतघ्न नहीं है। वह साहब से दगा करना न चाहते हुए भी कमीशन खाने पर विवश है। यहाँ रामखेलावन के प्रति सहानुभूति उपजने का कारण यह है कि वह मूलतः खल पात्र नहीं है। जिंदगी की परेशानियाँ उसे ऐसा करने पर मजबूर करती हैं और निर्णय तक पहुँचते-पहुँचते वह अपने आपसे कम नहीं लड़ता - उसकी लड़ाई बाहर से अधिक कहीं भीतर चलती है।[३३]

'पाठ' कहानी भारतीय राजनीति से जुड़ी हुई कहानी है; परंतु इसका निशाना अंततः अभाव और गरीबी ही है। चुनाव नजदीक आने पर नेता लोग अपनी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए गरीब जनता में कुछ न कुछ बाँटते हैं। ऐसे ही समय में एक नेता एक स्कूल का दौरा करते हैं। स्कूल के बच्चों के सामने स्वास्थ्य के महत्त्व पर भाषण देते हैं और उन्हें शारीरिक स्वास्थ्य का 'पाठ' पढ़ाते हैं। प्रत्येक बच्चे को साबुन की टिकिया और अँगोछा देते हैं ताकि बच्चे साफ-सुथरा रहेंगे। परंतु एक महीने बाद जब वे पुनः उसी स्कूल में पहुँचते हैं, तो सभी बच्चे वैसे ही गंदे दिखाई देते हैं। वे बच्चों से पूछते हैं कि साबुन की टिकिया का क्या किया? सभी बच्चे मौन रहते हैं। परंतु सतीश नाम का एक विद्यार्थी सचाई बता ही देता है। वह अपनी माँ की कही हुई बात दुहरा देता है : 'साबुन की बट्टी अउर अँगोछा के दाम से दो जून का पिसान आएगा, तू नहाएगा कि रोटी खाएगा?'

कहते हैं कि मनुष्य अंततः मनुष्य है। उसमें जो भी बुराइयाँ आती हैं, वे परिस्थिति सापेक्ष होती हैं। परिस्थिति से मजबूर आदमी जानवर बन जाता है। भूख और गरीबी

मनुष्य के विवेक पर परदा डाल देती है।

'जिनावर' कहानी का असलम इसका नमूना है। दस प्राणियों का बड़ा परिवार वह ताँगे की कमाई से चलाता है। उसका ताँगा खींचने वाली घोड़ी का नाम सरवरी है। वह अत्यंत दुर्बल और अशक्त है। असलम उसे भर पेट खिलाता ही नहीं। वह अपने परिवार को पाले या सरवरी को खिलाए! परिणामस्वरूप वह बीमार पड़ गई है।

कई दिनों तक ताँगा न चलने के कारण फाँकाकसी की परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। सरवरी की हालत ठीक न होने पर भी असलम मजबूर होकर ताँगा लेकर चलता है। असलम को मानो उसकी आँखों में मौत दिखाई पड़ती है। उसके मन में दुर्विचार उत्पन्न होता है। वह सोचता है कि सरवरी वैसे भी अब ज्यादा जिंदा नहीं रहेगी, तो क्यों न उसकी मौत से थोड़ा फायदा उठाया जाए! वह ताँगे को एक कार से टकरा देता है। बीमार सरवरी सड़क के बीचोबीच गिरकर छटपटाने लगती है। असलम रिपोर्ट लिखवाने की धमकी देकर कार वाली लड़की से आठ हजार रुपये की माँग करता है। अंत में मामला दो हजार रुपये पर सलटता है। मरणासन्न सरवरी को वहीं छोड़कर असलम ताँगा लेकर घर भाग जाता है।

परंतु रात को जब उसका विवेक जागता है, तो दहाड़ें मारकर रोने लगता है। वह अपनी पत्नी से सारी हकीकत बताता है। वह कहता है कि सरवरी को मैंने ही मारा है और इस तरह से पश्चात्ताप करता है। यह कहानी भूख, गरीबी और मनुष्यता की मिली-जुली कहानी है।

४. राजनीतिक संदर्भों की कहानियाँ :

चित्राजी की कहानियों का मुख्य सरोकार को नारी जीवन की विडंबनाओं

से है; परंतु कुछ ऐसी भी कहानियाँ हैं, जिनमें भारतीय राजनीतिक की विसंगतियों को भी उभारा गया है।

ऐसी ही एक कहानी 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं' है। यह पूरी कहानी राजनीति पर ही आधारित है। यह ग्रामीण विकास की राजनीति के छद्म को उजागर करने वाली कहानी है।

यह कहानी बताती है कि चुनाव नजदीक आने पर नेता लोग ऊपरी तौर पर कैसे जनता की सेवा का ढोंग करके वाहवाही लूटते हैं; परंतु भीतर से अत्यंत क्रूरता, अमानवीयता और नृशंसता का खेल खेलते हैं।

नेता और समाज-सुधारक एक तरफ तो एक विकलांग बच्चे को भरी सभा में गाड़ी देकर जनता में अपनी उदारता का डंका पीटते हैं और दूसरी तरफ वही गाड़ी रात के अंधेरे में उससे छीनकर और उसे मानसिक आघात पहुँचाकर उसे और अधिक अपाहिज बना देते हैं।

यह कहानी परोक्ष रूप से इस सचाई को बयान करती है कि कैसे गरीबों, अशिक्षितों, बेरोजगारों, विकलांगों के नाम पर हर साल करोड़ों रुपयों की योजनाएँ तैयार की जाती हैं; परंतु उन तक एक धेला भी नहीं पहुँच पाता। बीच में ही नेता, अधिकारी, समाज-सुधारक और सत्ता के दलाल उसे चट कर जाते हैं।

इस कहानी पर डॉ. के. वनजा की बहुत सटीक टिप्पणी है कि चित्रा मुद्गल आजकल के नेतागणों के प्रतिनिधि के रूप में जगदंबाबाबू को हमारे सामने पेश कर असल में भारतीय राजनीति के सबसे हीन, कलुषित, कपट रूप को अपनी अचूक भाषा के जरिये रेखांकित कर रही हैं।[३४]

'बंद' कहानी आज की भ्रष्ट राजनीति पर केंद्रित है। 'बंद' राजनेताओं का

एक ऐसा हथियार है, जिसके सहारे वे अपनी गंदी राजनीति चलाते हैं। 'बंद' के माध्यम से लोगों के मन में आतंक और असुरक्षा का भाव पैदा करना राजनेताओं की चाल होती है। 'बंद' के दिनों में आम आदमी को कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं, इसका बड़ा जीवंत चित्रण इस कहानी में हुआ है।

कहानी का एक पात्र नवल कहता है : 'यह किसके हक की लड़ाई है? वे जो रोज-ब-रोज मजदूरी करके खाते हैं, काम बंद, दुकानें बंद, होटल बंद!' इस तरह के अनावश्यक बंद से देश भर के राजनीतिक लाभ उठाते हैं, जबकि साधारण जनता का दम घुटता है।

'लपटें' कहानी भी राजनीतिक कुचक्र और कुकृत्य को बेनकाब करने वाली कहानी है। अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाने के लिए राजनेता कैसे-कैसे हथकंडे अपनाते हैं, इसका नमूना इस कहानी में प्रस्तुत किया गया है। इसके लिए वे जिंदा इंसान तक को आग की लपटों के हवाले करने में नहीं हिचकते। वे समाज को जाति और धर्मों में बाँटकर खून-खराबा कराते हैं; आगजनी कराते हैं और दूसरे धर्म या संप्रदाय के लोगों को बदनाम करने के लिए खुद अपने ही लोगों को आग की लपटों के हवाले कर देते हैं।

यह कहानी बंबई की राजनीतिक पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। यह कहानी हमें एहसास कराती है कि राजनेता स्थानीय जनता की भलाई का नारा देकर लोगों में कैसे फूट डालते हैं, लड़ाई-झगड़े कराते हैं और बाहर से आए हुए लोगों में दहशत फैलाते हैं। यह कहानी इस हकीकत की ओर भी इशारा करती है कि ऐसे राजनेताओं के छद्म को जान लेने के बावजूद, उन्हीं से पीड़ित बाहरी लोग, उनकी दहशत के चलते, अपनी भलाई के लिए उन्हीं की शरण में जाने के लिए अभिशप्त हैं।

'पाठ' कहानी वैसे तो भूख और गरीबी की कहानी है; परंतु इसका दूसरा संदर्भ राजनीति से भी जुड़ा हुआ है। इस कहानी में यह दिखाया गया है कि चुनाव का समय आने पर नेता लोग आम जनता को लुभाने के लिए कैसे-कैसे पैंतरे बदलते हैं। कैसे-कैसे रूप धारण करते हैं। उनकी अशिक्षा, अज्ञान और मजबूरी का नाजायज फायदा उठाते हैं।

हमारी भारतीय राजनीति की विडंबना यह है कि हमारे राजनेता जनता को सुखी बनाने के लिए कोई ठोस काम तो करते नहीं; सिर्फ अपनी सत्ता टिकाए रखने के लिए जनता को ललचाते हैं। चुनाव के समय जीवन जरूरी थोड़ी वस्तुएँ बाँटकर उन्हें भटकाने का षडयंत्र करते हैं। उनकी असली समस्या तो अपनी जगह पर ज्यों की त्यों बनी रहती है। यह राजनीतिक चाल ही है, जिसके चलते देश की गरीबी घटने के बजाय बढ़ती ही जा रही है।

५. सांप्रदायिकता और प्रादेशिकता के संदर्भ की कहानियाँ :

सांप्रदायिकता हमारे देश में बहुत गहरी जड़ें जमाए हुए है। स्वार्थी और अवसरवादी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए इस सांप्रदायिकता का तरह-तरह से उपयोग करते हैं।

'बाघ' कहानी धर्मनिरपेक्षता का ढोंग करने वाले अवसरवादी मध्यवर्ग की कहानी है। यह वर्ग सांप्रदायिकता की आड़ में अपना स्वार्थ सिद्ध करने में बहुत माहिर होता है।

'बाघ' कहानी में एक आदमी अपने लिए मकान खरीदना चाहता है। परंतु पैसे कम होने की वजह से उसे उसकी जरूरत के लायक अच्छा मकान मिल नहीं पाता। उसका एक सहकर्मी इस समस्या के समाधान के लिए उसे एक उपाय बताता

है। उन्हीं के इलाके में दूसरे धर्म का एक तीसरा आदमी रहता है, जो पिछले दंगे के आतंक से अपना मकान बेचकर ऐसी जगह मकान लेना चाहता है, जहाँ उसके धर्म वालों की संख्या अधिक है। दूसरा आदमी पहले आदमी को यह राय देता है कि वह तीसरे आदमी को दंगे का भय दिखाकर उसका मकान औने-पौने दाम में खरीद ले। पहला आदमी पहले तो उसकी बातों में आ जाता है। परंतु जल्द ही वह दूसरे आदमी के दुष्ट इरादे को भाँप लेता है। उसे एहसास होता है कि इस तरह से किसी की मजबूरी का नाजायज फायदा उठाना उचित नहीं है। दूसरा आदमी पहले आदमी को आदमी नहीं 'बाघ' लगने लगता है।

'लपटें' कहानी में चित्रा मुद्‌गल ने, रोजी-रोटी की तलाश में अपना गाँव-घर छोड़कर अपने ही देश के एक दूसरे हिस्से में स्थिर होने का प्रयास करने वाले लोगों के मानसिक द्वंद्व का चित्रण किया है। साथ ही आज के सांप्रदायिक माहौल में कट्टर हिंदूवादी तत्त्वों के असली चेहरे को यह कहानी बेनकाब करती है, जहाँ एक आम सहनशील आदमी अभिशप्त है कट्टरवादी तत्त्वों का समर्थन करने के लिए।

स्थानीय नेता स्थानीय लोगों को अपने भाषणों से अभिभूत करके अपने ही देशवासियों के बीच ददार डालने का घिनौना काम करते हैं अपनी राजनीति कायम रखने के लिए। नेताओं के बहकावे में आकर स्थानीय लोग, देश के अन्य हिस्सों से आए लोगों को अपना दुश्मन समझते हैं। उनके दिमाग में यह बात उतार दी जाती है कि बाहर से आए हुए ये लोग हमारी धरती पर बड़े-बड़े उद्योपति, अफसर, सिनेमा के सुपर स्टार, ठेकेदार बनकर बैठे हुए हैं। जब तक ये लोग यहाँ पर बने हुए हैं, तब तक हमारी उन्नति हो ही नहीं सकती। इन्हें यहाँ से निकालना ही पड़ेगा। इसके लिए चाहे खून भी बहाना पड़े।

ऐसे नेताओं की घिनौनी मानसिकता को अपनी अनेक कहानियों में चित्राजी ने बेनकाब किया है।

६. मूल्यों के बदलते रूप से संबंधित कहानियाँ :

वैसे तो स्थल और काल के अनुसार मूल्य तो बदलते रहते हैं। परंतु परिस्थिति के दबाव में जब मूल्यों में गिरावट आती है, तब वह समाज के लिए घातक सिद्ध होती है। चित्राजी ने बदलते मूल्यों से संबंधित भी कहानियाँ लिखी हैं। 'अढ़ाई गज की ओढ़नी' और 'वाइफ स्वैपी' जैसी कहानियाँ इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

'अढ़ाई गज की ओढ़नी' कहानी बच्चों में आए मूल्यगत ह्रास को सूचित करती है। कहानी में सोसाइटी के लोग एक साथ पिकनिक पर जाते हैं। बड़े लोग अपने खेल में मग्न हो जाते हैं और बच्चे अपने खेल-कूद में। लेकिन बच्चों का खेल-कूद पुराने समय के खेल-कूद जैसा नहीं है। वे तो सिनेमा और टी वी में देखे हुए दृश्यों की नकल करते हैं। उनके खेल में एक लड़के एक लड़की की शादी होती है और हनीमून मनाने के लिए स्विटजरलैंड जाने का खेल खेलते हैं। एक लड़की चादर के पीछे अपनी ओढ़नी बिछाकर उस पर चित्त लेटी हुई है और उसके ऊपर सिराज लेटा हुआ है। यह दृश्य देखकर लड़की की माँ स्तब्ध रह जाती है।

मीडिया के कारण हमारे समाज में आई मूल्यहीनता को चित्राजी ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। इस कहानी के माध्यम से उन्होंने माता-पिता को आगाह किया है कि वे अपने बच्चों में वह विवेक पैदा करें, जिससे वे यह समझ सकें कि टी वी के दृश्यों से क्या ग्रहण करना है और क्या छोड़ना है।

इसी तरह 'वाइफ स्वैपी' नामक कहानी में उच्च वर्ग के पुरुषों-स्त्रियों में आई मूल्यगत गिरावट को रेखांकित किया गया है।

जीवन में नया कुछ पाने या करने की चाह में मेजर अहलुवालिया तथा अन्य उद्योगपति मिलकर एक क्लब चलाते हैं और उसमें 'वाइफ स्वैपी' का खेल खेलते हैं। इस खेल में क्लब के सभी सदस्यों को अपनी-अपनी गाड़ियों की चाभी एक डिब्बे में डाल देनी होती है और फिर डिब्बे में से एक-एक चाभी निकालनी होती है। जिसकी गाड़ी की चाभी जिसके हाथ में आती है, वह उसी की गाड़ी में उसी की पत्नी को लेकर रात भर के लिए कहीं भी जाने के लिए स्वतंत्र होता है। आश्चर्य की बात यह है कि इस घिनौने खेल में पत्नियाँ भी साथ देती हैं। इसमें उनकी भी सहमति होती है। वे भी एक रात भर के लिए एक नए साथी के साथ का आनंद लेने के लिए उत्सुक दिखाई देती हैं।

जिस भारतीय समाज में यौन शुचिता और नैतिकता को बहुत ऊँचा स्थान दिया जाता है, वहाँ इस तरह का खेल चल रहा है। आखिर हमारा समाज कहाँ जा रहा है? ऐसे लोग दूसरे की पत्नी या दूसरे के पति के साथ रंगरलियाँ बनाकर क्या हासिल करना चाहते हैं? इस कहानी के माध्यम से चित्राजी ने हमारे सामने एक बड़ा प्रश्न रखा है।

'जरिया' कहानी एक व्यक्ति की स्वार्थपरता को रेखांकित करने वाली कहानी है। विवेक बतरा दिल्ली का रहने वाला है। वह राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का भूतपूर्व छात्र है। उसे फिल्म संबंधी काम से उसे बंबई जाना पड़ता है। परंतु उसके पास बंबई जैसे महानगर में रहने का कोई ठिकाना नहीं है। वह एक नवोदित कथा लेखिका को उसकी कहानी पर टेलीफिल्म बनाने का लालच देकर उसके घर में रहने की और खाने-पीने की सुविधा हासिल कर लेता है। उस लेखिका को झूठी तसल्ली दे-देकर वह उसके घर में एक महीने तक रहता है और फिर अपना काम पूरा करके वापस दिल्ली चला जाता है।

इसी तरह एक कहानी 'बेईमान' है, जिसमें समाज के नैतिक पतन का खुलासा किया गया है। बड़े लोगों की बेईमानी छोटे लोगों को बेईमान बनने के लिए विवश करती है। इस कहानी में एक लड़का कमीशन बेसिस पर ट्रेन में पत्रिकाएँ बेचता है। ट्रेन में एक संभ्रांत महिला पत्रिकाएँ खरीदने के बहाने एक पत्रिका दबा लेती है और उसे डाँटकर भगा देती है। वह लड़का भी अपना नुकसान पूरा करने के लिए एक वृद्ध का बाकी बचा पैसा वापस नहीं करता।

ऐसी स्थिति में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि वास्तव में 'बेईमान' कौन है - वह संभ्रांत महिला या हालात से मजबूर वह लड़का?

७. भीक्षावृत्ति और वेश्वावृत्ति से संबंधित कहानियाँ :

भीक्षावृत्ति और वेश्यावृत्ति भारतीय समाज के ही नहीं विश्व समाज के सबसे बड़े दूषण हैं। चित्राजी ने इन दूषणों को भी अपने कथा साहित्य के दायरे में लिया है।

'चेहरे' कहानी में व्यवस्था के चेहरे को बेनकाब किया गया है। इस कहानी में रेलवे स्टेशन पर भीख माँगने वाले भिखारियों/ भिखारिनों की असली करतूतों का खुलासा किया गया है। युवा भिखारिनें तरह-तरह की अश्लील हरकतों द्वारा, टिकट के लिए लाइन में खड़े यात्रियों का ध्यान बँटाती हैं और दूसरे भिखारी उनकी जेबें साफ कर जाते हैं। रेलवे अधिकारियों से इसकी शिकायत करने पर भी वे इस तरफ ध्यान नहीं देते। वे अपनी असमर्थता बताते हैं। लेकिन वास्तविकता का खुलासा एक भिखारिन ही करती है। वह रेलवे अधिकारियों और पुलिस को चुनौती देती है कि कोई मुझे मेरी जगह से हटाकर तो देखे। उसकी चुनौती के पीछे कारण यह है कि वह रेलवे अधिकारियों को हफ्ता देती है तथा पुलिस वाले उसके साथ रात गुजारते

हैं। वे कौन-सा मुँह लेकर उसको दंडित करेंगे।

इस तरह इस कहानी में व्यवस्था के 'चेहरे' को बेनकाब किया गया है।

'फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती' कहानी में चित्राजी ने वेश्या जीवन की उस यथार्थ एवं नारकीय जिंदगी का चित्रण किया है, जो सामान्य व्यक्ति की सोच से परे है।

इस कहानी की नायिका एक अखबार की रिपोर्टर है। वह अपने अखबार में रेड लाइट एरिया में रहने वाली वेश्याओं के रहन-सहन की आँखों देखी रिपोर्ट छापने के लिए 'फातिमाबाई' के कोठे पर जाती है। वहाँ पर अन्य वेश्याओं के अलावा वह केतकी नामक वेश्या का अलग से इंटरव्यू लेती है। केतकी अपनी दुख भरी कहानी उसे बताती है। वह यह भी बताती है कि मैं आप ही की मेहरबानी से इस हालत में पहुँची हूँ। तब उसे ख्याल आया कि वर्षों पहले पंजाब मेल के महिला कोच में बिना टिकट यात्रा कर रही एक लड़की ने उससे मदद माँगी थी। किंतु उसने उसकी मदद नहीं की थी। वही लड़की अपराधी लोगों के चंगुल में फँसकर फातिमाबाई के कोठे तक पहुँची है।

इस घटना से वह रिपोर्टर निष्कर्ष निकालती है कि 'फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं होती'। किसी बेबस लड़की या महिला को अगर समय से मदद मिल जाए, तो वह वेश्या बनने से बच सकती है।

इसी तरह 'नतीजा' पूरबी दी नामक एक समाज सेवी महिला की कहानी है, वेश्याओं की लड़कियों को पढ़ा-लिखाकर समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए जी-जान से जुटी हुई हैं।

इस कहानी में पूरबी दी चाहती हैं कि वेश्याओं की लड़कियों को भी दूसरी

लड़कियों के साथ बैठकर पढ़ने की सुविधा दी जाए। इसके लिए उन्हें प्रधानाध्यापिका से कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। किंतु उन लड़कियों का आचार-व्यवहार पूरबी दी की हिम्मत को डावाँडोल कर देता है। वे लड़कियाँ अनुशासन, रहन-सहन, बोलने, उठने-बैठने तथा पढ़ने-लिखने के नाम पर शून्य ही बनी रहती हैं। वे कहीं भी गंदगी कर देती हैं, दूसरे बच्चों के सामान चुरा लेती हैं।

इस तरह इन लड़कियों की लगातार असफलता, न बदलने की प्रवृति पूरबी दी की समाज सेवा की भावना को चूर-चूर करती जाती है। फिर भी वे हिम्मत नहीं हारतीं। परीक्षा में सभी लड़कियाँ फेल हो जाती हैं, सिर्फ दो लड़कियाँ पास होती हैं। दो लड़कियों की सफलता उन्हें फिर से हिम्मत बँधाती है। उन्हें लगता है कि धीरे-धीरे ही सही परंतु उन्हें सफलता जरूर मिलेगी।

चित्रा मुद्‌गल के उपन्यासों तथा कहानियों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि चित्राजी पूरी तरह से प्रतिबद्ध कथाकार हैं। अपने तीन उपन्यासों और लगभग सत्तर कहानियों में उन्होंने मनुष्य जीवन की विडंबनाओं एवं विसंगतियों को सफलतापूर्वक चित्रित किया है। मॉडलिंग या विज्ञापन की दुनिया, श्रमिक आंदोलन, अपने ही घर में अजनबी होते बुजुर्गों की त्रासदी को उन्होंने उभारा है।

संदर्भ :

१. बीसवीं सदी में उपन्यास : प्रकाश मनु, पृ. १४४-४५।

२.चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में युग-चेतना : अर्चना मिश्रा, पृ. ४८।

३. एक जमीन अपनी : चित्रा मुद्गल, पृ. १७९।

४. वही, पृ. २९।

५. वही, पृ. १८३।

६. वही, पृ. ७५।

७. वही, पृ. ८६।

८. वही, पृ. ९४।

९. आवाँ विमर्श : संपा. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. १०।

१०. वही, पृ. ७-८।

११. आवाँ विमर्श : संपा. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. ६४।

१२. आवाँ विमर्श : संपा. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. २६-२७।

१३. सामाजिक संदर्भों के नए प्रतिमान : डॉ. किरण श्रीवास्तव, पृ. १५६।

१४. आवाँ विमर्श : संपा. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. १६३।

१५. साक्षात्कार, मई-२००४, पृ. ११४।

१६. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन : डॉ. गोरक्ष थोरात, पृ. ५४-५५।

१७. चित्रा मुद्गल : एक मूल्यांकन : डॉ. के. वनजा, पृ. १-५।

१८. लपटें (भूमिका) : चित्रा मुद्गल, पृ. ६।

१९. जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं : चित्रा मुद्गल, पृ. ७३।

२०. वही।

२१. समीक्षा : जुलाई-सितंबर-१९९३, पृ. २२।

२२. चित्रा मुद्गल : एक मूल्यांकन : डॉ. के. वनजा, पृ. १४४।

२३. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन : डॉ. गोरक्ष थोरात, पृ. ६५।

२४. आदि-अनादि-१, पृ. २०९।

२५. इस हमाम में : चिंत्रा मुद्गल, पृ. ९९।

२६. डॉ. माहेश्वर : चौथी दुनिया, १८-२४ अक्टूबर, १९८७. पृ. १२।

२७. भारत भारद्वाज : पल प्रतिपल, जनवरी-जून-१९९३, पृ. २१९।

२८. चित्रा मुद्गल : एक मूल्यांकन : डॉ. के. वनजा, पृ. १६५।

२९. वही, पृ. ११५-११६।

३०. वही, पृ. ११७।

३१. वही, पृ. १२२।

३२. वही, पृ. १३८।

३३. महेश दर्पण : वर्तमान साहित्य, अप्रैल-१९८७, पृ. ६०-६१।

३४. चित्रा मुद्गल : एक मूल्यांकन : डॉ. के. वनजा, पृ. १२७।

अध्याय-५

कथाकार चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य के शिल्पपक्ष का अनुशीलन

अध्याय-५

कथाकार चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य के शिल्पपक्ष का अनुशीलन

१. कथा-विन्यास :

(क) उपन्यास :

चित्रा मुद्गल के अब तक तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। उनमें 'आवाँ' आकार में सबसे बड़ा है। उससे थोड़ा छोटा 'एक जमीन अपनी' है। 'गिलिगडु' इन दोनों से छोटा है।

कथात्मक रचना का सबसे आवश्यक और मजबूत पक्ष होता है उसका कथा-विन्यास। रचना के संपूर्ण घटना-चक्र को कथाकार किस कौशल के साथ प्रस्तुत करता है, इसी पर उस रचना की सफलता का दारोमदार होता है। कथा कितनी भी महत्त्वपूर्ण हो, परंतु अगर वह कथा-विन्यास की दृष्टि से कमजोर हो, तो निश्चित रूप से उसका महत्त्व घट जाता है। वह कोई खास प्रभाव नहीं छोड़ पाती। इसके विपरीत कमजोर कथावस्तु वाली रचना कथा-विन्यास की दृष्टि से सशक्त होने पर पाठक वर्ग को भरपूर प्रभावित करती है।

चित्राजी का प्रथम उपन्यास 'एक जमीन अपनी' है। कथानक की मौलिकता की दृष्टि से इसे हिंदी का प्रथम उपन्यास कहा जा सकता है। इसकी कथा मीडिया, मॉडलिंग की दुनिया से संबंधित है। इसमें विज्ञापन कंपनियों से जुड़कर काम करने

वाली दो महिलाओं की कहानी कही गई है। मजे की बात यह है कि दोनों सहेलियाँ हैं; दोनों का गंतव्य एक है। किंतु दोनों की सोच में जमीन-आसमान का अंतर है। दोनों के रास्ते विपरीत दिशाओं की ओर जाते हैं।

इस उपन्यास के दो नारी पात्र अंकिता और नीता हैं। दोनों विज्ञापन के क्षेत्र में कार्यरत हैं। अंकिता इस विश्वास के साथ इस क्षेत्र में प्रवेश करती है कि वह अपनी कार्य-कुशलता और प्रतिभा के बल पर अपना स्थान बना लेगी। उसके पास इस रंगीन दुनिया में सिफारिश जैसी पूँजी का उसके पास सर्वथा अभाव है। परंतु उसका यह विश्वास वास्तविकता से टकराकर चकनाचूर हो जाता है। उसे अपार चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उन चुनौतियों से जूझते हुए अपनी मंजिल पा लेती है।

परंतु उसकी सहेली नीता ने अपनी मंजिल पाने के लिए बिल्कुल उल्टा मार्ग अपनाया। वह मार्ग शरीर-प्रदर्शन और उच्छृंखलता का है। वह नग्नता को ही सफलता की सीढ़ी मानती है। अंकिता उसे इस मार्ग पर जाने से रोकती है। परंतु वह नहीं मानती। वह अपने निर्धारित मार्ग अबाध गति से आगे बढ़ती जाती है और अंततः उसके परिणाम को भोगती है; साथ ही अपनी भूल भी स्वीकार करती है।

लेखिका ने जीवन के स्याह-सफेद को उजागर करने के लिए अंकिता और नीता की कथाओं का विन्यास बड़ी कुशलता से किया है। दोनों की कथाएँ अलग-अलग हैं, बिल्कुल विपरीत - परंतु दोनों का समेकित प्रभाव एक ही है।

डॉ. के. वनजा का यह कथन इस उपन्यास के कथा-विन्यास के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है : 'उपन्यास की कथा अंकिता के माध्यम से पेश है। उसके इर्द-गिर्द कथा चक्कर काटती है। नाटकीयता के बिना खुरदुरे यथार्थ की अभिव्यक्ति इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है। ... हिंदी उपन्यास जगत में विज्ञापन क्षेत्र को सबसे पहले

चित्राजी ने विषय बनाया था। इस उपन्यास ने विज्ञापन के क्षेत्र को परत-दर-परत खोलने के साथ स्त्री-स्वातंत्र्य की नई व्याख्या भी दी है । यानी कि स्त्री द्वारा स्त्री की जमीन की तलाश है यह उपन्यास । अतः समकालीन हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में यह उपन्यास बहुआयामी जीवन-संदर्भों के अन्वेषण का सही दस्तावेज बन जाता है ।[१]

चित्राजी का दूसरा उपन्यास है 'आवाँ' । इस उपन्यास का कथा-विन्यास बहुआयामी है । इसमें मजदूर आंदोलन, मजदूर नेताओं का दोगलापन, मजदूरों में भी स्त्री का शोषण, आपसी राजनीति, समाज में अकारण व्याप्त सांप्रदायिक तनाव, मॉडलिंग की दुनिया में स्त्री के साथ छल-कपट और उसे देह बनाए रखने की साजिश आदि आयामों का चित्रण हुआ है ।

चित्राजी की तीसरा उपन्यास 'गिलिगडु' है । पहले दो उपन्यासों में चित्राजी ने स्त्री-विमर्श को केंद्रीय विषय बनाया है; परंतु इस उपन्यास में उन्होंने एकदम अछूते विषय को चुना है । इस उपन्यास की कथा दो वृद्धों के इर्द-गिर्द घूमती है । इस उपन्यास का भी कथा-विन्यास बड़ा ही चुस्त है ।

चित्राजी के इन तीनों उपन्यासों के कथा-विन्यास की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें कई मुख्य कथाएँ एक साथ चलती हैं । मुख्य कथाओं के अलावा अनेक उपकथाएँ भी साथ-साथ चलती हैं । परंतु सभी कथाओं-उपकथाओं का संयोजन ऐसी कुशलता से हुआ है कि कहीं भी कथा-प्रवाह में कोई बाधा नहीं आती । सभी कथाएँ एक-दूसरे का पोषण करते हुए अपने-अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ती हैं । किसी भी कथा या उपकथा में अनावश्यक विस्तार नहीं है । कथा में अनावश्यक विस्तार ऊबाऊ हो जाता है तथा कथा-प्रवाह शिथिल पड़ जाता है ।

चित्राजी ने अपने प्रत्येक उपन्यास की कथा में घटने वाली अनेक घटनाओं

में बड़ी कुशलता से एकसूत्रता बनाए रखा है। डॉ. थोरात कहते हैं कि कथानक में व्यक्ति की अपेक्षा परिस्थितियों का चित्रण अधिक हुआ है, जिन्हें सामाजिक आधारों पर खड़ा किया गया है। उसके माध्यम से कथ्य से जुड़े अधिसंख्यक लोगों की जीवन प्रणाली और नियति को अभिव्यक्ति मिली है।[३]

'एक जमीन अपनी' में मेहता तथा उसकी पत्नी कोकिला की कथा, नीता की कथा ऐसी उपकथाएँ हैं, जिनके माध्यम से लेखिका ने अन्य जीवन प्रणालियों को भी हमारे सामने रखा है। 'आवाँ' में भी ऐसी अनेक उपकथाएँ हैं। आवाँ को पढ़ते हुए तो कभी-कभी यह सवाल उठता है कि किस कथा को आवाँ की मुख्य कथा कहा जाए; क्योंकि हर कथा अपने आप में महत्त्वपूर्ण लगती है। नमिता पांडे की जद्दो-जहद जितनी प्रमुखता से अभिव्यक्त हुई है, उतनी ही प्रमुखता से 'कामगार आघाड़ी' की गतिविधियों का भी चित्रण हुआ है। मैडम अंजना वासवानी तथा संजय कनोई की कथा को भी उतना ही विस्तार और महत्त्व मिला है। कहने का आशय यह कि 'आवाँ' का कथा-फलक बहुत विस्तृत है। इसी बात का उल्लेख करते हुए विश्वमोहन सिंह लिखते हैं : 'उपन्यास में लेखिका ने कथा-सूत्रों की इतनी दिशाएँ खोल दी हैं कि प्रत्येक सूत्र एक नए पथ के अन्वेषण में जाता दिखाई देता है। विद्रूपता, गलाजत, विकृति, सड़ांध आदि की तलछट के साथ-साथ अत्यंत तरल, मोहक, कोमल और मानवीय तंतुओं को पूरी संरचना में इस प्रकार विन्यस्त कर लिया गया है कि हम इसे प्रायः एक मुकम्मिल उपन्यास कहने का लोभ संवरण नहीं कर पाते।[४]

कथा किसी की भी हो - किशोरीबाई, सुनंदा, स्मिता, गौतमी, नीलम्मा - किंतु सभी कथाएँ लेखिका के उद्देश्य की तरफ ही अग्रसर होती दिखाई पड़ती हैं। इसे चित्राजी के कथा-विन्यास की विशेषता ही कहा जाएगा। सारी कथाएँ चित्राजी

के स्त्री-विमर्श या स्त्री-चेतना से जुड़ी हुई हैं । उदाहरण के तौर पर सुनगुनियाँ की उपकथा को लें । यह उपकथा मुख्य कथा से सीधे नहीं जुड़ती; परंतु लेखिका की स्त्री-चेतना संबंधी विचारधारा को निश्चित रूप से पुष्ट करती है ।

(ख) कहानियाँ :

उपन्यासों की तरह चित्रा मुद्गल की कहानियों का भी कथा-विन्यास अपने में अनेक विशिष्टताओं को लिए हुए है । कहानी का एक गुण उसकी संक्षिप्तता है । कहानी जीवन के व्यापक फलक पर नहीं रची जाती । उसमें जीवन की एक छोटी झलक भर होती है । चित्राजी की कहानियों में यह गुण मौजूद है । कुछ कहानियाँ आकार में भले ही लंबी हैं, परंतु उनका कथा-फलक छोटा ही है । उदाहरण के तौर पर उनकी 'अपने-अपने गिरेबान', 'अभी भी', 'एंटिक पीस', 'ताशमहल', 'प्रमोशन', 'पाली का आदमी', 'बलि', 'बाघ', 'बेईमान', 'मुआवजा' जैसी कहानियों को लिया जा सकता है ।

कहानी की एक विशेषता उसकी मौलिकता होती है । मौलिकता यानी नवीनता । चित्राजी का अनुभव क्षेत्र बहुत व्यापक है । इसलिए उन्हें कहानी के लिए नया से नया विषय चुनने में कोई कठिनाई नहीं होती । समाज और जीवन को उन्होंने अपनी कहानियों में अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है । 'दुलहिन', 'मामला आगे बढ़ेगा अभी', 'लपटें' तथा 'लाक्षागृह' इसी कोटि की कहानियाँ हैं । रोचकता की दृष्टि भी देखें, तो चित्राजी की काफी कहानियाँ रोचकता से भरपूर हैं । 'सुख', 'अढ़ाई गज की ओढ़नी', 'चेहरे', 'भूख' तथा 'जगदंबाबाबू गाँव आ रहे हैं' इसी कोटि में आती हैं ।

कथावस्तु वास्तव में कहानी में निबद्ध घटनाओं का आलेख है । इसलिए उसमें पारस्परिक क्रमबद्धता का होना आवश्यक है । चित्राजी की कहानियों में यह विशेषता

दिखाई देती है। उनमें 'जगदंबाबाबू गाँव आ रहे हैं', 'जिनावर', 'लकड़बग्घा', 'फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती', 'मामला आगे बढ़ेगा अभी', 'लिफाफा' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। चित्राजी ने अपनी कहानियों में कथा-विन्यास के लिए अनेक शैलियों का उपयोग किया है। जैसे - संवाद शैली, आत्मनिवेदनात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली आदि।

कथा-विन्यास की दृष्टि से कहानी के आरंभ, मध्य और अंत का बड़ा महत्त्व होता है। कहानी का आरंभ लेखन कौशल की माँग करता है। कहानी का आरंभ ही अगर ठीक ढंग से नहीं हुआ, तो पाठक उसे पढ़ने के लिए प्रेरित नहीं होगा। आरंभ अच्छी तरह हो गया, परंतु कहानी बीच में जाकर अगर शिथिल पड़ जाती है, तो पाठक उसे बीच में छोड़ देगा। समग्र प्रभाव की दृष्टि से कहानी का अंत महत्त्वपूर्ण होता है। रचनाकार के कहानी कौशल का परिचय कहानी के अंत से पता चलता है।

चित्रा मुद्‌गल की कहानियाँ इन विशेषताओं से पूर्ण हैं। वेदप्रकाश अमिताभ ने चित्राजी की कहानियों की बुनावट के बारे में लिखते हैं : 'चित्राजी की कहानियों की बुनावट का तरीका यह है कि पहली ही पंक्ति से पाठक को सतर्क और सचेत हो जाना पड़ता है। अनावश्यक भूमिका या उलझावपूर्ण शुरुआत से कहानियाँ मुक्त हैं।[५]

'अभी भी' कहानी का आरंभ इसका एक उदाहरण है :

'क्या करूँ इसका?' तवे पर पराँठा उलटते-पलटते हुए रोष से भरकर उसने निल के बढ़े हुए हाथों पर हिकारत भरी दृष्टि डाली।

'क्या करना होता है इसका?' अनिल की आवाज में चिढ़ स्पष्ट ही तीखी

हो गई, 'मेरे पास तुमसे मुँह लगने का समय नहीं है । सीधे-सीधे चेक पर दस्तखत कर दो ।'

'भूल जाओ!' वह अप्रत्याशित रूप से दृढ़ हो आई, 'ये पैसे मेरे हैं । इन पर मेरा अधिकार है ... बहुत धर्मखाता हो गया ... माँ-बेटे ने मिलकर जीना हराम कर रखा है .... जोंक की तरह चूस रहे हो तुम लोग अब तक ...।' क्रोध से उसने अनिल के बढ़े हुए हाथ से चेकबुक छीनकर रसोई के प्लेटफार्म पर पटक दी ।[६]

'भूख' कहानी का मध्य भाग मूल कथा के प्रसार का कैसे संकेत देता है :

'सहसा बिजली-सा एक विचार दिमाग में तड़का । अगर वह छोटे को उस औरत को किराये पर उठा ही दे तो? ... छोटे का तो पेट भरेगा ही भरेगा, दो रुपये जो ऊपर से मिलेंगे, उसमें किल्लो भर मोटा चावल आ जाएगा । .... अक्का से जाकर कह देगी कि उसे औरत की बात मंजूर है । संध्या को क्यों? ... अभी ही क्यों नहीं?[७]

इसी तरह 'जिनावर' कहानी का अंत द्रष्टव्य है :

'नहीं ... वह जुदा नहीं हुई ... उसके जुदा होने से पहले ही मैंने उसे मार दिया ... मैंने उसकी मौत से सौदा कर लिया बीबी! ... जान-बूझकर उसे गाड़ी से भेड़ दिया ... यही सोचकर, अपनी मौत तो वह मरेगी ही आगे-पीछे ... किसी गाड़ी से भेड़ दूँ तो वह मरते-मरते अपनी कीमत अदा कर जाएगी ... ये नोट, नोट नहीं, मेरी सरवरी की बोटियाँ हैं, बोटियाँ बीबी!'

सुनकर जुबैदा का दिल दहल उठा । असलम की पीठ सहलाता उसका हाथ जहाँ का तहाँ रुक गया ... ।[८]

चित्राजी की कहानी कला पर प्रकाश डालते हुए जानकीप्रसाद शर्मा लिखते

हैं : 'चित्रा मुद्गल प्रायः आकस्मिक आरंभ और खुले अंत का सहारा लेती हैं । वे सीधे संवेद्य स्थिति पर आती हैं और अपने अनुभवों के योग से उसे सतत गहरा करती चलती हैं । उनके घटना-विन्यास में फैलाव के बजाय सघनता है । वे अपने मूल कथ्य को छोड़कर अवांतर प्रसंगों की सृष्टि में रुचि नहीं लेतीं ।'[९]

चित्रा मुद्गल की कथा-शैली पर प्रकाश डालते हुए डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ कहते हैं : 'चित्रा मुद्गल की कहानियाँ सीधे ढंग से आगे बढ़ने के बजाय बीच-बीच में विश्लेषण, पूर्वदीप्ति, प्रतीकात्मकता आदि के चलते घुमावदार यात्रा का प्रमाण देती हैं । अधिकतर कहानियों का 'विजन' स्पष्ट और दोटूक होने के कारण इनका समापन जिस निर्णयात्मक झटके के साथ हुआ है, उसे नए किस्म की 'चरमसीमा' कहा जा सकता है । कथ्य और शिल्प चित्रा मुद्गल के लिए अलग-अलग संकाय नहीं हैं, वे कहानियों में इन्हें संश्लिष्ट रूप में रखती और आँकती हैं ।'[१०]

२. पात्र-योजना :

(क) उपन्यासों के पात्र :

चित्राजी के तीनों उपन्यासों को मिलाकर पात्रों की एक लंबी सूची तैयार होती है । 'आवाँ' सबसे बड़ा उपन्यास है । इसलिए उसमें मुख्य और गौण पात्रों को मिलाकर उनकी संख्या बहुत ज्यादा है । 'एक जमीन अपनी' और 'गिलिगडु' में दो-दो पात्र मुख्य हैं । 'एक जमीन अपनी' में अंकिता और नीता दो मुख्य स्त्री पात्र हैं तथा 'गिलिगडु' में इंजीनियर जसवंतसिंह तथा कर्नल स्वामी दो मुख्य पुरुष पात्र हैं ।

नारी-विमर्श 'आवाँ' के मूल कथ्य का हिस्सा है । इसलिए स्त्री पात्रों की खासी भीड़ इस उपन्यास में है और सभी पात्रों की अपनी-अपनी कहानी है, जिनसे आज की स्त्री की स्थिति और सोच से लगभग पूरा दृश्य सामने आता है । तीन पात्रों का

उनके निकट संबंधियों ने यौन-शोषण किया है : नमिता के मौसा ने नमिता का, गौतमी के सौतेले भाई ने गौतमी का और स्मिता के पिता ने उसकी दीदी का। नमिता बचपन में एक ही बार मौसा का शिकार बनी; परंतु गौतमी और स्मिता को जबान बंद रखकर कई बार इस स्थिति से गुजरना पड़ा। गौतमी ने अपनी देह को बाजार में भुनाने का रास्ता चुना और स्मिता की दीदी इस स्थिति से ऊबकर एक सामान्य गृहस्थ जीवन की ओर बढ़ती दिखाई पड़ती है।

नारी-विमर्श की दृष्टि से 'आवाँ' का सबसे सक्रिय पात्र स्मिता है और मुखर पात्र पवार है। स्मिता स्वयं को आज की औरत कहती है। अपने पिता को उसने एक आतंककारी और अत्याचारी के रूप में ही देखा और जाना है। परिस्थितिवश वह विद्रोही बन जाती है और अपने पिता की हत्या कर अपने परिवार को उससे मुक्ति दिला देती है। नमिता को भी वह उसके कई पूर्वग्रहों से छुटकारा दिलाती है।

उपन्यास में चरित्र-चित्रण की जो विधियाँ अपनाई गई हैं, वे यद्यपि नई तो नहीं हैं, परंतु कई माने में समूचे सामाजिक परिवेश को अत्यंत स्वाभाविक रूप में उपस्थित करती हैं। अन्ना साहब, पवार, नमिता पांडे, अंजना वासवानी, संजय कनोई और नीलम्मा उपन्यास के प्रमुख पात्रों में से हैं, जिन्हें उपन्यास के कथानक का आधार स्तंभ कहा जा सकता है।

'आवाँ' में ऐसे अनेक स्त्री पात्र हैं, जो नारी संबंधी समस्याओं से जूझते हैं, लड़ते हैं, मुकाबला करते हैं; परंतु हार नहीं मानते। औरत का क्रांतिकारी होना पुरुष को बरदाश्त नहीं होता। उसे तो नारी दुर्बल, पराधीन और सिमटी हुई ही अच्छी लगती है।

१. अंकिता :

अंकिता 'एक जमीन अपनी' की मुख्य पात्र है । वह मॉडलिंग की दुनिया में एक स्वाभिमानी स्त्री के यथार्थ जीवन के कटु एवं भीषण संघर्षमय पक्ष को उजागर करती है । घरवालों के विरोध के बावजूद प्रेम विवाह करने वाली अंकिता पति सुधांशु के असह्य व्यवहार से त्रस्त होकर उससे भी अलग हो जाती है ।

पति से अलग होने के बाद वह पत्रकारिता और विज्ञापन के जगत में प्रवेश करती है और वहाँ का नजारा देखकर वह चौंक उठती है; परंतु विचलित नहीं होती । मुंबई की चकाचौंध, अपराध और सेक्स के तांडव की नगरी में विज्ञापन फिल्मों के चक्रव्यूह में फँसने से अपने को बचाने के लिए वह जद्दो-जहद करती है । उसके लिए उसे अनेक अग्नि-परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं । विज्ञापन जगत में कला के नाम पर हो रहे देह-व्यापार का वह घनघोर विरोध करती है । इतने संघर्षों के परिणामस्वरूप उसमें इतना आत्मबल आ जाता है कि वह विज्ञापन एजेंसी का प्रबंधक बनने के बाद अपने निर्देशक और मालिक भोजराज को भी खरी-खोटी सुनाने से नहीं डरती । वह कहती है : 'वह अश्लीलता का आश्रय लेकर उत्पाद को बेचने के विरुद्ध है ... अपनी एजेंसी को वह चकला बनाना नहीं चाहती ।'[११]

शुरू में अंकिता को इस क्षेत्र में कोई स्थान नहीं प्राप्त होता । इसके कारणों को भी वह खुद ही पहचान लेती है । उसमें कार्य-कुशलता का अभाव नहीं है । वह प्रतिभा-संपन्न है । परंतु इस रंगीन दुनिया में सिफारिश जैसी चमत्कारी पूँजी उसके पास नहीं है । उसका कोई गॉडफादर नहीं है । फिर भी उसे इस बात का पूरा विश्वास था कि व्यक्ति की प्रतिभा किसी न किसी दिन पहचानी ही जाती है । उसे अपनी कार्य कुशलता और प्रतिभा पर पूरा विश्वास था । अंत में उसका विश्वास फलित होता है

और भोजराज जैसे व्यक्ति उसकी प्रतिभा को पहचान लेते हैं । वह अपनी प्रतिभा और ईमानदारी के बल पर कामयाब होती है ।

पति से अलग होने के बाद मायके वाले जब उसका साथ देते हैं, तब उसका आत्मबल बढ़ता है । माँ के जीवित रहने तक अंकिता को वह आत्मबल मिला; परंतु माँ की मृत्यु के बाद यह स्थिति खत्म हो गई । उसके भैया पत्र द्वारा सुधांशु से अंकिता को जोड़ने की कोशिश करने लगे । सुधांशु भी यही कहता था कि उसे अपने किए पर पश्चात्ताप है । अंकिता उस समय तक विज्ञापन जगत में बहुत ऊँचाई पर पहुँच गई थी । वहाँ की चकाचौंध की व्यर्थता को वह अच्छी तरह पहचान गई थी । वह अपने अनुभवों के चलते एक सशक्त नारी बन गई थी । फिरी भी उसकी जिंदगी को एक शून्यता घेरे हुए थी । अभी भी उसके मन में घर बसाने का मोह था; परंतु सुधांशु जैसे पुरुष से वह उस शून्यता को भरना नहीं चाहती थी । अंकिता और सुधांशु को मिलाने के इरादे से हरींद्र, लंदन जाने से पूर्व, उन दोनों को अपने घर पर बुलाता है । वहाँ पर मदिरा के नशे में सुधांशु टूटे हुए रिश्ते को पुनः जोड़ने की इच्छा व्यक्त करता है । परंतु स्त्री की संवेदना को न पहचानने वाले सुधांशु को अंकिता एक करारा झटका देती है । वह कहती है : ‘सुधांशुजी, औरत बोनसाई का पौधा नहीं, जब जी चाहा, उसकी जड़ें काटकर उसे वापस गमले में रोप लिया । वह बौना बनाए रखने की इस साजिश को अस्वीकार भी तो कर सकती है ।[१२]

‘एक जमीन अपनी’ उपन्यास में लेखिका को जो कुछ सकारात्मक कहना है, उसे वह अंकिता के माध्यम से कहा है । अंकिता के अनुसार स्त्री-पुरुष की समानता का तात्पर्य स्त्री को मर्द बनाना नहीं है । समाज में पुरुष के लिए जो अनैतिक, अमानवीय, दुराचरण और उच्छृंखल है, वह स्त्री के लिए भी है । स्त्री-स्वातंत्र्य के बारे में वह कहती

है : 'स्त्री को स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं चाहिए; उन रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए, जिन्होंने उसे वस्तु बना रखा है, जो स्त्री को भोग की वस्तु मानकर उसे इस्तेमाल करती आई हैं और कर रही हैं । यह शुद्ध काम संबंधों की सुविधा है ।[१३]

अंकिता के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपने जीवन में मर्यादा को महत्त्व देती है । अपने सिद्धांतों के कारण उसे उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है, लेकिन लेखिका ने उसमें कहीं भी बेचारगी का भाव नहीं आने दिया है ।

२. नीता :

नीता 'एक जमीन अपनी' की दूसरी महत्त्वपूर्ण पात्र है । वह अंकिता की ठीक विरोधी पात्र है । अंकिता के उज्ज्वल पक्ष को - अर्थात् लेखिका के मंतव्य को उजागर करने के लिए नीता एक अनिवार्य पात्र है ।

नीता अंकिता की सहेली है । लेकिन उसकी प्रकृति और उसकी सोच अंकिता के विपरीत है । उसके जीवन की त्रासदी यह है कि वह निर्बाध मुक्त व्यक्तित्व के विकास के नाम पर अपना शोषण करवाती है । विज्ञापन की दुनिया में सफलता प्राप्त करने के लिए वह शॉर्टकट अपनाती है । लेकिन उसकी अपनी कोई जमीन न होने के कारण उसका जीवन पत्तों के महल-सा भहराकर गिर जाता है । वह बाल-बच्चेदार सुधीर के साथ इस भ्रम में रहती है कि 'पति-पत्नी की शताब्दियों की दासता से मुक्त होकर सहज स्त्री-पुरुष के रूप में रहा जा सकता है, बिना शोषित हुए या किए ।[१४]

लेकिन उसकी यह सोच छलावा सिद्ध होती है । उत्तरदायित्वहीन निरंकुश होकर स्त्री-पुरुष का साथ रहना, कामुकता के तृप्त होने या भ्रम टूटने पर, कितना भयानक हो जाता है, इसका उदाहरण नीता का जीवन है । लेखिका ने नीता के रूप में यश और पैसे के पीछे भटकने वाली 'मध्यवर्गीय नगरीय युवती के जीवन के हाहाकार

को दिखाया है, जो स्वयं ही अपने मोह, अज्ञान, अविवेक और थोथे अहं का शिकार होती है ।[१५]

सारे अनुभवों से गुजरने के बाद नीता सब कुछ समझती है; लेकिन अब उसके पास समय नहीं है । अपने अंतिम समय में, अपनी पुत्री के पालन-पोषण की जिम्मेदारी अंकिता को सौंपते हुए, अपने मृत्यु-पत्र में वह लिखती है : 'अंकु ! मानसी - भविष्य की स्त्री को तुम्हें सौंप रही हूँ - कुम्भार के हाथों में कच्ची मिट्टी-सी - तुम्हारी ममता की गोद में मानसी अपने अस्तित्व की तलाश पूरी कर सकेगी - विश्वास है ।[१६]

चित्राजी ने नीता के माध्यम से विज्ञापन जगत की गंदी व्यावसायिकता और अनैतिकता की चकाचौंध में उलझी आधुनिक स्त्री का चरित्र स्पष्ट किया है ।

३. मेहता :

मेहता 'एक जमीन अपनी' उपन्यास के गौण पात्रों में से एक पात्र है । उपन्यास की कथा में मेहता की कोई निर्णायक भूमिका नहीं है; फिर भी वह उपन्यास में आदि से अंत तक मौजूद है । वास्तव में मेहता अंकिता का करीबी मित्र है । वह स्त्री का आदर करना जानता है । वह अंकिता के हर काम में मदद करता है ।

मेहता को उपन्यास में पुरुषत्व से हीन बताया गया । अपनी कमजोरी के कारण ही वह अपनी पत्नी कोकिला को अपने छोटे भाई के साथ शारीरिक संबंध रखने की छूट दे देता है । भाई की शादी हो जाने के बाद कोकिला निराश होकर आत्महत्या कर लेती है । इस घटना का मेहता पर बहुत असर हता है । वह अपने आपको कोकिला की मौत का जिम्मेदार मानता है । मेहता खुले दिल का व्यक्ति है ।

४. हरींद्र :

हरींद्र अंकिता के पति सुधांशु का मित्र है । अंकिता और सुधांशु का संबंध

विच्छेद हो जाने पर भी अंकिता और हरींद्र का संबंध बना रहता है। मेहता की भाँति हरींद्र भी स्त्री का सम्मान करता है। वास्तव में वह अंकिता का हितैषी और मित्र है। हरींद्र की पत्नी सविता अंकिता और हरींद्र के संबंध को शक की नजर से देखती है। परंतु बाद में उसका शक दूर हो जाता है।

हरींद्र सुधांशु और अंकिता को मिलाने का भी प्रयत्न करता है। परंतु अंकिता सुधांशु से संबंध रखना स्वीकार नहीं करती। 'माध्यम' नामक विज्ञापन एजेंसी में अंकिता का काम करना हरींद्र को पसंद नहीं है। वह उसे पत्रकार के रूप में देखना चाहता है। परंतु अंकिता 'माध्यम' की कार्यकारी निदेशक बनकर अपनी सफलता प्राप्त करती है।

५. सुधांशु :

सुधांशु 'एक जमीन अपनी' में अंकिता का पति है। अंकिता ने उसके साथ प्रेम-विवाह किया है। परंतु सुधांशु का स्वभाव उपन्यास में सामंती चरित्र के रूप में उभरकर सामने आता है। उसे शराब और जुए की लत लग जाती है। अंकिता के विरोध करने पर सुधांशु उसके साथ अपमानजनक व्यवहार करता है। स्वाभिमानी अंकिता अपना स्वतंत्र जीवन जीने के लिए पति का घर छोड़ देती है तथा अपना भविष्य बनाने के लिए विज्ञापन की दुनिया में प्रवेश करती है।

बाद में सुधांशु को अपने किए पर पछतावा होता है। वह फिर से अंकिता से साथ संबंध बनाने की कोशिश करता है। हरींद्र इसमें बिचौलिये की भूमिका निभाता है। परंतु अंकिता साफ इंकार कर देती है।

६. नमिता :

'आवाँ' उपन्यास की कथा के केंद्र में नमिता पांडेय है। डॉ. विजयमोहन

कहते हैं कि वह नाम के अनुरूप प्रायः नमिता ही रहती है। घर में कर्कशा और क्रूर माँ, बाहर का लोलुप पुरुष परिवेश। वह बहुत सबल प्रतिरोध नहीं कर पाती। मजदूर आंदोलन के कीर्तिध्वज पिता तुल्य अन्ना साहब की विकृत यौन क्रियाओं का भी वह तत्काल प्रतिरोध नहीं कर पाती। केवल उनसे मुक्त रहने का निर्णय लेती है। किंतु मुक्ति की यह 'चाह' उसे किस 'राह' पर ले जाती है? अयाचित तथा अपरिमित रूप से मेहरबान 'मैडम' और संजय के आरामगाह में। कथा का यह विडंबनात्मक पक्ष ही उसे अधिक मार्मिक बनाता है। किंतु लेखिका इस ट्रेजिक नियति के प्रति सजग है और वह नमिता को हर बार एक गलत मोड़ से वापस ले आती है।[१७]

नमिता के चरित्र को लेखिका ने एक दब्बू लड़की के रूप में चित्रित किया है। वह बचपन से ही अपनी कर्कशा माँ के दबाव में पली-बढ़ी है। माँ के व्यक्तित्व से कुंठित होने के कारण उसका अपना व्यक्तित्व विकसित नहीं हो सका है। इसी के कारण उसमें आत्मविश्वास की कमी दिखाई पड़ती है। आत्मविश्वास की कमी के कारण ही वह परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाती, बल्कि परिस्थितियों के प्रवाह में बहती चली जाती है। इसी के चलते वह बचपन में ही अपने मौसा के हबस का शिकार होती है; पितृतुल्य अन्ना साहब के यौन-विकृति का वह विरोध नहीं कर पाती; अंजना वासवानी द्वारा रचे गए षडयंत्र के बाहर नहीं आ पाती।

नमिता पांडेय के चरित्र में ऐसा कोई चिह्न दिखाई नहीं पड़ता, जिससे यह लगे कि वह एक जुझारू मजदूर नेता की संतान है। उसकी इसी कमजोरी को लक्ष्य करके डॉ. रामविनाय शर्मा लिखते हैं : 'आवाँ की केंद्रीय पात्र नमिता, जिसके चारों ओर उपन्यास की घटनाएँ घूमती हैं, कोई यादगार भूमिका निभाने में असफल सिद्ध होती है। लेखिका उसके व्यक्तित्व के समुचित विकास का मौका नहीं देती और बीच-

बीच में परिवार की अवधारणा के बचाव में आकस्मिक प्रकट होती है।'[१८] लेकिन यह बात पूरी तरह से सच नहीं लगती। नमिता अपनी कमजोरी को जानते हुए बीच-बीच में उससे उबरने की भी कोशिश करती है। संजय कनोई का कैमरा मैन नमिता को यह सलाह देता है कि यदि वह मॉडलिंग के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहती हैं, तो इसके लिए उन्हें एक नंबर वन अलबम बनवाना होगा और उसे प्रतिष्ठित एजेंसियों के सामने विचारार्थ रखना होगा। साथ ही, मेरे साथ एक अनुबंध करना होगा। आमदनी में से साठ प्रतिशत मेरा होगा और चालीस प्रतिशत आपका होगा और पोर्टफोलियो बनाने के एवज में आपको मेरे साथ शारीरिक संबंध रखना होगा। लेकिन नमिता सिद्धार्थ को जो जवाब दोती है, उससे यह प्रकट होता है कि वह पूरी तरह से असहाय नहीं है : 'आपके प्रस्ताव पर मैं थूकती हूँ सिद्धार्थजी! शुभचिंतक को तो अपने भविष्य की जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है, दलाल को नहीं। दलाल को तो हर औरत रंडी लगती है। बेहतर होगा आप फोटोग्राफी छोड़कर चकला खोल लें।'[१९]

नमिता के चरित्र के बारे में अंतर्द्वंद्व की कमी दिखाई पड़ती है। एक तरफ वह संजय कनोई से प्रेम करती है और दूसरी तरफ उसके पेट में उसी संजय कनोई का जो अंश पलता है, उससे वह छुटकारा भी पाना चाहती है। उस अंश के प्रति उसके मन में तनिक भी ममत्व प्रतीत नहीं होता। अन्ना साहब की हत्या का समाचार सुनकर जब उसका गर्भपात हो जाता है, उस समय की उसकी शारीरिक पीड़ा का वर्णन तो लेखिका ने किया है, परंतु चार-पाँच महीने से नमिता जिस गर्भ को ढो रही थी, उसके कारण उपजी उसकी मनोव्यथा का जरा भी वर्णन नहीं किया गया है। नमिता को इतना संवेदनशून्य चित्रित किया गया है। इसके अलावा अन्ना साहब के घृणित कृत्य के प्रति भी वह कोई आक्रोश व्यक्त करते वह दिखाई नहीं पड़ती। सिर्फ 'आघाड़ी' की नौकरी छोड़ने तक ही उसका आक्रोश सीमित रहता है।

उपन्यास का केंद्रीय पात्र होने के नाते नमिता को एक साथ कई जिंदगियाँ जीनी पड़ती हैं। पिता देवीशंकर की रोगग्रस्त जर्जर देह की सेवा से लेकर छोटे भाई-बहन की पढ़ाई की चिंता और कर्कशा माँ की कटूक्तियों को झेलकर पापड़ बेलने, जगह-जगह नौकरी की अर्जियाँ देने और लगातार कोशिशों के बाद थक-हारकर लौटती नमिता घर को चहकता देखना चाहती है; इसलिए उदास नहीं होती। 'आवाँ' नमिता के संघर्ष, उसकी यातना और अंत में उसकी असल जमीन की सही शिनाख्त करता है।[२०]

७. पवार :

पवार 'आवाँ' का एक बेहद रोचक और सशक्त चरित्र है। वह दलित है; किंतु इसके कारण उसमें कोई कुंठा नहीं है। सामाजिक विडंबनाओं के प्रति वह सबसे अधिक कटु और मुखर पात्र है। पवार के बारे में डॉ. के. वनजा लिखती हैं : 'पवार सभी में दोष देखता है। उसके प्रत्येक शब्द में सूई की चुभन है। वह जाति-भेद और धर्मभेद से ऊपर उठकर सांप्रदायिक सद्भावना पर बोलने वाली सुनंदा को खतरनाक समझता है।'[२१]

पवार अन्ना साहब की नीतियों से असहमत ही नहीं, बल्कि पूर्णतः उनके विरुद्ध है। अन्ना साहब के श्रमिकोद्धार को वह दिखावा मानता है। इसी लिए वह मौका पाकर, अन्ना साहब के पैरों को खींचने के लिए सदा तैयार रहता है।

पवार उसका वास्तविक जाति-संबोधन नहीं है। वह अनेक बार इसका खुलासा करता है कि वह जाति का डोम है। मैला ढोना उसका जातिगत कर्म है। पवार को अपने नाम से घृणा है; क्योंकि यह नाम (पवार) उच्च जाति का सूचक है। पवार तो मराठा क्षत्रिय होते हैं। यह नाम तो उसके दादाजी का रखा हुआ है। उसका यह भी

दावा है कि उसकी सफलता की कुंजी उसका दलित होना है। पवार के पिता ने सवर्णों का मैला सिर पर ढो-ढोकर बड़ी कठिनाई और विरोध के बावजूद अपनी पढ़ाई पूरी की थी और आरक्षण के सहारे अच्छी सरकारी नौकरी हासिल की थी। उन्होंने पवार को जागरूक बनाया और दलितों के बुनियादी अधिकारों से अवगत कराया। इसलिए पवार आज दलितों की बेहतरी के लिए प्रयत्नशील है। लगभग बाईस हजार दलित मजदूरों का उसे समर्थन प्राप्त है।

पवार अपने बुद्धि-चातुर्य पर गर्व करता है। कई नवीन विचारों को सँजोकर वह उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न करता है। उसके विचारों में अंतर्विरोध और विसंगतियाँ भी हैं। एक तरफ वह यह कहता है कि श्रमिक स्त्रियों को सबसे पहले अपने कानूनी अधिकारों से परिचित होना चाहिए। परंतु दूसरी तरफ वह अपने अधिकारों और समानता के लिए लड़ने वाले स्त्री समाज की विरोधी भी है। वह स्त्रियों को घर तक सीमित रखना चाहता है। उसकी मान्यता है कि स्त्री योग्य घर-वर के साथ ही अपने परिवार में सुरक्षित है। स्त्री के प्रति उसका यह दृष्टिकोण उसके इस कथन से स्पष्ट होता है : 'फेंटे में तलवार कसकर निकलने पर भी समाज में तुम लोगों का सुरक्षित रह पाना संभव नहीं। सुरक्षा इसी में है कि समय रहते किसी योग्य घर-वर के संग सप्तपदी कर लो। घर-आँगन में झाड़ू-बुहारू करते पति के बच्चे जनो और जने हुओं का काजल-टीका करते हुए उन्हें देश-समाज का सुदृढ़ नौनिहाल बनाओ। हर दूसरे-तीसरे साल नौ महीना पेट फुलाकर औरत किस बूते पर मर्द का मुकाबला करेगी। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के बीतते न बीतते संपूर्ण विश्व की सन्नारियाँ गहन चिंतन-मनन करने लगेंगी कि उनका एक मात्र श्रेष्ठ स्वरूप जननी है, केवल जननी।'[२२]

अर्थात् पवार इसी व्यवस्था में पूरे संसार में परिवर्तन लाना चाहता है। वह

पुरुष-वर्चस्व में जरा भी परिवर्तन लाना नहीं चाहता। इस आयाम पर वह उपन्यास का बेहद स्थिर पात्र है। उसकी यह खंडित राजनीति मजदूरों के विकास के लिए हानिकारक तो है ही, देश के विकास के लिए भी विनाशकारी है। उसको हर व्यक्ति के भीतर कोढ़ दिखाई देता है। माना तो यह जाता है कि जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों से प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में परिष्कार होता चलता है; पंरतु न जाने क्यों पवार परिष्कृत होना नहीं चाहता। अन्ना साहब की हत्या के बाद भी वह यही कहता है : 'हालाँकि अधिक दिन जीकर वे आघाड़ी को कोई नई गति दे भी नहीं सकते थे। जड़ हुआ विचार मुक्ति के रास्ते नहीं तलाशता, बल्कि खुल रहे किवाड़ों पर जबरन साँकल-सा चढ़ बैठता है।'[२३]

पवार की स्वार्थपरता और महत्त्वाकांक्षा उसके इस कथन में प्रकट होती है : 'अन्ना साहब से क्यों जुड़ा मैं? सोचो। कोई अलग से संगठन खड़ा करना चाहता, तो निश्चित ही पूरा जीवन हो जाता। आसान हो जाता है किसी मजबूत संगठन में प्रवेश कर जातीय सांप्रदायिकता के बलबूते उसका महत्त्वपूर्ण धड़ा बन जाना। उसी संगठन में मोल-भाव की औकात पैदा कर लेना। उनके लिए चुनौती बन जाना। सुअवसर देख पूरे धड़े के साथ विभाजित हो, स्वतंत्र पार्टी कायम कर लेना।'[२४]

इसके बावजूद, कमलेश सचदेव के अनुसार[२५] पवार के चिंतन में गहराई है - भले ही उसकी अभिव्यक्ति भदेश और अक्सर अश्लील है। वह सामने वाले व्यक्ति की पूर्व निश्चित धारणाएँ तोड़ने और नए ढंग से सोचने के लिए उत्तेजित करने की खातिर सोच-समझकर ऐसा करता है। स्त्री के स्वावलंबी बनने का समाज पर जो प्रभाव पड़ रहा है, उसके विषय में पवार का कहना है : 'परस्परता विकसित होनी चाहिए थी। हो रहा है उल्टा। घर टूट गए। टूट रहे हैं। टूटेंगे। त्रिशंकु बनी संतानें

अपने अस्तित्व के अपरिचय से जूझ रही हैं, जूझेंगी। समस्या विकराल से विकरालतर होती जा रही है।'

पवार के बारे में कमलेश सचदेव यह भी कहते हैं : 'पवार की अभिव्यक्ति की तीक्ष्णता को छोड़ दिया जाए, तो उसके विचार लेखिका के विचारों से बहुत हद तक मेल खाते हैं।'[२६]

८. अन्ना साहब :

अन्ना साहब 'आवाँ' में चित्रित मजदूर संगठन 'कामगार अघाड़ी' के सर्वेसर्वा हैं और बंबई के सबसे बड़े मजदूर नेता हैं। एक ओर वे मजदूरों के हितों के लिए समर्पित हैं, तो दूसरी ओर उनमें कुछ कमजोरियाँ भी हैं। विमलाबेन से उनके अवैध संबंध भी हैं। इतना ही नहीं, अपने मित्र तथा 'कामगार आघाड़ी' के महासचिव देवीशंकर पांडे की पुत्री को अपनी वासना का शिकार भी बनाते हैं। कमलेश सचदेव के अनुसार 'महानतम नेता भी मनुष्य ही होते हैं। उनमें कुछ दुर्बलताएँ होना नितांत सहज है। लेखिका का मंतव्य यही प्रतीत होता है कि अन्ना साहब जैसे श्रमिक हितों को समर्पित जुझारू नेता का मनुष्य सुलभ कमजोरियों और विकृतियों से युक्त होना उन्हें सामान्य मनुष्य बनाता है। अन्ना साहब की यौन विकृति से आहत नमिता उनके व्यक्तित्व के उज्ज्वल पक्ष के कारण उन्हें क्षमा कर चुकी दिखाई देती है।'[२७]

नमिता के यौन उत्पीड़न वाली घटना को छोड़कर लेखिका ने अन्ना साहब को नमिता के परिवार के प्रति सद्भावना रखने वाले तथा मजदूर हितैषी नेता के रूप में ही चित्रित किया है। डॉ. के वनजा अन्ना साहब को एक अच्छे दिल वाला महान व्यक्ति मानती हैं; परंतु वे भी नमिता के साथ किए गए उनके अतिचार को महा अपराध की संज्ञा देती हैं। परंतु अन्ना साहब खुद इसे अपराध नहीं मानते। अपने बचाव में

वे जो तर्क पेश करते हैं, वे खुद लेखिका के तर्क लगते हैं। लेखिका यह मानती हैं कि मनुष्य होने के नाते जीवन में कभी-कभी अनेक प्रकार के विचलन आने की संभावना बनी रहती है। इस बात को वे गांधीजी के जीवन से सिद्ध करना चाहती हैं।

दूसरी तरफ डॉ. दामोदरदत्त दीक्षित अन्ना साहब के चरित्र पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं : 'इसमें अन्ना साहब का चरित्र निरंतर क्षरणशील मजदूर नेता के रूप में उभरा है। वृहत्तर रूप में देखा जाए, तो आज के अधिकांश नेताओं का यह राष्ट्रीय चरित्र हो गया है।'[२८]

९. संजय कनोई :

'आवाँ' उपन्यास में चित्रित संजय कनोई आभूषणों का बड़ा व्यापारी है। अहमदाबाद में उसका करोड़ों का व्यापार है। वह देश-विदेश में आभूषणों का निर्यात करता है। वह विवाहित है, किंतु निःसंतान है। उसकी पत्नी अपने पिता के और भी बड़े व्यापार में व्यस्त रहती है।

संजय कनोई मूलतः सामंती और पूँजीवादी मानसिकता का प्रतीक है। उसके मन में मजदूरों के प्रति कूट-कूटकर घृणा भरी है। इसी लिए वह कहता है : 'दुनिया भर के मजदूरों की एक ही जात होती है। हरामखोरों का मजदूर होना ही उनकी जात है।'[२९]

उसकी पत्नी बच्चे को जन्म देने में असमर्थ है। किंतु, इसके लिए वह अन्य उपायों का भी उपयोग करना नहीं चाहती। वह अपनी बहन के बच्चे को कानूनी रूप से गोद लेना चाहती है। उसकी माँ एक अनाथाश्रम से किसी बच्चे को गोद लेने के पक्ष में है। परंतु संजय की पत्नी निर्मला कुल-गोत्र-विहीन बच्चे को गोद लेना नहीं चाहती। इतना ही नहीं, वह अपने पिता के कारोबार को सँभालकर पति की प्रतियोगी

बनकर उद्योग के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहती है। वह अपने पति की इच्छा का बिल्कुल ध्यान नहीं रखती। इसी लिए कनोई मैडम वासवानी की मदद से नमिता को फाँसता है। नमिता से बच्चा पैदा कराकर वह बाप भी बनना चाहा है और अपना पुरुषत्व भी साबित करना चाहता है।

वह नमिता को विश्वास दिलाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाता है। वह नमिता को भरोसा दिलाता है कि वह अपनी से तलाक लेकर उससे विवाह करेगा। नमिता उसकी प्रेमभरी बातों में आ जाती है और अपना शरीर उसे सौंप देती है। नमिता गर्भवती बनती है। किंतु थोड़े समय बाद अन्ना साहब की हत्या का समाचार सुनकर नमिता को ऐसा सदमा लगता है कि उसका गर्भ गिर जाता है। उसके गर्भ गिरने की बात जानकर कनोई आग बबूला हो उठता है और अपनी असलियत खुद बता देता है : 'जानती हो बाप बनने के लिए मैंने तुम्हारे ऊपर कितना खर्च किया है? ... मैं रंडियों से बाप नहीं बनना चाहता था। ... मुझे सिर्फ उस लड़की से औलाद चाहिए, जो पेशेवर न हो ... पवित्र हो, जो मुझ पर प्रेम कर सके। सिर्फ मेरे लिए माँ बने।'[३०]

१०. मैडम वासवानी :

मैडम वासवानी धनपतियों के सामने सुंदर कुँवारी कन्याओं को परोसने की दलाली करने वाली महिला है। तीन-तीन वातानुकूलित गाड़ियों के होते हुए भी लोकल ट्रेन में यात्रा करती है, ताकि अपना शिकार आसानी से तलाश कर सके। एक लोकल ट्रेन में ही उसकी मुलाकात नमिता पांडे से होती है, जिसे वह संजय कनोई के सामने पेश करती है। वह अपने शिकार को फँसाने के लिए वेचन के रूप में बड़ी रकम और महँगे उपहार देती है। उसका शिकार उसके उपकारों से इतना दब जाता है कि उसके प्रस्ताव को अस्वीकार करने की भी हिम्मत उसमें नहीं रहती। लेखिका ने मैडम वासवानी

के पात्र द्वारा यह भी दिखाना चाहा है कि औरत को नरक में झोंकने में पुरुष ही नहीं, वासवानी जैसी महिलाएँ भी किस तरह सक्रिय हैं।

११. कौसल्या :

कौसल्या नमिता की माँ है। 'आवाँ' में वह एक ऐसी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है, खुद के कर्कश स्वभाव से सारे घर को नरक बनाए रखती हैं। नमिता की माँ अपने परिवार से ज्यादा अपने मायके से संबंधित लोगों को मानती है। वह अपनी छोटी बहन कुंती के लिए हमेशा पलकें बिछाए रखती है। वह बहन का उतरन पहनने में भी खुशी का अनुभव करती है। वह भयानक रूप से स्वार्थी औरत है। उसे अपने स्वार्थ के समाने अपने सुहाग की भी चिंता नहीं है। देवीशंकर पांडे अस्पताल में मृत्युशैया पर पड़े हैं, उस समय उनके इलाज के लिए शेवड़े अपनी पत्नी की सोने की चूड़ियाँ बेचकर पाँच हजार रुपये नमिता के हाथ पर रख देता है; जबकि चूड़ियाँ तो नमिता की माँ कौसल्या के हाथों में भी थीं। लेकिन स्वार्थ में अंधी वह ऐसा कुछ भी नहीं करती।

पिता के असमर्थ होने पर नमिता अपनी पढ़ाई रोककर परिवार की जिम्मेदारी अपने सिर पर ले लेती है। ऐसी बेटी को दुत्कारते हुए उसकी अपनी माँ कौसल्या कहती है : 'कमीनी कुकरी! अरथी उठी नहीं बाप की और तू हो गई जरनैल! पीछे खड़ी सुन रही थी तेरी गुर्राहट, कुंती ने भले ही पूछी, तो झपट पड़ी लाग-लिहाज छोड़ कर उसे चबाने। ला मैं तेरे दाँत तोड़कर धर दूँ मुँगरी से। चबा - फिर देखती हूँ कैसे चबाती है कुतिया!'[३१]

'आवाँ' के इस चरित्र के बारे में मृदुला गर्ग की टिप्पणी बहुत मार्मिक है : '... स्वयं वह एक रसीली औरत की तरह हास-परिहास कर सकती है, जिंदगी

को भरपूर जी सकती है, पर बेटी के लिए दरोगा बनी रहती है। सोचा जाए, तो जिंदगी में ऐसी अनेक माँएँ दिख जाएँगी, पर साहित्य में उनका परत-दर-परत उघड़ता रूप विरल है।'[३२]

१२. स्मिता :

स्मिता 'आवाँ' उपन्यास का सबसे अधिक चेतना संपन्न स्त्री पात्र है। वह नमिता की अंतरंग सहेली है। वह उपन्यास का अत्यंत विद्रोही पात्र है। वह मटकाकिंग की छोटी बेटी है। बाप के अत्याचार से सहमी माँ और बाप द्वारा अपनी ही बड़ी बेटी का यौन-शोषण देखकर वह विद्रोही बन जाती है और उस अत्याचारी बाप को मारकर पूरे परिवार को आतंक के वातावरण से मुक्ति दिलाती है।

स्मिता विद्रोही और निडर तो है; परंतु उसके सामने किसी आदर्श अथवा मूल्य के रूप में ऐसा कोई दिशाबोध नहीं है, जो उसके विद्रोह को रचनात्मक रूप दे सके।

१३. जसवंत सिंह :

बाबू जसवंत सिंह 'गिलिगडु' उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। वे रिटायर्ड सिविल इंजीनियर हैं। वे कानपुर के रहने वाले हैं। उनका बेटा नरेंद्र अपने बाल-बच्चों के साथ दिल्ली में रहता है।

पत्नी और अपने परम मित्र के गुजर जाने के बाद वे बिल्कुल अकेले हो जाते हैं। अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए डॉक्टर की सलाह से वे अपने बेटे-बहू के पास दिल्ली आ जाते हैं। परंतु बेटा-बहू दोनों उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते। दोनों पोते तो उनसे बोलते ही नहीं। दिल्ली आने का उनका सारा उत्साह खत्म हो जाता है। बेटे के पास उपेक्षा और अपमान के घूँट पीकर रहना पड़ता है। बेटे के

पास एक कुत्ता है। बाबू जसवंतसिंह की हालत अपने बटे-बहू की नजर में उस कुत्ते से भी गई-बीती है।

इसी बीच उनकी मुलाकात कर्नल स्वामी से होती है। कर्नल भी रिटायर होने के बाद दिल्ली में अपने बेटे के पास रहते हैं। उनकी हालत जसवंतसिंह से भी खराब है। परंतु अपनी दुर्दशा की बात वे बाहर किसी नहीं कहते। कर्नल स्वामी से मुलाकात के बाद बाबू जसवंतसिंह को काफी हिम्मत मिलती है। थोड़े समय बाद कर्नल स्वामी की मृत्यु हो जाती है। बाद में उनकी मृत्यु रहस्य जानने के बाद जसवंतसिंह को बहुत आघात लगता है और वे दिल्ली छोड़कर कानपुर वापस लौट जाने का निश्चय करते हैं। यहाँ तक कि वे अपनी वसीयत भी बदल देते हैं। कानपुर के उनके मकान की देखभाल करने वाली सुनगुनियाँ और उसके बेटे के नाम अपनी चल-अचल संपत्ति कर देते हैं।

१४. कर्नल स्वामी :

कर्नल विष्णु नारायण स्वामी 'गिलिगडु' उपन्यास के दूसरे प्रमुख पात्र हैं। पत्नी की मौत के बाद कर्नल एकदम अकेले हो जाते हैं। तीनों बेटे अलग-अलग शहरों में नौकरी में आ चुके हैं। अब तीनों बेटे यह चाहते हैं कि पिता नोएडा वाला अपना फ्लैट बेचकर पैसा तीनों बेटों में बाँट दें। परंतु कर्नल इसके लिए तैयार नहीं होते। इसलिए श्रीनारायण गुस्से में आकर उन्हें मारता-पीटता है। फिर पुलिस आती है। कर्नल को अस्पताल में भर्ती कराया जाता है। बाद में उनकी मौत हो जाती है।

१५. सुनगुनियाँ :

सुनगुनियाँ 'गिलिगडु' उपन्यास की एक सशक्त स्त्री पात्र है। वह कानपुर में बाबू जसवंतसिंह के यहाँ काम करती है। उसकी कथा उपन्यास में बहुत थोड़ी है।

फिर भी उसे स्त्री-चेतना से परिपूर्ण सशक्त पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सुनगुनियाँ के पति रामआसरे पासी की मृत्यु के बाद उसका जेठ उसे गाँव ले जाता है और तेरहवीं के बाद सुनगुनियाँ को धमकाकर उसकी शादी एक खूसट बूढ़े के साथ करा देना चाहता है; ताकि सुनगुनियाँ को खेती-बारी में हिस्सा न देना पड़े। परंतु सुनगुनियाँ हिम्मत करके रात के अँधेरे में अपने बच्चों को लेकर कानपुर बाबू जसवंतसिंह के पास चली आती है।

पत्नी के मरने के बाद बाबू जसवंतसिंह जब दिल्ली चले जाते हैं, तब उसके घर की देखभाल की जिम्मेदारी सुनगुनियाँ ही सँभालती है। दिल्ली से लौटने के बाद बाबू जसवंतसिंह सुनगुनियाँ के परिवार को अपना परिवार मानकर उसके साथ रहने लगते हैं। अपनी चल-अचल संपत्ति वे सुनगुनियाँ के बच्चों को दे देते हैं।

(ख) कहानियों के पात्र :

चित्राजी की कहानियों की एक बड़ी विशेषता यह है कि उनकी अधिकांश कहानियों में एक ही मुख्य पात्र होता है। इसका परिणाम यह होता है कि चित्राजी अपना सारा ध्यान उस प्रमुख पात्र पर केंद्रित कर उसके चरित्र के सभी पहलुओं को चित्रित करने का प्रयास करती हैं।

चित्राजी की कहानियों में प्रमुख पात्र के रूप में पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों की संख्या अधिक है। पुरुष पात्र प्रधान उनकी कहानियों में 'ब्लेड', 'जिनावर', 'बंद', 'पेशा', 'अनुबंध', 'गर्दी', 'त्रिशंकु', 'पाली का आदमी', 'बलि', 'बाघ', 'बेईमान', 'मामला आगे बढ़ेगा अभी', 'लिफाफा' आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। लगभग शेष सभी कहानियाँ स्त्री पात्र प्रधान हैं।

चित्राजी की कहानियों के पात्रों को आदर्श और खल के खाँचों में विभाजित

करना उचित नहीं प्रतीत होता। उनके लगभग सभी पात्र परिस्थितियों की उपज हैं। अर्थात् परिस्थितियाँ ही उनसे अच्छे या बुरे कार्य करवाती हैं। उदाहरण के रूप में 'जिनावर' कहानी के असलम को लिया जा सकता है। वह स्वभावतः अत्यंत संवेदनशील है। वह अपने ताँगे की घोड़ी सरवती से बहुत प्रेम करता है। किंतु परिस्थितिवश उसे गाड़ी से भिड़ा देता है और बाद में पश्चात्ताप भी करता है।[३३]

कहानी में चरित्रांकन की मुख्य दो विधियाँ हैं : प्रत्यक्ष विधि तथा परोक्ष विधि। प्रत्यक्ष विधि में रचनाकार स्वयं पात्रों के बाह्याभ्यंतर चरित्र का अंकन करता है; जबकि परोक्ष विधि में रचनाकार पात्रों के बारे में खुद सीधे कुछ नहीं कहता; बल्कि कहानी के पात्र खुद एक-दूसरे के चरित्र के अच्छे-बुरे पहलुओं को उजागर करते हैं। कभी-कभी कोई पात्र स्वगत कथन के रूप में अपने चरित्र की विशेषताओं को प्रकट करता है।

चित्राजी ने दोनों विधियों का उपयोग अपनी कहानियों में किया है। 'लिफाफा' कहानी में अशोक के बारे में घर वालों के बदले हुए रवैये को लेकर लेखिका लिखती हैं : 'एक वक्त था ... माँ की नजर में वही वह था। बचपन से उसे यह एहसास दिया गया था कि तुम लड़के हो, श्रेष्ठ हो। तुम्हें कुछ बनना है। तुम्हारे कुछ न कुछ बनते ही सारा नक्शा बदल जाएगा। लेकिन बड़े होते-होते सारी परिस्थिति कितनी बदल गई। बड़े होते-होते नहीं शायद ... नौकरी की तलाश शुरू होते ही। शायद ... वे और अनु घर के दो प्रतिस्पर्धी छोर हो गए।'[३४]

एक दूसरा उदाहरण 'अपनी वापसी' कहानी से, जिसमें लेखिका ने रिन्नी के व्यक्तित्व का विवरण अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है : 'रिन्नी! उसकी मझली संतान है। बीसवें बसंत में कदम रखती अल्हड़ अलमस्त युवती! कभी वह रिन्नी पर आँखें

टिकाती है, तो उसके तराशे नयन-नक्श के चुंबकीय आकर्षण में ठिठक-सी जाती है। अजीब-सा सम्मोहन है उसके व्यक्तित्व में ...।'[३५]

चित्राजी ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में संवादों का भी जबरदस्त उपयोग किया है। 'केंचुल' कहानी की कमला और उसकी बेटी सरना के बीच का यह संवाद दोनों की मानसिक स्थिति का चित्रण करता है :

'कामचोर राँड़! कायको नहीं जाएगी? बैइठ के घानी खाने कू माँगता?'

'मैं एकली ज खाती?'

'खाते तो सब ... पन काम के वास्ते ना बोलने से चलता?' कमला विनम्र हुई।

'बाकी सब करेगी। फकत बानी की दुकान पर नई जाएगी।'

'पन काय को नई जाएगी?'

'बोला ना! बस नई जाएगी।'

चित्रा मुद्‌गल की कहानियों के कुछ प्रमुख स्त्री पात्र :

१. पछाँहवाली :

पछाँहवाली 'लकड़बग्घा' कहानी की मुख्य स्त्री पात्र है। वह लंबरदार के छोटे भाई की विधवा है। उसके सिर्फ एक बेटी है, जिसका नाम है पुनिया। लंबरदार परिवार में वह आधे की हरदार है; किंतु घर में उसकी हैसियत एक नौकरानी से अधिक नहीं है; क्योंकि वह बेसहारा है। उसका सहारा उसका पति स्वर्गवासी हो चुका है। सुबह से शाम तक उसके जिम्मे काम ही काम है। वह सब कुछ सहती है सिर्फ इसलिए कि उसकी पुनिया पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ी होने लायक बन जाएगी, तो उसकी जिंदगी सुधर जाएगी।

लेकिन घर में पुनिया के लिए वे सुविधाएँ नहीं मिल पाती हैं, जो लंबरदार के बच्चों को मिलती हैं। वह लंबरदार से पुनिया की पढ़ाई की बात करना चाहती है। परंतु लंबरदार को उससे बात भी करना पसंद नहीं। अपमानित एवं आहत पछाँहवाली घर का सारा काम बंद कर देती है और अनशन पर उतर आती है। उसके बाद लंबरदार उसकी बात सुनने के लिए तैयार होता है। परंतु उसकी बात को हवा में उड़ा देता है। फिर तो पछाँहवाली घर के बँटवारे की बात करती है। लंबरदार से वह अपना हिस्सा माँगती है। बँटवारे की बात सुनकर लंबरदार आग बबूला हो उठता है और उसे मारने के लिए दोनाली बंदूक उठा लेता है। परिवार के लोग बीच-बचाव करते हैं। बात टल जाती है। परंतु पछाँहवाली अगली सुबह नहीं देख पाती। उसकी हत्या हो जाती है और यह प्रचारित किया जाता है कि पछाँहवाली को रात में 'लकड़बग्घा' उठा ले गया।

लेखिका ने पछाँहवाली को गाँव की एक अनपढ़ किंतु साहसी स्त्री के रूप चित्रित किया है। उसकी हिम्मत उसके जैसी स्त्रियों के लिए एक मिसाल है।

२. सुक्खन भौजी :

सुक्खन भौजी 'जगदंबाबाबू गाँव आ रहे हैं' कहानी की मुख्य पात्र है। उसकी एकमात्र संतान ललौना है, जो पोलियो का शिकार है। वही उसके जीवन का आधार है। परंतु वह खुद असहाय है। सुक्खन भौजी उसी के लिए बँधुआ मजदूरनी की तरह ठाकुर सुमेर सिंह के घर काम करती है।

एक दिन सुमेर सिंह उसे बताते हैं कि भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री जगदंबाबाबू हमारे गाँव आने वाले हैं। वे अपाहिज बच्चों को पहियों वाली गाड़ी देंगे। यह समाचार सुनकर सुक्खन भौजी बहुत खुश होती है और अपने ललौना के सुखद भविष्य के

सपने देखने लगती है। सुबह में ललौना को गाड़ी दी जाती है और रात में वह गाड़ी धोखे से छीन ली जाती है। सुक्खन भौजी सुमेर सिंह के पाँव पकड़कर बहुत मिन्नत करती है। फिर भी उसका सपना पूरा नहीं होता। उसे बहुत आघात लगता है।

इस दृष्टि से देखें, तो सुक्खन भौजी का चरित्र पछाँहवाली की तरह विद्रोही नहीं है। वह किस्मत की मारी है और परिस्थितियों के अधीन होकर जीती है। अपने बेटे के प्रति उसके अरमान तो बड़े-बड़े हैं; परंतु किस्मत ने उसे विकलांग बना दिया है। उसमें शोषण के प्रति आक्रोश तो बहुत है; परंतु उसकी प्रतिक्रिया मात्र आक्रोश तक ही सीमित है।

३. कमला :

कमला 'केंचुल' कहानी की मुख्य पात्र है। उसका पति एकदम निठल्ला है। इसलिए सारे परिवर की जिम्मेदारी कमला को ही उठानी पड़ती है। अपने परिवार के गुजारे के लिए वह घर में शराब बनाकर बेचती है। सरना उसकी बेटी है। कमला को जब पता चलता है कि जिस दुकान से वह शराब बनाने के लिए गुड़ लाती है, वह बानी सरना के साथ अश्लील व्यवहार करता है, तब वह आग बबूला हो उठती है। वह बानी को सबक सिखाने के लिए उसकी दुकान पर जाती है। परंतु उसकी मजबूरी बानी से कुछ भी कहने नहीं देती; क्योंकि उसे शराब बनाने के लिए उधार गुड़ देना बंद कर देगा, तो उसके परिवार का गुजारा कैसे होगा? वह बानी से कुछ कहे बिना तंबाकू की पुड़िया लेकर वापस आ जाती है।

कमला विद्रोह से भरपूर स्त्री है। परंतु उसे अपनी असमर्थता का भी बोध है। लड़ने के लिए ठोस आधार की जरूरत होती है, जो कमला के पास नहीं है। चित्राजी इस हकीकत से अच्छी तरह से परिचित हैं।

४. लक्ष्मा :

'भूख' कहानी की मुख्य पात्र लक्ष्मा है। एक दुर्घटना में उसके कारीगर पति की मृत्यु हो जाती है। अपने साथ अपने तीन नन्हें बच्चों का पेट भरने की जिम्मेदारी लक्ष्मा पर आ जाती है। बच्चे छोटे हैं, इसलिए कोई उसे काम भी नहीं देता। पड़ोसिन के कहने पर वह अपने सबसे छोटे बच्चे को दो रुपये प्रतिदिन के किराये पर एक भिखारिन को सौंप देती है। परंतु भिखारिन बच्चे को खाना नहीं देती - जिससे बच्चा मर जाता है। लक्ष्मा छाती पीटकर रह जाती है।

चित्राजी ने लक्ष्मा को एक मजबूर माँ के रूप में कहानी में बखूबी पेश किया है।

चित्राजी की अधिकांश कहानियों में स्त्री पात्र ही प्रमुख हैं। जैसे 'प्रेतयोनि' की अनीता, 'ताशमहल' की शोभना, 'अपनी वापसी' की शकुन, 'अग्निरेखा' की मनू, 'अढ़ाई गज की ओढ़नी' की उमा, 'अभी भी' की शिल्पा, 'इस हमाम में' की अंजा, 'गर्दी' की राजी, 'जब तक विमलाएँ हैं' की विमला, 'दरमियान' की आकांक्षा, 'प्रमोशन' की ललिता, 'बावजूद इसके' की प्रीति, 'लाक्षागृह' की सुनीता, 'लेन' की महींदरी, 'शून्य' की सरला, 'हस्तक्षेप' की अंकिता आदि चित्राजी की कहानियों के सशक्त नारी पात्र हैं, जिनके माध्यम से उन्होंने संघर्षशील नारी के विविध रूपों से हमारा साक्षात्कार कराया है।

चित्राजी ने अपनी कई कहानियों में स्त्री को खल पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। चित्राजी यह नहीं मानतीं कि समाज में स्त्री का शोषण सिर्फ पुरुष ही करते हैं; बल्कि स्त्री भी स्त्री का शोषण करती है। यही नहीं, चित्राजी की कहानियों में ऐसी स्त्रियाँ भी हैं, जो पुरुष का भी शोषण करती हैं। जैसे - 'एक काली एक सफेद' में

कुहू की माँ, 'गर्दी' में नायक की माँ, 'एंटिक पीस' में नमिता की माँ, 'हस्तक्षेप' में नीता, 'अभी भी' में बिजी आदि ऐसे ही नारी पात्र हैं।

चित्रा मुद्गल की कहानियों के कुछ प्रमुख पुरुष पात्र :

५. अशोक :

अशोक 'लिफाफा' कहानी का बेरोजगार युवक है। बचपन से माता-पिता के लाड़-प्यार में पला है; परंतु नौकरी न मिलने के कारण वह परिवार में उपेक्षा का पात्र बन जाता है, जबकि उसकी बहन अनु नौकरी मिलने के कारण परिवार में प्यारी बन जाती है। फिर जब अशोक को नौकरी मिलती है और वह अनुबंध के रुपयों का लिफाफा माँ-बाप के हाथ में देता है, तब परिवार में फिर से उसका मान बढ़ जाता है।

चित्राजी ने अशोक के रूप में यह दिखाने का प्रयास किया है कि माता-पिता की नजर में अपनी संतान तभी प्यारी लगती है, जब वह पैसे कमाकर उनके हाथ में देती है। यह कहानी इस कहावत को चरितार्थ करती है 'न बाप बड़ा न मैया सबसे बड़ा रुपैया।'

६. असलम :

असलम 'जिनावर' कहानी का मुख्य पात्र है। वह ताँगा चलाकर अपने परिवार का पालन करता है। उसकी घोड़ी सरवती बूढ़ी और अशक्त है। वह ताँगा खींच नहीं पाती। परंतु रोजी-रोटी की मजबूरी में असलम उसे ताँगे में जोतता है। घर लौटते समय वह ताँगे को जानबूझ कर एक कार से भिड़ा देता है। कार की टक्कर से सरवती मर जाती है। फिर वह कार के मालिक से दो हजार का सौदा कर लेता है। परंतु बाद में उसे बहुत पश्चात्ताप होता है। रात को फूटफूट कर रोने लगता है और अपने मन

का पाप अपनी पत्नी से कह देता है कि पैसों के लालच में उसने जानबूझ कर ताँगा कार से भिड़ाया था।

असलम के रूप में लेखिका ने मनुष्य की मजबूरी का हृदयद्रावक चित्रण किया है। परिस्थिति से मजबूर होकर सीधा-सच्चा आदमी भी कभी-कभी कितना नीचे गिर जाता है।

७. रामखेलावन :

रामखेलावन 'ब्लेड' कहानी का केंद्रीय पात्र है। वह दिल्ली के एक साहब की गाड़ी का ड्राइबर है। उसका परिवार गाँव में रहता है। उसे पता चलता है कि एक दुर्घटना में उसकी बेटी की टाँग टूट गई है और उसके ऑपरेशन के लिए पैसों की जरूरत है। वह साहब से कुछ रुपये ऐडवांस माँगता है। परंतु साहब रुपयों के बदले ताने देता है। ऐसी स्थिति में वह मजबूर होकर गाड़ी की अच्छी सीट को ब्लेड से चीर देता है और गाड़ी की नई सीट बनवाने के बदले सरदारजी से कमीशन के रूप में दो सौ रुपये पाता है।

चित्राजी ने रामखेलावन के चरित्र द्वारा यह दिखाने की कोशिश की है कि परिस्थितिवश ईमानदार आदमी भी 'ब्लेड' जैसा बन जाता है।

चित्राजी की कहानियों में संघर्षशील तथा शोषण की शिकार स्त्री पात्रों की प्रमुखता है। ऐसी स्थिति में स्त्रियों का शोषण करने वाले पुरुष पात्रों का होना स्वाभाविक है। 'गर्दी' का वह, 'त्रिशंकु' का बंडू, 'पाली का आदमी' का रवि, 'ताशमहल' का निशीथ, 'अभी भी' का सुरेश, 'इस हमाम में' का वह, 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं' का सुमेर सिंह, 'जरिया' का विवेक बतरा, 'प्रमोशन' का सुभाष, 'स्टेपनी' का विनोद, 'लाक्षागृह' का सिन्हा, 'शून्य' का राकेश आदि ऐसे ही पात्र हैं।

३. संवाद :

संवाद कथा साहित्य का एक अनिवार्य तत्त्व है। संवादों के माध्यम से कथा को गति मिलती है तथा पात्रों का चरित्रांकन संभव हो पाता है। कथाकार अपनी रचनाओं में संवादों का उपयोग तरह-तरह से करता है। इस दृष्टि से देखें, तो चित्राजी के उपन्यालों और कहानियों में संवाद का अनूठा प्रभाव दिखाई देता है।

'आवाँ' उपन्यास में स्मिता और उसके पिता का चरित्र नमिता और स्मिता के एक संवाद द्वारा उजागर होता है :

'जिस दिन नौकरी मिल जाएगी मुझे, नमी, बाप रूपी राक्षस को मैं सीढ़ियों से धकेल स्वाभाविक मौत मरने पर विवश कर दूँगी।'

'पगला गई है तू?' अविश्वास से सिहरकर स्मिता को घूरा उसने, 'आई और ताई (बड़ी बहन) के साथ तुम उनसे अलग भी तो हो सकती हो।'

'बाप के जीवित रहते ऐसा संभव नहीं। लंबी बाँहें हैं बाप की। हमें वह आकाश-पाताल से ढूँढ़ लाएगा।'

'मगर तेरा यह नृशंस इरादा स्वस्थ नहीं।'

'नृशंस है, मगर उससे अधिक नृशंस नहीं, जो हर रोज आई-ताई को रोलर-सा कूटता, भुरकुस बनाता उनकी शक्लें उनसे छीनता रहा।'

'ताई ...?'

अँजुरी में मुँह छिपा स्मिता पूरे वेग से फट पड़ी।[३६]

यह संवाद स्मिता के विद्रोही स्वभाव तथा उसके पिता की नीचता को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है।

इसी तरह अन्ना साहब की मृत्यु का समाचार उपन्यास की कथावस्तु को मोड़ देता है। पवार नमिता को फोन पर यह समाचार देता है। दोनों के बीच हुए संवाद

से जो प्रभाव पैदा होता है, वह लेखिका के वर्णन द्वारा नहीं हो सकता था :

‘जो खबर मैं तुम्हें देने जा रहा हूँ, सुनकर तुम धैर्य रखोगी ... बोलो! ... रखोगी?’

‘कैसी पहेलियाँ बुझा रहे हो तुम! ... माँ को कहीं ...’

‘माँ ठीक हैं। घर पर सभी ठीक हैं।’

‘फिर ...?’

पवार क्षणांश ठिठका।

‘डेढ़ घंटे पहले सत्यानंदानी वाले घर से निकलते हुए ... थ्री-व्हीलर पर सवार कुछ हमलावरों ने अन्ना साहब पर अंधाधुंध गोलियाँ चलाईं ...’

‘धक्क’ से उसका मुँह खुला रह गया। विस्फारित नेत्रों से उसने टेलीफोन के चोंगे को देखा। ‘तुम ... तुम मजाक कर रहे हो न? मुझे छकाने के लिए ... अपनी आदत के मुताबिक ...’

‘इतनी दूर से ...? मैं तो तुमको हमेशा सच कह-कहकर छकाता रहा हूँ। आज भी कड़वा सच .... अन्ना साहब नहीं रहे ... आठवले मरनासन्न अत्पताल में पड़ा हुआ है।’[३७]

इस वार्तालाप के बाद उपन्यास की कथा का प्रवाह पूरी तरह से मुड़ जाता है और अवरोध की तरफ आगे बढ़ने लगता है।

संवादों के माध्यम से कथा मों रोचकता उत्पन्न होती है। ‘एक जमीन अपनी’ में अंकिता और हरींद्र के बेटे अंशुल के संवाद से हास्य पैदा होता है और प्रसंग रोचकता से भर जाता है :

‘थानी थुनाऊँ आंती?’

‘सुनाओ, सुनाओ!’ सुधांशु की उपस्थिति का दबाव मस्तिष्क से छँटने लगा था।

‘एत लादा था ...’

‘हाँ, एक लादा था।’

‘च ... लादा नई लादा ...’ अंशुल ने झुँझलाकर उसे सुधारना चाहा।

‘हाँ हाँ, लादा’ उसने कोशिश दर्शाई।

हताश हो अंशुल ने मुंडी को झटका दिया। फिर और जोर देकर दोहराया, ‘लादा नहीं लादाऽ ...’

खीझकर ‘चट’ से अंशुल ने उसके गाल पर अपनी नन्हीं हथेली जड़ दी। सविता उसकी इस धृष्टता पर रसोई के दरवाजे से लपकी, ‘दुष्ट, ढीठ हो गया है ...’

उसने सविता को बरज दिया। वह मजा लेने की खातिर ही खिझा रही है।[३८]

कथा में प्रभाव पैदा करने के लिए कभी-कभी छोटे-छोटे संवाद बहुत कारगर सिद्ध होते हैं। ‘गिलिगडु’ में जसवंत सिंह तथा उनके पोते मलय के बीच होने वाली बातचीत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

बुझे मन से बाबू जसवंत सिंह ने पूछा, ‘चलो न, ले चलो मैकडोनल्स अपने जन्मदिन पर। मगर उपहार क्या लोगे तुम अपने दादू से?’

‘अदनान सामी की सी. डी. दिला दीजिए।’

‘वो कहाँ मिलेगी?’

‘किसी भी सी. डी. की दुकान पर।’

‘आसपास कोई है?’

‘ऊहुँ!’

'तब?'

'पालिका बाजार जाना होगा आपको।'

'तुम दोनों चलोगे?'

'नहीं।'

'क्यों?'

'पढ़ना होता है न!'[३९]

चित्राजी के तीनों उपन्यासों के संवादों के संदर्भ में एक बात गौर करने की है कि 'आवाँ' तथा 'एक जमीन अपनी' के संवाद अपेक्षाकृत लंबे हैं; क्योंकि इन दोनों उपन्यासों में तर्क-वितर्क और बहसें अधिक हैं, जबकि 'गिलिगडु' में बहस की गुंजाइश कम है। इसलिए संवाद थोड़े छोटे हैं।

चित्राजी की कहानियों में कथावस्तु के विकास की दृष्टि से 'दुलहिन' कहानी का एक संवाद उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसमें वयस्क स्त्री के गर्भवती बन जाने के कारण उसके बेटे और बहू को शर्मिंदगी उठानी पड़ती है :

उसी रात उसने अनी से कहा था, 'तुम अम्मा को समझाती क्यों नहीं।'

'क्या समझाऊँ?'

'यही कि ...' वह कुछ कह नहीं पा रहा था। इस संदर्भ में किसी तरह की बातचीत उसे असमंजस में डाल रही थी।

'यानी?'

'आजी बता रही थीं कि अम्मा को तीसरा महीना है ...' उसने अपने तात्पर्य की भूमिका बाँधी, 'सबके सामने बात जाएगी, तो लोग-बाग क्या सोचेंगे कि उधर

बच्चों के बच्चे हो रहे हैं और इधर अधेड़ माँ भी ... छी! ... उचित है कि वे फौरन सफाई करवा लें। बस एक दिन का ही तो काम है। खर्चा भी ज्यादा नगहीं लगेगा। फिर मैं दे दूँगा ... तकलीफ भी नहीं होगी ... किसी को भनक भी नहीं लगेगी।'

'भला मैं किस मुँह से उनसे ऐसी बात करूँ?' अनी ने संकोच से भरकर प्रतिवाद किया।

'तुम्हारी हिचक रही है, मगर उनसे कहना भी तो जरूरी है कि ...'

अनी ने सुझाव दिया था, 'जो झिझक तुम्हारे आड़े आ रही है, वहीं मुझे भी पस्त कर रही है। देखो, बड़ी जिज्जी से उनकी पटती भी है। तुम उनसे आग्रह करो कि वे अम्मा को इस बाबत समझाएँ। वही इस घर में अम्मा से कुछ कहने की हिम्मत कर सकती हैं।'[४०]

पात्रों के चरित्र चित्रण की दृष्टि से 'अपनी वापसी' कहानी में हरीश और रिन्नी के बीच हुई बतचीत का उदारण :

'वाह! क्या मैक्सी पहनी है! ... रिन्नी पैटर्न इज़ रियली फैंटास्टिक ... सिलवाई कहा से? '

'एलीगेंट से पापा ... बाय द वे ... हम कैसे लग रहे हैं इस परिधान में?'

'बताते हैं ... जरा कान इधर लाओ ...'

'रहने दीजिए। हम समझ गए।'

'बगैर बताए ही?'

'फिर कोई गंदी-सी बात कहेंगे।'

'अरे अगर हम बैचलर होते तो तुम पर मर मिटते। वह कोई गंदी-सी बात है?'

'पापा!'[४१]

इस वार्तालाप से पिता के अतिआधुनिक होने का प्रमाण मिलता है, जो अपनी लड़की के साथ खुलकर ऐसी बातें कर सकता है।

सामान्यतः अशिक्षित पात्रों के संवाद सरल भाषा में तथा छोटे होते हैं, जबकि पढ़े-लिखे पात्रों के संवाद गंभीर विषयों पर तथा लंबे हो सकते हैं। 'हस्तक्षेप' कहानी में अंकिता तथा नीता के बीच विज्ञापन फिल्मों के संदर्भ में श्लीलता तथा अश्लीलता को लेकर विवाद चल रहा है :

नीता की भौंहें चढ़ गईं, 'यह जवाब नहीं है ...।'

'कला और अश्लीलता के मध्य विभाजक रेखा क्या है? यह अत्यंत जटिल मुद्दा है और हम निरपेक्ष होकर इस विषय पर बात नहीं कर सकते।'

'क्यों मेरी समझ पर संशय है?'

'अधैर्य तो है ही ...। तुम जो कुछ करती हो, सामान्य जन के संदर्भ में उसे सोचने-समझने का कतई प्रयत्न नहीं करती। यह व्यक्तिवादी रवैया है। तुम्हें जो कुछ पहनकर अश्लील नहीं लगता, तरण-तारण की सुविधा का तर्क उसके साथ जुड़ा होने के बावजूद मुझे अश्लील लगता है ... वह सब अश्लील होता है, जिसे देखकर मन में अश्लील प्रतिक्रिया उपजे। इरादे को कलात्मकता की आड़ में छिप पाना या छिपा पाना कठिन है। अभिव्यक्ति बड़ी पारदर्शी होती है ... तलछटी का रोम-रोम सतह-सा आँखों की सीमा में पसर जाता है ... चाहे जितनी अवधारणाएँ रचते-परोसते रहो ...'[४२]

४. परिवेशांकन :

कहानी हो या उपन्यास - उसके कथ्य को यथार्थ के धरातल पर लाने के लिए

कथ्य के अनुकूल परिवेश का अंकन जरूरी होता है। चित्राजी के उपन्यासों एवं कहानियों का यह पक्ष अत्यंत सजीव है। उन्होंने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में वेशभूषा, रीति-नीति, वर्ग-भेद, अर्थ-व्यवस्था आदि का चित्रण करके परिवेश को जीवंत बनाया है। 'एक जमीन अपनी' की सारी कथा बंबई के आसपास घूमती है। उसके थोड़ी-बहुत हिस्से का संबंध इंदौर से है। बंबई के एक रेलवे स्टेशन के वर्णन का नमूना द्रष्टव्य है :

'स्टेशन पर ठसाठस भीड़ देखते ही उसका माथा ठनका। लगता है कई गाड़ियाँ रद्द हो चुकी हैं। आशंका सही निकली। बोरीवली और कांदीवली के बीच नौ पाँच की चर्चगेट लोकल के अगले डिब्बे में आग लग जाने की वजह से सुबह की कई तेज गाड़ियाँ रद्द कर दी गई थीं। यात्रियों की अधीर होती भीड़ की असुविधा और उत्तेजना से भयाक्रांत हो रेलवे अधिकारियों द्वारा माइक से निरंतर उद्घोषणा हो रही थी ... यात्रियों से निवेदन है कि वे स्थिति की नजाकत को देखते हुए धैर्य और उदारता से सहयोग करें ...।'[४३]

'आवाँ' उपन्यास में जो मजदूरों की बस्तियों का वर्णन किया गया है, वह पाठक को उनकी सैर कराता है :

'चालियों के उलझी माँग-से बीच फँसे सँकरे रास्ते, यत्र-तत्र उतराई नालियों के काले, नीले, गँदले पानी से बजबजाए, चलने के लिए नहीं फाँदने के लिए बाध्य करते-से लगे। सुना जरूर, देखा पहली बार, ऐसे भी रहते हैं लोग! आदमी गंदगी में रह रहा या गंदगी आदमी के बीच! ... अपनी-अपनी चालियों के सामने रास्तों की सुगमता के प्रयोजन से चाली वालों ने बहते पानी और बोदे के बीच दोहरी ईंटों की पगदंडी बिछा ली थी। ... दो चालियों के बीच उतराई पच-पच के बीच सुअरियों

के बच्चे और आदमी के दो नन्ह-मुन्ने अपने-अपने खेल में मग्न थे। निर्द्वंद्व सुअरियों के बच्चे बोदे में पसरी पड़ी आराम फरमा रहीं माँओं के थनों पर टूटे पड़ रहे थे - एक-दूसरे को धकियाते-मुकियाते ...।'[४४]

'आवाँ' में अस्पताल का एक वर्णन, जिसमें नमिता अपने लकवाग्रस्त पिता को लेकर पहुँचती है :

'अस्पताल के विशाल अहाते में दाखिल हो रही थी। लगा जैसे अभयदान की हथेली उसके सिर पर आ टिकी हो। दूसरे ही पल अपरिचित माहौल के आतंक ने उसे आश्वस्त नहीं होने दिया। किस ओर होगी इमरजेंसी? अस्पताल की भीमकाय इमारत में उसे खोज पाना आसान काम नहीं था। प्रांगण में डोलती कायाएँ उसे भूल-भुलैया में भटके हुए खौफनाक चेहरों जैसी लगीं। ... मिनट भर भी नहीं बीता होगा कि दो वार्डब्वाय ट्राली स्ट्रेचर खड़खड़ाते हुए टैक्सी की लपके। दोनों ने मिलकर ठठरी की भाँति अचेत बाबूजी की काया को उसकी गोद से लगभग घसीटकर स्ट्रेचर पर लुढ़का दिया। वॉर्ड ब्वाय स्टेचर को ठेल नहीं रहे थे। बेमन से धड़धड़ाते धकिया रहे थे। इतने धचके खाकर तो भले-चंगे मानुष के प्राण पखेरू फड़फड़ाने लगें। पीड़ा करकी। टोके बिना नहीं रह पाई, 'आहिस्ते चलिए न भैया, तनिक! लकवे के मरीज हैं बाबूजी।' पीछे से धकिया रहे बेडौल चेहरे वाले साँवले वॉर्ड ब्वाय ने जैसे उसे तीखे नाखूनों से बकोटा।

'पिच्छू काय को घबराने का, पेसेंट को कुछ भी नई मालूम पड़ने का।'

'अस्पताल के कर्मचारी हैं ये? रोगियों की सेवा में रत? निष्ठुर! संवेदनशून्य! घावों पर नमक बुरकने वाले ...'[४५]

'जगदंबाबाबू गाँव आ रहे हैं', 'लकड़बग्घा', 'बलि', 'नीले चौखाने वाला

कंबल' आदि कहानियों में ग्रामीण परिवेश का अंकन बहुत अच्छा हुआ है। उदाहरण के तौर पर 'बलि' कहानी का एक दृश्य :

'दिशा-मैदान से फारिग हो, कान में जनेऊ चढ़ाए हुए गाँव की ओर लौट रहे कद्दावर मँझले ठाकुर बलभद्र जैसे ही अपने पंद्रह एकड़ भूमि में हरियाए - आम, अमरूद, कटहल, पपीता, बेरी, कागजी नीबू और बेलों की गझिन बृक्षावलियों वाले विशाल बाग की, डूहनुमा नागफनी आच्छादित चौतरफा बाड़ के ठीक दाहिनी ओर सटे गलियारे से गुजरने लगे कि चिहुँके चित्त से ठिठके। विचार कौंधा। लगे हाथ उन थलहों के खाद-पानी और उठान का मुआयना भी न करते चलें, जिनमें पिछले महीने ही मलीहाबाद और लखनऊ की नर्सरी से विशेष जुगत भिड़ाकर मँगवाए गए विरल किस्मों के सफेदा और दशहरी की कलमों का रोपण हुआ है।'[४६]

५. भाषा :

किसी भी रचना का वस्तु-पक्ष कितना भी उत्तम हो, परंतु उसकी भाषा-शैली उसके उपयुक्त न हो, तो रचना उत्तम नहीं हो सकती। विषय-वस्तु के अनुकूल भाषा-शैली का चयन करना पड़ता है। वस्तु की अभिव्यक्ति से ही कोई रचना प्रभावशाली बनती है।

अब हम चित्रीजी के कथा साहित्य की भाषा की बात करें, तो सबसे पहले हमें यह कहना होगा कि चित्राजी भाषा की अनेक तहें रचती हैं। जब वे विचार-प्रखर होती हैं या जब उनमें उनकी ही प्रश्नाकुलता उत्तेजक हो उठती है, तो भाषा आक्रामक हो उठती है, भाषा के अंदर से रागजन्य कोमलता के बजाय ऐसे वाक्य झरने लगते हैं, जो आंतरिक मर्म बनकर उमड़ने लगते हैं। 'आवाँ' से यह छोटा-सा नमूना द्रष्टव्य है : 'भीड़ चाहे जितनी विरल हो, उसके पंजों के नाखून किसी धार खाई दराँती से

कम नहीं होते।'

घटनाओं, स्थितियों और दृश्यों के वर्णन एवं पात्रों की छवियों के रेखांकन में बैसवाड़ी की खाँटी अवधी का खड़ी बोली हिंदी के साथ अत्यंत सहज और आत्मीय प्रयोग उनकी कथा-भाषा को बहुत संप्रेषणीय और रोचक बना देती है। विलक्षण व्यंग्यात्मकता और वर्णनात्मकता 'आवाँ' के औपन्यासिक विधान में रचनात्मक सामर्थ्य की तकनीक के रूप में इस्तेमाल की गई है, कथा के विचारात्मक उत्ताप को और अधिक तीव्र करने के लिए।[४७]

प्रादेशिक संस्पर्श के साथ बंबइया हिंदी का प्रयोग चित्राजी की कथा-भाषा की अपनी विशेषता है और 'आवाँ' उपन्यास उनकी इस विशेषता का जीता-जागता नमूना है। उपन्यास की भाषा पूरी तरह से साहित्यिक होते हुए भी मजदूरों की शब्दावली से भरपूर है। फिर भी, यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि उनकी भाषा भावों को वहन करने में पूरी तरह समर्थ है। शब्दों का ताना-बाना इस तरह बुना गया है कि पूरा चित्र आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। चित्रात्मकता इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है। 'आवाँ' की भाषा पर सतीश जमाली टिप्पणी करते हैं : 'शुरू शुरू में पढ़ने में थोड़ी रुकावट आती है, वह भी भाषा के कारण, मगर बाद में सब रवाँ हो जाती है। बाद में यही भाषा प्यारी लगने लगती है। उपन्यास में इसी भाषी की जरूरत भी थी। मुंबई पर लिखा होने के कारण इसी भाषा का इस्तेमाल हुआ है, जो वहाँ के लोग बोलते हैं। और यह अच्छा लगता है।'[४८]

चित्राजी की अधिकांश कहानियाँ बंबई के परिवेश पर लिखी गई हैं। बंबई में देश के हर हिस्से के लोग रहते हैं और संपर्क भाषा के रूप में जिस हिंदी का प्रयोग वे करते हैं, उसमें अंग्रेजी, मराठी, गुजराती तथा दक्षिण की कई भाषाओं का मेल

होता है। वह मेल इतना सहज और स्वाभाविक है कि अपने आप में वह एक शैली बन गया है। हिंदी भाषा के इस रूप को बंबइया हिंदी कहा जाता है। चित्राजी की कथा भाषा को देखकर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि बंबइया हिंदी के प्रयोग में उन्हें महारत हासिल है। इस बंबइया हिंदी का प्रयोग बंबई की झुग्गी-झोपड़ियों के परिवेश में उन्होंने और भी अधिक प्रभावशाली ढंग से किया है। इस दृष्टि से उनकी 'केंचुल', 'भूख', 'चेहरे', 'त्रिशंकु' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। 'भूख' कहानी की भाषा का एक उदाहरण :

'दरवाजा किदर खोलते फिलाट वाले? एक-दो ने खोला, तो पिच्छू पूछी मैं कि भाँडी-कटका के वास्ते बाई मँगता तो बोलने लगे किदर रेती? किदर से आई? तेरा पेचाने वाली कोई बाई आजू-बाजू में काम करती क्या? करती तो उसको साथ में लेके आना। हम तुमको पेचानते नहीं, कैसे रक्खेगा? और पूछा, ये गोदी का बच्चा किसका पास रक्खेगी जब कामकू आएगी? मैं बोली मेरा बाकी दो बच्चा पन सोटा-सोटा। सँभालने कूँ कोई नई। साथेच रक्खेगी। तो दरवाजा मेरे मूँपेच बंद कर दिए..।'[४९]

चित्राजी ने एक ओर जहाँ बंबई की झुग्गी-झोपड़ियों के परिवेश की कहानियों में बंबइया हिंदी का प्रयोग किया है, वहीं गंभीर एवं चिंतनशील विषयों वाली कहानियों में उनकी भाषा गंभीर तथा परिष्कृत हो गई है। उनके पात्रों के संवादों में प्रयुक्त भाषा को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि पात्र किस श्रेणी का है। 'स्टेपनी' कहानी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

'सुबह दूसरी घंटी बजते ही अनुमान हो गया आभा को कि यह बताशा ही होगी। रात किया गया दृढ़ निश्चय वेगवान अंधड़ में परिवर्तित होकर उसे विस्फोट के लिए उकसाने लगा। कोई फैसला हो जाना चाहिए। सब कुछ बरदाश्त है उसे,

हरजाईपन नहीं। कितना विश्वास है बताशा पर कि बड़ी स्वाभिमानी नौकरानी हाथ लगी है। जो दे दो उठाकर, सो दे दो - मजाल कि बिना उसकी अनुमति के किसी चीज को हाथ लगा दे।'[५०]

चित्राजी के भाषा-वैशिष्ट्य के बारे में दया दीक्षित का कहना है : मानस पर चित्रा मुद्गल का नाम आने के साथ उभर आती है उनकी सशक्त भाषिक संरचना, जो बड़ी दूर तक चेतना को आबद्ध कर लेती है। चित्रा उन विरले रचनाकारों में हैं, जिन्हें उनकी खिलंदड़ी भाषा के लिए जाना जाता है। भाषायी मौलिकता अपने आप में मिसाल है। यह मिसाल उन्होंने अपनी छेनी-हथौड़ी से गढ़ी है। वे ऐसी पहली अग्रगण्य आधुनिक रचनाकार हैं, जिन्होंने मौलिकता के साथ संवेदना को एक नई लक्षणा, व्यंजना से युक्त भाषावस्त्र दिया है।[५१]

इसी तरह 'आवाँ विमर्श' नामक पुस्तक के संपादक डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय 'आवाँ' की भाषिक संरचना की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं :

'चित्रा मुद्गल ने 'आवाँ' के भाषिक प्रयोग को विविधतापूर्ण बनाए रखने के लिए पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। इस उपन्यास के पात्रों की संख्या बहुत ज्यादा है और अनेक वर्गों से संबद्ध पात्र भी हैं। अतः केवल परिमार्जित और प्रांजल भाषा के प्रयोग से स्वाभाविकता नष्ट हो जाती। अतः लेखिका ने संवादों और कथोपकथन का लहजा पात्र की मानसिक हैसियत के अनुकूल रखा है। इसका एक उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि इसमें छोटे-बड़े संवादों का पूरी सफलता के साथ विनियोग हुआ है। लेखिका ने यदि अन्ना साहब के संवादों में तराशे हुए चतुराई से पूर्ण शब्दों का प्रयोग किया हो, तो सिके विपरीत पवार की भाषा में अक्खड़पन है। इसी तरह यदि नमिता की भाषा शालीनता से युक्त है, तो सुनंदा की भाषा आक्रोशपूर्ण है।'[५२]

६. शैली :

'शैली' यानी कथन-भंगिमा। किसी भी साहित्यिक कृति का अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष उसकी शैली होती है। वस्तु भले ही बहुत महत्त्वपूर्ण हो, परंतु उसकी शैली अर्थात् कथन-भंगिमा कमजोर हो, तो रचना प्रभावशाली नहीं बन पाती। कोई भी रचनाकार अपनी रचना को प्रभावशाली और संप्रेषणीष बनाने के लिए आवश्यकतानुसार अनेक शैलियों का उपयोग करता है।

चित्रा मुद्गल ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में अनेक शैलियों का उपयोग किया है। वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, पूर्वदीप्ति, प्रतीकात्मक जैसी शैलियाँ कथा साहित्य में विशेष प्रचलित हैं। चित्राजी ने आवश्यकतानुसार नि सभी शैलियों का उपयोग अपनी रचनाओं में किया है।

१. वर्णनात्मक शैली :

वर्णनात्मक शैली में रचनाकार सीधे कथा की घटनाओं का, परिवेश का तथा पात्रों के चारित्रिक विशेषताओं वर्णन करता है। चित्राजी ने अपने तीनों उपन्यासों में तथा लगभग सभी कहानियों में इस शैली का भरपूर उपयोग किया है। इस शैली के उपयोग से रचना में कसाव आता है तथा प्रभाव सघन होता है। इस शैली का उपयोग करके रचनाकार संक्षेप में लंबे कथासूत्रों को जोड़कर सघन परिवेश का निर्माण करता है। 'एक जमीन अपनी' का एक उदाहरण देखते हैं :

'सिर्फ बीस-पच्चीस रोज के लिए वह अपने घर इंदौर गई थी और मि. मैथ्यू से प्रार्थना कर गई थी कि जब तक वह शहर से बाहर है, नीता उसके हिस्से का कम-काज देख लिया करेगी। इस व्यवस्था में कोई विशेष अड़चन भी न थी। अक्सर नीता के छुट्टी जाने पर वही पूरी जिम्मेदारी से उसके हिस्से का काम सँभालती थी। चूँकि

मामला दूसरी एजेंसी का था। अतः इस व्यवस्था के लिए मैथ्यू की सहमति नितांत आवश्यक थी। गरज इतनी थी कि उसके हाथों से 'ऑब्जर्वेशन एडवटारइजिंग' का काम निकलने न पाए। एक वही थी जो फ्रीलांसर होने पर भी एक एजेंसी के लिए ही काम कर रही थी; जबकि उसके विभाग की दोनों अन्य लड़कियाँ - मारथा और नीना एक साथ कई-कई एजेंसियों में काम कर रही थीं और धड़ल्ले से कमा रही थीं ...'[५३]

वर्णनात्मक शैली का एक उदाहरण चित्राजी की कहानी 'केंचुल' से दिया जा सकता है :

'तिमैया की अम्मा ने ऐसे में उसे घर में भट्ठी लगा लेने की बात सुझाई थी। बड़े अंतर्द्वंद्व में फँसी रही। दारू से ही घर की ईंटों में भसकन पैदा हुई थी। वही बतौर धंधा अपना ले? तिमैया की अम्मा ने उसकी हिचक सुनी, तो खिल्ली उड़ाई। सब उसकी तरह ऊँच-नीच सोचने लगें तो दुनिया में कोई धंधा जिंदा ही नहीं बचेगा। खटिया चलाने के लिए तो कह नहीं रही। सोच ले। इज्जत से करो तो सभी काम ऊँचे हैं।'[५४]

२. आत्मकथात्मक शैली :

'आत्मकथनात्मक शैली' कथा का कोई पात्र मन ही मन खुद से बातें करते हुए किसी घटना का विश्लेषण करता है या किसी पात्र के व्यवहार के बारे में सोचता है। इस प्रक्रिया द्वारा खुद उस पात्र या अन्य पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। 'गिलिगडु' के बाबू जसवंत सिंह का आत्मकथन द्रष्टव्य है :

'पहली सुबह-सुबह ही नींद गढ़ाई थी कि सामने वाली बालकनी में सोए घर के नौकर को जगाने के लिए लगाई गई, इंद्र को सिंहासन को चुनौती देती-सी

पड़ोसी की चेतावनियों ने जो चिहुँकाया कि फिर प्रयत्न करके भी पलक नहीं झपकी। पाजी नौकर भी कम खुर्राट नहीं था। मालकिन को झिकाए बिना पट्ठा आँख न खोलता। मन में आया कि बालकनी से मुँह निकाल पचास गालियाँ सुनाएँ, हरामखोर को। जूते से झोर कर धर दें कि तू पास-पड़ोस की नींद क्यों हराम कर रहा है बे!'[५५]

'रूना आ रही है' नामक कहानी से आत्मकथात्मक शैली का एक उदाहरण भी द्रष्टव्य है :

'बैठक में दाखिल हुई तो बेंत वाले लंबे सोफे पर एक युवक को लेटा देख ठिठकी। उर्दू की किसी पत्रिका की आड़ में चेहरा था। जमाल साबह कतई नहीं लगे। आपा के मुताबिक अभी उन्हें 'यात्रा' पर ही होना चाहिए। कद कुछ अधिक ही लगा। सोफे से दो-ढाई फुट जूते समेत पाँव बाहर हो रहे थे। असमंजस में पड़ी सोच रही थी कि आपा संभवतः रसोई में होंगी और वहीं चलूँ कि तभी मेरे कमरे में होने का आभास उन्हें हुआ। पत्रिका तहा एकदम बड़बड़ाकर उठ बैठे। चेहरा अपरिचित था।'[५६]

संदर्भ :

१. चित्रा मुद्‌गल :एक मूल्यांकन : डॉ. के. वनजा, पृ. ३८।

२. चित्रा मुद्‌गल के कथा साहित्य का अनुशीलन : डॉ. गोरक्ष थोरात, पृ. १०१।

३. वही, पृ. १०२।

४. विश्वमोहनसिंह : जनसत्ता, दिल्ली, २८ नवंबर, १९९९।

५. वेदप्रकाश अमिताभ, समीक्षा, जुलाई-सितंबर, १९९३, पृ. २३।

६. जगदंबाबाबू गाँव आ रहे हैं : चित्रा मुद्‌गल, पृ. ३०।

७. इस हमाम में : चित्रा मुद्‌गल, पृ. २१-२२।

८. जगदंबाबाबू गाँव आ रहे हैं : चित्रा मुद्‌गल, पृ. ५३।

९. जानकीप्रसाद शर्मा : समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून-१९९७, पृ.१५५।

१०. वेदप्रकाश अमिताभ, समीक्षा, जुलाई-सितंबर, १९९३, पृ. २३।

११. एक जमीन अपनी : चित्रा मुद्‌गल, पृ. १८३।

१२. वही, पृ. २२०।

१३. वही, पृ. १०१।

१४. कृष्णचंद्र गुप्त, प्रकर, जून, १९९१, पृ. ३८।

१५. वही ।

१६. एक जमीन अपनी : चित्रा मुद्‌गल, पृ. २०६।

१७. आवाँ विमर्श : संपा. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. ४९।

१८. कथाक्रम, अप्रैल-जून, पृ. १०१।

१९. आवाँ : चित्रा मुद्‌गल, पृ. २९६ ।

२०. वही, पृ. १८२।।

२१. चित्रा मुद्गल : एक मूल्यांकन : डॉ. के वनजा, पृ. ६२।

२२. आवाँ : चित्रा मुद्गल, पृ. २५८।

२३. वही, पृ. ५३०।

२४. वही, पृ. ३४८।

२५. आवाँ-विमर्श : संपा. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. ६३।

२६. वही, पृ. ६४।

२७. वही, पृ. ५८।

२८. दामोदरदत्त दीक्षित, साक्षात्कार, मार्च,२०००, पृ. १०३।

२९. आवाँ : चित्रा मुद्गल, पृ. ५१९।

३०. वही, पृ. ५३९।

३१. आवाँ : चित्रा मुद्गल, पृ. ४३०।

३२. मृदुला गर्ग, कथादेश, अगस्त-२०००, पृ.६३।

३३. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन : डॉ. गोरक्ष थोरात, पृ. १५२।

३४. मामला आगे बढ़ेगा अभी : चित्रा मुद्गल, पृ. ११५।

३५. अपनी वापसी : चित्रा मुद्गल, पृ. १०।

३६. आवाँ : चित्रा मुद्गल, पृ. ४३ ।

३७. वही, पृ. ५२९-३०।

३८. एक जमीन अपनी : चित्रा मुद्गल, पृ. २२७-२८।

३९. गिलिगडु : चित्रा मुद्गल, पृ. ३४।

४०. आदि-अनादि-१ : चित्रा मुद्गल, पृ. ३३-३४।

४१. वही, पृ. १६४।

४२. आदि-अनादि : चित्रा मुद्गल, पृ. २४५।

४३. एक जमीन अपनी : चित्रा मुद्गल, पृ. १०।

४४. आवाँ : चित्रा मुद्गल, पृ. १०६-०७।

४५. वही, पृ. ३२४-२५।

४६. आदि-अनादि -३ : चित्रा मुद्गल, पृ. २०२।

४७. डॉ. रेखा अवस्थी : आवाँ-विमर्श : संपा. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. १३३-३४।

४८. डॉ. सतीश जमाली : आवाँ-विमर्श : संपा. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. १५३।

४९. आदि-अनादि-२ : चित्रा मुद्गल, पृ. ९४।

५०. आदि-अनादि-३ : चित्रा मुद्गल, पृ. ६२।

५१. दया दीक्षित : आवाँ-विमर्श : संपा. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. १९१।

५२. आवाँ-विमर्श : संपा. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. २०७।

५३. एक जमीन अपनी : चित्रा मुद्गल, पृ. १५।

५४. आदि-अनादि-१ : चित्रा मुद्गल, पृ. ६१।

५५. गिलिगडु : चित्रा मुद्गल, पृ. ५७।

५६. आदि-अनादि-१ : चित्रा मुद्गल, पृ. १५३।

उपसंहार

उपसंहार

चित्रा मुद्गल हिंदी की ऐसी कथा लेखिका हैं, जिनके समस्त लेखन के केंद्र में स्त्री-जीवन ही है; फिर भी वे स्त्रीवाद की प्रस्थापित मान्यता के दायरे में नहीं आतीं। अर्थात् वे खुद को स्त्रीवादी लेखिका नहीं मानतीं। कारण कि वे स्त्री समस्याओं के निराकरण के लिए स्त्री और पुरुष को आमने-सामने रखने के पक्ष में नहीं हैं। वे स्त्री के प्रति पुरुष के गलत दृष्टिकोण को बदलने के पक्ष में हैं।

उनके तीन उपन्यासों और अधिकतर कहानियों के अवलोकन से यह बात स्पष्ट होती है कि स्त्री-समानता, स्त्री-शोषण, स्त्री अधिकार आदि नारी जीवन से संबंधित विषयों पर उनके विचार बहुत स्पष्ट और दोटुक हैं। उनके लेखन का एक बहुत मजबूत पक्ष यह है कि अपने लेखन में उन्होंने कल्पना और हवाबाजी से काम नहीं लिया है। उनका सारा लेखन उनके अनुभव के दायरे में आता है। एक एक्टिविस्ट होने के नाते विभिन्न वर्गों की स्त्रियों के जीवन की समस्याओं को उन्होंने बहुत नजदीक से देखा है और उन समस्या को दूर करने की दिशा में स्वयं प्रयासरत रही हैं। अर्थात् उनकी कथनी और करनी के बीच गहरी खाई नहीं है। उनकी सारी रचनाशीलता विवेकशील ईमानदारी पर टिकी है।

चित्राजी नारी जीवन से जुड़े वर्तमान समय के हिंदी साहित्य से संतुष्ट नहीं हैं। उनका मानना है कि इसमें अभी बहुत सतही बातें ही कही गई हैं। इसी लिए वे कुछ प्रश्न उठाती हैं : 'समकालीन सृजन संसार में जो उनकी जागरूक सहभागिता का दावा है, सही अर्थों में क्या वह नारी-अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है? उन दारुण

अंतःसत्यों की तलछट कुरेदकर बह रहे घावों की मवादें धो-पोंछ रहा है, जो इस की आधी आबादी को अवाक् कर देने वाला यथार्थ है। क्या शिक्षा ने परिवार और समाज में उसे समता दी? केवल पाँच प्रतिशत कस्बाई, नगरीय, महानगरीय शिक्षित आत्मनिर्भर स्त्री शेष पैतालीस प्रतिशत ग्रामीण, आदिवासी नारी के पशुवत खटती अमानवीय जीवन के संत्रासों के विषय में चिंतित हैं? जो साक्षरता अभियानों के चलते पाटी पर अपना नाम लिखना भी सीखकर स्वयं को समय के साथ खड़े रहने और खड़े किए जाने के विभ्रम को जीने पर विवश हैं।'

चित्राजी के साहित्य में स्त्री के अंनिर्बंध सेक्स के बजाय उनके जीवन की अन्य महत्त्वपूर्ण विसंगतियों पर बेबाकी से प्रकाश डालने का प्रयास दिखाई देता है, और इसके पीछे उनकी सुलझी हुई विचारधारा काम करती है। वे अच्छी तरह से जानती हैं कि स्त्रीवाद आधुनिक काल का एक प्रमुख आंदोलन है और भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि वह अन्य संस्कृति की बातें स्वीकारती अवश्य है; किंतु उसके प्रकृत रूप में नहीं, बल्कि उस पर कुछ अपने संस्कार करके। उनका कहना है कि स्त्रीवाद भारतीय साहित्य में ही नहीं, भारतीय जीवन में भी व्याप्त होना चाहिए और उसमें भारतीय गरिमा भी होनी चाहिए। इसी लिए वे पश्चिम से आए स्त्रीवाद के संदर्भ में अनेक पहलुओं पर अपनी असहमति दर्ज करती हैं।

अगर चित्राजी की विचारधारा के बारे में कुछ कहना हो, तो सबसे पहले यह ध्यान में रखना चाहिए कि चित्राजी जैसी स्वतंत्र विचारक किसी एक विचारधारा में बँध कर नहीं रह सकतीं। फिर भी यह स्पष्ट है कि उनका झुकाव मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति विशेष है। वे खुद ही अपने को मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित मानती हैं और इसके पीछे की जो लॉजिक है, उसको स्पष्ट करते हुए वे कहती हैं : 'मुझे

लगता कि मार्क्सवादी विचारधारा की रोशनी में आप सर्वहारा को बहुत अच्छी तरह से समझ सकते हैं। मार्क्स का ज्यादा नहीं पर मैंने थोड़ा अध्ययन किया है। जो किताबें मुझे उपलब्ध हुईं, उन्होंने मुझ पर गहरा असर किया। अतः में मार्क्सवादी विचारधारा में विश्वास रखती हूँ। पर पार्टी सं संबद्ध नहीं हूँ। .... मैंने गांधी और लोहिया का मार्क्सवाद के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन भी किया। उस समय मुझे लगा कि अगर मेरी कोई पार्टी है, तो बस लिटरेचर।'

चित्राजी अपने उपन्यासों में नारी जीवन से संबंधित आधुनिक कार्यक्षेत्रों के कुछ अनछुए पहलुओं को उकेरती हैं। जैसे 'एक जमीन अपनी' विज्ञापन जगत में संघर्ष कर अपना स्थान बनाती नारी के रूप में अंकिता को चित्रित किया है। विज्ञापन क्षेत्र जैसे चमक-दमक और वासना से भरे क्षेत्र में एक स्त्री अपने शरीर के बल पर नहीं, अपनी प्रतिभा के बल पर स्थान प्राप्त करती है और वह भी सरता से नहीं, बल्कि उस क्षेत्र के सारे अवरोधों और विसंगतियों से लड़ते हुए। चित्राजी अंकिता के संघर्ष के माध्यम से विज्ञापन क्षेत्र की अंदरूनी विकृतियों को बड़ी बेबाकी से बेपरदा करती हैं। यह वह दुनिया है, जिस पर पुरुषों का एकाधिकार है, जहाँ स्त्री को देह से अधिक कुछ भी नहीं समझा जाता। उसमें अंकिता अपने आत्मविश्वास के बल पर सेंध लगाती है। अंकिता एक ऐसी स्त्री है, जो पुरुषवर्चस्व वाले समाज में स्त्री-स्वातंत्र्य की लड़ाई में अपने पति को भी त्याग देती है। वह अपने पति को उसकी पुरुष मानसिकता के कारण त्यागती है। वह उसे गुलाम बनाकर रखना चाहता है। ध्यान देने की बात यह है कि चित्राजी की अंकिता स्वच्छंद यौवनाचार की पक्षधर नहीं है, जैसी कि उसकी सहेली नीता है। दोनों के जीवन की परिणति भी वैसी ही होती है। अंकिता को अपने संघर्ष का परिणाम यह मिलता है कि वह सफलता की ऊँचाई पर पहुँचती है और नीता

के जीवन की परिणति यह है कि उसे आत्महत्या करनी पड़ती है।

चित्राजी अपने साहित्य में स्त्रियों के शोषण का विरोध अवश्य किया है; परंतु स्त्रियों की पक्षधरता के लिए वे पुरुषों को प्रतिपक्ष नहीं बनातीं। अन्य लेखिकाओं से उनकी भिन्नता का यह एक सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण पहलू है। उनकी तर्क यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों जीवन रूपी रथ के दो पहिये हैं। एक पहिये से रथ कदापि गतिमान नहीं हो सकता है। इसलिए जीवन रूपी रथ को चलाने के लिए स्त्री और पुरुष में समन्वय का होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। उनके अनुसार संबंध-विच्छेद समस्या का समाधन नहीं है। इससे समस्या और जटिल होती है।

चित्राजी स्त्री-स्वातंत्र्य की पक्षधर हैं। परंतु स्त्री-स्वातंत्र्य को उन्होंने स्त्रीदेह-स्वातंत्र्य नहीं माना है। वे परिवार और विवाह संस्था की समर्थक हैं। जो लोग विवाह संस्था को मानने से इंकार करते हैं, उनके बारे में उनका कहना है कि स्त्रीवादी विचारधारा के लोग विवाह संस्था चाहते ही नहीं। वे सिर्फ स्वतंत्र रूप से स्त्री-पुरुष के बीच यौन-संबंध के पक्षधर हैं। लेकिन वे भी इस संबंध के लिए 'लीगल प्रोटक्शन' चाहते हैं। इसका मतलब यह कि इसे वे एक विवाह संस्था की तरह ही बनाए रखना चाहते हैं। अर्थात् एक बंधन तोड़कर दूसरे बंधन में बँधना तो चाहते ही हैं। वे लोग भले ही कहें कि हम विवाह संस्था में विश्वास नहीं करते; परंतु विवाह संस्था की ही तरह एक 'पैरेलल संस्था' तो चाहते ही हैं।

चित्राजी ने उन अनिष्टकारी धार्मिक रूढ़ियों और परंपराओं का विरोध किया है, जो नारी के शोषण को बढ़ावा देती हैं। कामकाजी नारी को नारी की प्रकृति के अनुकूल सविधाएँ प्राप्त कराने के लिए संघर्ष करने में उनका विश्वास है। उन्होंने अपनी

रचनाओं में स्त्री के विरोध में स्त्री को खड़ा करने की पुरुष की साजिश का पर्दाफाश किया है।

चित्राजी भारतीय संस्कृति में पली-बढ़ी स्त्री की मानसिकता को पेश करने के साथ-साथ पति-पत्नी संबंधों का असली स्वरूप भी दिखाती हैं। यहाँ पत्नीधर्म और विशेष रूप से भारतीय पत्नी का स्वरूप उन्होंने बखूबी अंकित किया है। भारतीय नारी उच्छृंखल नहीं है। एक को मन देकर किसी दूसरे को शरीर देने की बात भारतीय नारी सपने में भी नहीं सोच सकती। 'एक जमीन अपनी' की अंकिता पति की सामंती मानसिकता के चलते उसे छोड़ती है; परंतु वह किसी दूसरे को अपनाती नहीं है।

'एक जमीन अपनी' के ही माध्यम से चित्राजी की एक और विशेषता गौर करने लायक है। उपन्यास में उसकी नायिका के सौंदर्य का वर्णन कहीं नहीं दिखाई पड़ता। कहीं-कहीं नीता के संबंध में यह टिप्पणी जरूर की गई है कि वह बहुत सुंदर है। उसी सौंदर्य को कैमरामैन विज्ञापन में अधिक सेक्सी बना देता है। लेकिन अंकिता के शारीरिक सौंदर्य की कोई सूचना नहीं है। ऐसा करके उपन्यासकार यह सिद्ध करने में सफल रही हैं कि स्त्री की शक्ति उसकी प्रतिभा में है, उसकी देह में नहीं।

'आवाँ' उपन्यास में चित्राजी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की ट्रेड यूनियनों की संघर्ष चेतना और उस उस चेतना को तहस-नहस करने वाले माफियाओं, गुंडों एवं भ्रष्ट राजनीतिक क्रिया-कलापों की भर्त्सना की गई है। देश भर में व्याप्त श्रमिक वर्ग निरंतर इस संघर्ष से गुजरता रहा है। इसका अंत कब होगा - यह प्रश्न हमारे सामने है; क्योंकि हमेशा इस संघर्ष का दमन पूँजीपति वर्ग, राजनेता तथा माफिया वर्ग करता रहता है।

इसी संदर्भ में चित्राजी ने इस उपन्यास में एक बड़ा की गंभीर प्रश्न उठाया

है। मजदूर आंदोलनों और उनके नेताओं में कार्यकर्ताओं समेत अभी कोई वैचारिक सामाजिक परिवर्तन नहीं आ सका है। परंपरागत संबंधों और जीवन मूल्यों को लेकर अब भी उनकी सोच और दृष्टि यथास्थितिवादी बनी हुई है। मजदूर नेता और उनके साथी अभी भी सामंती सोच और दृष्टि की कैद में हैं। स्थिति यहाँ तक आ चुकी है कि पवार जैसे दलित साथी कार्यकर्ता हमेशा यही गणित बिठाते हैं कि मजदूर मंचों का इस्तेमाल सीढ़ी की तरह करते हुए संसदीय राजनीति में प्रवेश कैसे पाया जा सकता है।

राजनीति के गलियारे काजल की कोठरी हैं। यूनियनों के नेता श्रमिकों के साथ अपना कर्तव्य भूलकर औद्योगिक संस्थाओं के साथ बिचौलिये का काम करने लगते हैं। उन्हें पार्टी चंदे की मोटी रकमें दिलवाते हैं। श्रमिक संगठन की शक्ति को उनके हित में 'वोट बैंक' की तरह इस्तेमान करने में मदद करते हैं। राजनीति का औजार बनने से ट्रेड यूनियनों की शक्ति नष्ट हो जाएगी, इस बात की ओर चित्राजी ने खुलकर इशारा किया है। जरूरत पड़ने पर ये यूनियनें ही धार्मिक उन्माद और सांप्रदायिकता के नाम पर झोपड़ियाँ फुँकवाती हैं; अराजकता फैलाती हैं और उसका सारा दोष बड़ी आसानी से निर्दोष लोगों के मत्थे मढ़ देती हैं तथा असली अपराधी बच निकलते हैं।

इन प्रवृत्तियों पर चित्राजी जितना खुलकर प्रहार करती हैं, उनके प्रति उतनी ही गहरी चिंता भी प्रकट करती हैं। अंतर्विरोधों और विसंगतियों के प्रति आक्रामक होते हुए भी चित्राजी मजदूर संघों की बुनियादी कल्पनाओं और उनसे जुड़े नए सपनों के प्रति उम्मीदें भी जगाती हैं।

'आवाँ' उपन्यास का पूरा सृजन एक प्रकार से प्रतीकात्मक है। 'आवाँ' शीर्षक

से लेकर यह प्रतीकात्मकता शुरू होती है। इसका प्रत्येक पात्र किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। अन्ना साहब की मृत्यु, नमिता के गर्भ का गिरना, नमिता की वापसी, उपन्यास का ट्रेन यात्रा से आरंभ होना और ट्रेन यात्रा में ही समाप्त होना ये सब उपन्यास को प्रतीकात्मक बनाते हैं।

'आवाँ' उपन्यास एक तरह से संघर्ष गाथा का उपन्यास है। संघर्ष अनेक स्तरों पर चलता है। एक ओर तो यह मानव जीवन का संघर्ष है, तो दूसरी ओर उच्च वर्ग से लेकर निम्नवर्ग तक का जीवन-संघर्ष है। किंतु, उच्चवर्ग की दमन नीतियों के खिलाफ चलने वाला संघर्ष इस उपन्यास में अधिक मुखर है। कंपनी मालिकों, उद्योगपतियों और माफियाओं से संघर्ष करनेवाला श्रमिक वर्ग है। श्रमिकों में भी महिलाएँ और दलित इस संघर्ष के विशेष शिकार हैं। लेकिन चित्राजी इन सबको अलग-अलग करके नहीं दर्शातीं - यह उनकी उदार दृष्टि का परिणाम है। पवार दलित जाति का है। लेकिन 'दलित राजनाति' के तहत मजदूर संघ को खंड-खंड में विभक्त करने की उसकी नीति का विरोध उपन्यास में सर्वत्र विद्यमान है; क्योंकि चित्राजी मनुष्य को जाति, धर्म, वर्ग, लिंग आदि से परे होकर देखना चाहती हैं।

'गिलिगडु' उपन्यास में चित्राजी ने लगभग अछूते विषय को कथा का आधार बनाया है। इस उपन्यास का मुख्य मुद्दा वृद्धजनों की समस्या है। आज देश के सामने वृद्धों की भेखभाल एक समस्या का रूप धारण किए हुए है। नई पीढ़ी द्वारा अपने बुजुर्गों के साथ दुर्व्यवहार किा जाना वास्तव में एक बड़ी समस्या है।

धन के प्रति अति लोभ के कारण लोग आजकल अपने माता-पिता की हत्या करने में भी खतरा नहीं महसूस नहीं करते। आज हमारे समाज में माता-पिता की धन-संपत्ति हड़प लेने के बाद उन्हें रास्ते पर छोड़ देते हैं। आज संतान के सामने

बूढ़े अशक्त माँ-बाप एक वस्तु से ज्यादा अहमियत नहीं रखते। नई पीढ़ी की दृष्टि में सामाजिक संबंधों का कोई मूल्य नहीं है। यहाँ तक कि घर वालों से भी दो-चार शब्द बोलने की फुरसत उनके पास नहीं है। अपने परिवार वालों के साथ बैठकर खाना खाने से और कुछ समय तक बातचीत करने से अपने घर में एक सामूहिक बोध एवं स्नेह का माहौल बनता है। लेकिन 'गिलिगडु' के जसवंत सिंह को यह भी नसीब नहीं होता। बेटा नरेंद्र और पोते उनसे बोलने या उनके साथ थोड़ी खुशियाँ बाँटने का भी वक्त नहीं निकाल पाते। पोते तो पोते, परंतु पिता को थोड़ी सांत्वना देने के लिए बेटे के पास भी समय नहीं है।

दूसरी तरफ कर्नल स्वामी अपने सुखद परिवार की जो फैंटेसी रचते हैं, उसमें सुखद संयुक्त परिवार की कल्पना साकार की गई है। इस उपन्यास की सफलता का मुख्य कारण कर्नल स्वामी द्वारा रचित फैंटेसी ही है। कुछ समय तक हम उस आदर्श परिवार के साथ सफर करते हैं और यह हमें अत्यंत खुशी भी प्रदान करता है। परंतु जब यथार्थ पर चढ़ा परदा हटता है, तब बाबू जसवंतसिंह की तरह पाठक भी अचेत हो जाते हैं।

'गिलिगडु' उपन्यास में कथा के भीतर दूसरी कथा का निर्माण कर उपन्यास को और अधिक प्रभावशाली बनाया गया है। समकालीन उपन्यासों में निःसंदेह एक नया प्रयोग है। इस उपन्यास का अंत भी बड़ा बेजोड़ है। परंपरावादी बाबू जसवंत सिंह परंपरा को तोड़ने का साहस अर्जित करते हैं और अपने अभिशप्त जीवन से मुक्ति पाकर एक नए सुखद जीवन का रास्ता खोज निकालते हैं।

'गिलिगडु' निःसंदेह जीने की स्फूर्ति प्रदान करने वाला उपन्यास है।

चित्राजी की रचनाओं में केंद्रीय विषय के रूप में स्त्री समस्या तो है ही; परंतु

उसके अलावा भी अनेक ऐसे विषय हैं, जिन पर उन्होंने पूरा तवज्जो दिया है। ऐसा ही एक विषय राजनीति है। 'आवाँ' में बंबई की ट्रेड युनियनों की राजनीति की खाल उन्होंने बहुत निर्ममता से उधेड़ी है। ऐसी ही एक कहानी 'जगदंबाबाबू गाँव आ रहे हैं' है। इस कहानी में उन्होंने दिखाया है कि राजनीति अपने बढ़ावे के लिए, अपने प्रचार-प्रसार के लिए समाज के हर वर्ग के लोगों का इस्तेमाल कैसे करती है? और उसमें भी गाँव की राजनीति में शामिल सवर्ण वर्ग के लोग उनका कैसे साथ देते हैं। मजे की बात तो यह कि आज की राजनीति इतनी नीचे गिर गई है कि वह विकलांगों और बेसहारा लोगों का भी इस्तेमाल करने से नहीं झिझकती। उनकी भावनाओं के साथ भी खिलवाड़ करती है। 'जगदंबाबाबू गाँव आ रहे हैं' कहानी में यही सच उजागर हुआ है।

चित्राजी की कहानियों का कैनवस वैविध्यपूर्ण है। अपने अनुभवों के खुरदुरे यथार्थ को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। उनकी कहानियों में समकालीन जीवन के कई अनदेखे और अनछुए पहलू अनावृत हुए हैं। उनकी कहानियों में एक ओर बदलते परिवेश में मानवीय संबंधों में जो शिथिलता आ गई है, उसका खुलासा है, तो दूसरी ओर निम्नवर्गीय जीवन का यथार्थ है।

चित्राजी की प्रायः सभी कहानियों का केंद्र मानवीय रिश्तों को महत्त्व प्रदान करने वाला पारिवारिक माहौल है। परिवार को समाज की मुख्य इकाई समझने वाली चित्राजी जीवन मूल्यों एवं मानवीय संवेदनाओं को वहाँ ढूँढ़ लेती हैं। वे भारतीय संस्कृति के महान आदर्शों को पारिवारिक रिश्तों में देखती हैं। किंतु परिवार की अति अनुशासनप्रियता को वे स्वीकार नहीं करतीं। उनके विचार से प्रेम की आर्द्रता परिवार के वातावरण को सुखद बनाती है।

चित्राजी की कहानियों का सरोकार काल के साथ है। समकालीन भारतीय जीवन के बदलते चेहरे को पूर्णतः स्वीकार करने के लिए वे तैयार नहीं हैं। बदलाव अनिवार्य है; क्योंकि बदलाव के बिना जीवन में स्थिरता एवं जड़ता आ जाती है। परंतु ऐसा बदलाव नहीं, जो गति के बदले गतिहीनता पैदा कर दे। चित्राजी की दृष्टि सदा उस बदलाव की गति पर टिका रहता है। इसी लिए, जहाँ एक साधारण कलाकार की दृष्टि समाज के जिन पहलुओं पर नहीं पड़ती, चित्राजी ने जीवन के उन सभी पहलुओं को विशिष्टता प्रदान करके अपनी असाधारणता को प्रमाणित किया है। उनकी चेतना समकालीन परिवेश की चेतना को विवेक और सूझ-बूझ के साथ आत्मसात कर लेती हैं और उन्हें शब्दबद्ध करके वे अपनी प्रतिबद्धता प्रमाणित कर देती हैं।

परिशिष्ट

संदर्भ सूची

संदर्भ सूची

(क) आधार ग्रंथ :

(क) उपन्यास :

१. एक जमीन अपनी : चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९०।

२. आवाँ : चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, २००० ।

३. गिलिगडु : चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, २००३।

(ख) कहानी-संग्रह :

१. जहर ठहरा हुआ : चित्रा मुद्गल, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, १९८०।

२. लाक्षागृह : चित्रा मुद्गल, पराग प्रकाशन, दिल्ली, १९८२।

३. अपनी वापसी : चित्रा मुद्गल, संभावना प्रकाशन, दिल्ली, १९८३।

४. इस हमाम में : चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, १९८६।

५. ग्यारह लंबी कहानियाँ : चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, १९८७।

६. जगदंबाबाबू गाँव आ रहे हैं : चित्रा मुद्गल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९९२।

७. चर्चित कहानियाँ : चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, १९९४।

८. मामला आगे बढ़ेगा अभी : चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, १९९४।

९. जिनावर : चित्रा मुद्गल, किताब घर, दिल्ली, १९९६।

१०. केंचुल : चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, २००१।

११. भूख : चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, २००१।

१२. लपटें : चित्रा मुद्गल, भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली, २००३।

१३. बयान : चित्रा मुद्गल, भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली, २००४।

१४. आदि-अनादि (तीन खंड)

(संपूर्ण ठकहानियाँ) :चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, २००७।

(ख) संदर्भ ग्रंथ :

१. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन : डॉ. गोरक्ष थोरात, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र., २००९।

२. चित्रा मुद्गल : एक मूल्यांकन : डॉ. के. वनजा, सामयिक बुक्स, दिल्ली, प्र., २०११।

३. आवाँ विमर्श : संपा. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, सामयिक बुक्स, दिल्ली, प्र., २०१०।

४. चित्रा मुद्गल के कथा सांहित्य में युग-चेतना : डॉ. अर्चना मिश्र, भारती पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, फैजाबाद, प्र., २००८।

५. सामाजिक संदर्भों के नए प्रतिमान : डॉ. किरण श्रीवास्तव, अयन प्रकाशन, दिल्ली, प्र., २००९।

६. चित्रा मुद्गल की कहानियाँ : उर्मिला शिरीष, दोआब प्रकाशन, पटना, प्र., २००८।

७. हिंदी साहित्य का इतिहास : आ. रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

८. हिंदी साहित्य का इतिहास : संपा. डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९८९।

९. हिंदी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ : डॉ. बालकृष्ण गुप्त, अभिलाष प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं., १९७८।

१०. हिंदी उपन्यास : उद्भव और विकास : डॉ. लक्ष्मीकांत सिन्हा।

११. आधुनिक हिंदी उपन्यास : उद्‌भव और विकास : डॉ. बेचन, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा सं., १९७७।

१२. हिंदी उपन्यास का विकास : डॉ. सरदार सिंह सूर्यवंशी, संचयन, कानपुर, प्र. १९८६।

१३. हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा : डॉ. रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

१४. हिंदी उपन्यास : शिवनारायण श्रीवास्तव, सरस्वती मंदिर, काशी।

१५. हिंदी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास : डॉ. लक्ष्मीनारायणलाल, साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९७४।

१६. समकालीन हिंदी कहानी : बलराम, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, १९९०।

१७. समकालीन हिंदी कहानी : डॉ. पुष्पपाल सिंह, हरियाणा साहित्य अकादमी, १९८७।

१८. समकालीन महिला लेखन : डॉ. ओमप्रकाश शर्मा, पूजा प्रकाशन, दिल्ली, २००२।

१९. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी : कथ्य और शिल्प : डॉ. शिवशंकर पांडेय, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, १९७८।

२०. हिंदी कहानी : मधुरेश।

२१. हिंदी का गद्य साहित्य : डॉ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

२२. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ : शीलप्रभा वर्मा।

(ग) पत्रिकाएँ :

१. साक्षात्कार, मई-२००४।

२. कथाक्रम, अप्रैल-जून-२०००।

३. कथादेश, अगस्त-२०००।

४. वर्तमान साहित्य, अप्रैल-१९८७।

५. वर्तमान साहित्य, अक्टूबर-१९९१।